इतिहाससमुच्चय की भूमिका ॥

सब महाशयों को विदितहो कि यह इतिहाससमुच्चय ग्रन्थ धर्म और उत्तम कर्मों के प्रकाश करने में अत्यन्त उपकारी है इसमें जुदे २ प्रकार के बत्तीस प्रयोजनोंवाले बत्तीसही उत्तम २ इतिहासोंमें बड़े प्रयोजनों वाली बत्तीस कथा हैं और सम्पूर्ण महाभारतके पढ़ने से जो धर्म का बोध होता है वह बोध बुद्धिमान् मनुष्य को इन बत्तीस कथाओंकेही विचारने से होसक्ता है इस ग्रन्थका भाषानुवाद उन्हीं श्रीमान् मुंशी नवलकिशोर साहब सी. आई. ई., ने अपनी परम उदारता से परिडत बस्तीराम और परिडत कालीचरण जीसे करवाया है जिन्होंने कि महाभारत आदि बहुतसे पुराणों का उल्था सबके उपकारार्थ करवाया है ॥

अथ इतिहाससमुच्चय भाषा ॥

मङ्गलाचरण ।

क० । आनँदके कन्द ब्रजचन्द के पदारविन्द, दुःख के दलन-हार हिय निज ध्यायके । गुणगणमण्डित सुकालीचर्ण पण्डित सहायपाय बस्तीराम स्वस्ती चित्तलायके ॥ सुखरास इतिहास-समुच्चयग्रन्थ भाष्य, भाषा को भनत खास अर्थ सरसायके । कलिकाल भर्महार धर्म मरयाददार, होय अनुबाद त्यार द्विज शक्ति गायके ॥ १ ॥

जिन वेदव्यासजीके मुखरूप कमल से निकले हुये वाणीरूप अमृत को जगत् पीता है वह सत्यवती के हृदय को आनन्द देनेवाले वेदव्यासजी सम्पूर्ण ऐश्वर्यों समेत वर्तमान हैं १ श्रीव्यासजी के वचनरूपी तड़ाग से उत्पन्न स्वच्छ गीता के अर्थरूपी गन्ध से तीव्र और अनेक प्रकार के सुन्दर आख्यानरूपी किञ्जल्कों से भराहुआ नारायण की कथा के सम्बोधन से बोधित

हुआ और इस जगत् के सज्जनरूपी भौंरों से बारम्बार प्रसन्नतापूर्वक पान कियाहुआ और कलियुग के पापों के नाश करनेमें निपुण जो भारतरूप कमलहै वह हमारे कल्याण के निमित्त होकर मङ्गल करो २ और जिस क्षीरसागर में शयन करनेवाले मेघ के समान श्यामवर्ण पृथ्वी के उद्धार करने के समय वाराहरूप होकर पाताल से उठेहुये कीच से लिपेहुये कपोल मुखवाले अजित भगवान् से यह विश्व विजय कियाहुआ है ३ उसी परमात्मा ने वज्रसे भी कठोर हिरण्यकशिपु की छाती अपने नखों से पत्ते के समान फाड़डाली उस कृष्ण द्वैपायन वेदव्यासजी को प्रभुनारायणही जानना चाहिये ४ क्योंकि पुण्डरीकाक्ष भगवान् के विना इस महाभारत का करनेवाला दूसरा कौन होसक्ता है ५ जिसने बुद्धिरूपी मथानी अर्थात् 'रई' बनके वेदरूप सागर से जगत् के हित के लिये यह महाभारतरूपी चन्द्रमा उत्पन्न कर दियाहै ६ और सब मुनिलोग तो केवल अपनेही हित के लिये उद्यत हैं परन्तु वेदव्यास भगवान् तो सब लोकों के हितहीमें प्रवृत्त हैं ७ उस संसार के हितकारी वेदव्यासजी ने जब कि ऐसा उत्तम महाभारत शास्त्र निर्माण करदिया इससे अधिक उनकी और कौनसी महिमा वर्णनकरें ८ कि जिस भारत के प्रभाव से सब जन अनेक राग द्वेषोंसे रहित पर्वतादि समान दुर्गम स्थानों को उल्लङ्घन करके निर्दोष होकर नानाप्रकार के शुभ मङ्गलों को प्राप्त करते हैं ९ दान देना भोग करना प्रिय वचन कहना उग्र शत्रुओं से युद्ध करना

और संसाररूपी समुद्र से पार होना इत्यादि बातें महाभारत के विना जाने कौन जान सक्ता है १० यह उक्त सब वेदों के तात्पर्यार्थ उस महामुनि ने अपनी महाभारत में दिखाये हैं ११ और एकही स्थान में स्थित होकर जिसने सब शास्त्रों के अर्थों को दिखा दिया ऐसे महात्मा ऋषि वेदव्यासके इस सिंहनादको सुनना योग्य है १२ और हे भरतर्षभ, जनमेजय ! जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्षादि विषय इस शास्त्रमें वर्णन किये हैं वही अन्य शास्त्रों में भी वर्णन किये गये हैं और जो इसमें नहीं हैं वह अन्यशास्त्रों में भी नहीं हैं १३ और जो कि यह संसार स्वभावही से अर्थ काम में प्रवृत्त है इस निमित्त धर्म मोक्षही है प्रधान जिसमें ऐसे समुच्चय ग्रन्थ को करते हैं १४ क्योंकि कामीपुरुष को काम और लोभी पुरुष को लोभ का वर्णन करना इत्यादि कुमार्गों का वर्णन करनेवाला पुरुष अन्धे को कुए में डाल देनेवाले के समान अघोर कर्म फल को प्राप्त होता है १५ इस कारण वेदव्यासजी ने भी इन अर्थ कामों को लोक के मन के हरनेवाले और अधोगति देनेवाले जानकर इस प्रकार निन्दित कियाहै कि १६ यही दोनों इस घोर संसार में मनुष्यों के बन्धनरूप हेतु हैं१७ ऐसा जानकर संसार की चिन्ता दूर करने के लिये विचित्र २ इतिहासों से भी उनकी निन्दा करी है १८ जो कदाचित् यह महाभारत सूर्य और चन्द्रमा यह तीनों यहां न होते तो इस अज्ञान से अन्धरूप संसार की कौन दशा होती १९ इस पवित्र महाभारत के पढ़ने,

सुनने सुनाने से श्रद्धावान् पुरुष के सब पाप दूर होजाते हैं २० जो पुरुष सुवर्णशृङ्गी सौ गौत्रों के दान वेदपाठी ब्राह्मण को करे और जो दूसरा एक महाभारतकी कथा को सुने उन दोनों पुरुषों का फल समान है २१ जो पुरुष वेदव्यासजी के मुखारविन्द से निकले हुये ओष्ठपुटों से अमृतरूप कियेहुये इस पुण्य पवित्र पापों के नाशकरनेवाले शुभदायक महाभारत के उपाख्यान को कथामें जाकर श्रद्धापूर्वक श्रवण करताहै उसके पुष्करादि तीर्थों के अभिषेक करनेसे क्या प्रयोजन है ? अर्थात् वह बड़ा पवित्र है २२ ऐसा जानके श्रद्धावान् पण्डितजनों को इस भारतसम्बन्धी इतिहाससमुच्चय का सुनना और अध्ययन करना योग्य है २३ और जो २ इस महाभारत के भिन्न २ अर्थवाले जहां तहां श्लोक वर्त्तमानहैं उन सबोंको यथायोग्य तुल्य अर्थवाले समझकर मैं इस स्थान पर योजना करताहूं २४ जैसे कि समुद्र में से सब रत्नों के निकालनेको ईश्वर के सिवाय कोई समर्थ नहीं है उसी प्रकार इस सम्पूर्ण महाभारतमें से सार २ श्लोकों के निकालने को कौन समर्थ होसक्ता है २५ और मैं मदान्धता से अथवा बुद्धि के अभिमान से इस ग्रन्थ के बनानेमें उद्यत नहीं हुआहूं किन्तु मुझको इस महाभारत की भक्ति ने प्रेरित किया है २६ और जोकि इसमें ३२ इतिहासों का अनुक्रम है इस हेतु से इस ग्रन्थ का यथार्थ नाम इतिहाससमुच्चय रक्खागया है २७ यही बत्तीस इतिहासोंका समुच्चय इस असार संसारमें मोक्ष का साधन कहाजाता है २८ इसमें

प्रथम श्येनजित का आख्यान है, दूसरा गौतमी का, तीसरा मुद्गल ऋषि का, चौथा औशीनर का २९ पांचवां गङ्गाजी का माहात्म्य, छठा सक्तू प्रस्थीय का, सातवां सुदर्शन का ३० आठवां नरकका आख्यान, नववां कपोत का आख्यान, दशवां दुर्गतिस्तरण नाम आख्यान, ग्यारहवां सप्तऋषियों का संवादरूप आख्यान, बारहवां लोभाख्यान, तेरहवां जाजलि का आख्यान, चौदहवां कुण्डधार का आख्यान, पन्द्रहवां मङ्कीगीत का व्याख्यान, सोलहवां बोध्यगीत आख्यान, सत्रहवां इन्द्र कश्यपका व्याख्यान, अठारहवां पिता पुत्र का संवाद, उन्नीसवां शुकानुशासन उपाख्यान, बीसवां भूमिदानमाहात्म्य, इक्कीसवां गोदान का इतिहास, बाईसवां महापुण्यवाला अन्नदान का आख्यान, तेईसवां तिलदानमाहात्म्य, चौबीसवां नागाख्यान, पच्चीसवां च्यवनऋषिका संवाद, छब्बीसवां मानसी तीर्थयात्रा का आख्यान, सत्ताईसवां ब्रह्महत्या की विधि का आख्यान, अट्ठाईसवां मांसभक्षण के निषेध का आख्यान, उन्तीसवां नहुषराजा का आख्यान, तीसवां बहुल का आख्यान, इकतीसवां सुव्रता का आख्यान और बत्तीसवां नारद महर्षि से कहा हुआ पुण्डरीक का आख्यान ऐसे क्रमपूर्वक आख्यानों का संग्रहरूप यह इतिहाससमुच्चय नाम ग्रन्थहै ३१।३९ इन कहे हुये इतिहासों का अनुक्रम इसीमें है महाभारत में नहीं है इस प्रकार से इतिहाससमुच्चय ग्रन्थ में बत्तीस आख्यानहैं ४० जनमेजय बोले कि;हे ब्रह्मन्.वेदव्यासजी

प्रथम मेरे पितामह आदिक विराटनगर में बारह वर्ष तक निवास करके तेरहवें वर्ष में विराट द्रुपद आदिक बहुत से सहायकों समेत भीष्म, द्रोण, कर्ण और शल्य इन सबको मारके ४१ शकुनी भगदत्त भाइयों समेत दुर्योधन और अनेक देशों से आये हुये ४२ शोक-दुखित अन्य राजालोगों को भी मारकर भाइयों समेत राजा युधिष्ठिर गङ्गाजी में स्नान करता हुआ ४३ इसके अनन्तर सब पाण्डवलोग अपने सुहृद् मित्रों को जल-दान करके अपने परमहितकारी नारायण श्रीकृष्णजी समेत क्या करतेभये ४४ वैशंपायन बोले कि; जलदान कर गङ्गाजीके तट पर भाइयों समेत बैठेहुये श्वास लेते हुये अधोमुख किये आतुरता से युक्त महाभाग महात्मा धर्मराज के पुत्र राजा युधिष्ठिर के समीप ४५। ४६ नारद, देवल, वेदव्यास, कवि, कण्व, काश्यप, रैभ्य, बृहस्पति, धौम्य, च्यवन, गालव, भृगु ४७ वशिष्ठ, जमदग्नि, दुर्वासा और गौतम ये सब बड़े २ तेजस्वी ब्रह्म-ऋषि अपने २तीव्रव्रतवाले शिष्यों समेत आये उन सब को राजा युधिष्ठिर ने विधिपूर्वक अभ्युत्थानादि पूजन कर के प्रणाम किया तब उन्होंने भी राजा को प्रशंसा-पूर्वक आशीर्वाद दिया तब अश्रुओं से भरे नेत्र राजा युधिष्ठिर यह वचन बोले ४८। ४९ हे मुनिजनलोगो! प्रियबन्धु, भ्राता, पुत्र, पिता, पितामहादिक इन सबका घात करके जो जय प्राप्तहुई है वह मुझको अजयही दी-खती है ५० क्योंकि द्रौपदी के पुत्रों समेत अभिमन्यु और अन्य प्रियबन्धुओं समेत राजालोगोंके बध होनेसे

ज्ञातिबन्धुओं को मारनेवाले आतुर होकर राज्य की इच्छा करनेवाले और अति उग्र अपने वंश के छेदन करनेवाले मुझ पापी को शोक नहीं छोड़ता है इसी से मैं शोकग्रस्त हूं ५१।५२ और बाल्यावस्था में जिसने गोदीमें खिलाया पढ़ाया और रक्षाकरी उस गाङ्गेयभीष्म जी को मैंने राज्यके लोभसे मरवाया ५३।५४ और हे मुनिलोगो! वह मेरे गुरुका वचन मेरे शरीर को दग्ध कियेडालता है जो उन्होंने कहाथा कि जो मेरा पुत्र जीवता है तो सत्य कहदे ५५ ऐसी दशा में महाक्रूरकर्मी मुझ अधम गुरुघातीने अपने सत्यको त्यागकर छलसे गुरु को ठगा ५६ और यह वचन कहा कि; अश्वत्थामा मरा अथवा इसी नामका हाथी मरा सो ऐसादारुण पापकर्म करके मैं कौनसे लोकों को जाऊंगा ५७ और सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ अपने बड़ेभाई कर्ण को जो मैंने मरवाया तो मुझसे अधिक कौन पापी है ५८ और पर्वतों में सोतेहुये सिंह के समान अपने प्यारे अभिमन्यु बालक को जबसे मुझ लोभी ने द्रोणाचार्य से रक्षित सेना में प्रवेश करवाया ५९ तब से लेकर अब तक मैं पापी और भ्रूणहत्यावाला होकर परम हितकारी श्रीकृष्णजी समेत अपने सब बन्धुओं को भी देखने को समर्थ नहीं होता ६० और प्यारे पांचपुत्रों से वियोगवाली महादुःखों में डूबी हुई ऐसी द्रौपदीकेभी देखनेसे मेरा चित्त दग्ध होताहै ६१।६२ हे मुनिलोगो! ऐसा मैं अन्त करनेवाला महापापी पृथ्वी का नाशकरनेवाला होकर इस स्थान में बैठा हुआ अपने प्राणों को

सुखाऊंगा ६३ । ६४ ऐसे पाप करके मैं अपने शरीर को इस निमित्त त्यागूंगा कि हमारे कुल में ऐसा कुल का नाश करनेवाला दूसरा कोई न हो ६५ वैशंपायन बोले कि; ऐसे कहते हुये महादीन बन्धुओं के शोक से विह्वल राजा युधिष्ठिर से जीवोंके आदि अन्त के जानने वाले वेदव्यासजी यह वचन बोले ६६ कि हे पुरुषों में सिंहरूप! तू अपने शरीर के सुखानेवाले शोकको मत कर क्योंकि जो २ वीर इस रणभूमि में मारे गये वह न्यूनबलवाले नहीं थे ६७ और हे पाण्डुनन्दन! तुम सरीखे पुरुष व्यसनों में शोच और आनन्द के उदय में हर्ष यह दोनों बातें नहीं करते और जो तुझ सरीखेही पण्डितजन शोक में ग्रसित होजायँगे तो शास्त्रका ज्ञान और विचार करना कहां रहेगा केवल श्रमही के अर्थ सबकाम होजायँगे ६८। ६९ हे राजन्! शोक मोह और भय के हज़ारों स्थान प्रतिदिन मूढ़ मनुष्योंमें हुआ करतेहैं परन्तु पण्डित में नहीं प्रवेश करते हैं ७० जन्म लेने वाले की मृत्युभी अवश्य है और मरनेही वालों का निश्चय जन्म है इस हेतुसे किसी प्रकारसे भी मिट न सकने वाली वस्तुमें शोच करनाभी वृथाहै इसमें कभी शोच न करना चाहिये ७१ भावी अर्थात् होनहारके जो प्रयोजन हैं वह अवश्य अपनेही कर्मफलके हेतु हैं सो शास्त्र के तत्त्वार्थ जाननेवाले सन्त महज्जनलोग उन्हीं का शोच नहीं करते ७२ जो मरेहुयेको नष्टहुयेको अथवा व्यतीत हुयेको शोचताहै वह उस दुःखसे भी अधिक दूसरे दुःख को प्राप्त होताहै अर्थात् निरर्थक दुःखका फलभी अवश्य

दुःखही है ७३ पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और पांचवां अग्नि इन तत्त्वों की योनि सब जीव हैं इनमें क्या विलाप करना चाहिये ७४ ऐसा कोई दैवी और मानुषी उपाय नहींहै जिससे कि मृत्यु के वशमें प्राप्त हुआ जीव फिर लौट आवे ७५ हे पार्थ! बान्धव, पुत्र, स्त्री, धन इन से वियोग हुये घोर व्यसनों में डूबेहुये पुरुषों को धैर्यही रखना उचित है ७६ व्रत, धर्म, बल, धैर्य, सुख और आनन्द ये सबही शोक को दूर करते हैं ७७ परन्तु सदैव अहर्निश शोच करनेवाले मनुष्यों का शोक और व्यसन कभी दूर नहीं होता है और शोच करनेवाले सामर्थ्यसे भी हीन होजाते हैं इस निमित्त तू शोक को त्यागदे ७८ बालक, तरुण, वृद्ध और गर्भस्थजीव इन सबको मृत्यु ग्रस लेतीहै ऐसाही यह सब जगत् है ७९ सो सब अवस्थाओंमें विनाश होनेवाले जीवोंके उत्पन्न होने में कौन प्रसन्न होय और इनके मरनेमें कौन शोक को करै ८० लोकतत्त्व के जाननेवाले महज्जन व्यतीत हुई बात का शोच नहीं करते और न विनाश हुई वस्तु की इच्छा करते हैं और न कभी वर्तमान व्यवहार में लीन होते हैं ८१ कहां शोक और कहां लोकपालों के शरीरों का धारण करनेवाला पृथ्वीपति धर्मज्ञ राजा ऐसा होकर तुम को महामोह से उत्पन्न हुये इस शोक का त्यागनाही उचित है ८२ और वेदपाठी पण्डित को वा सुवर्णादि धन की समृद्धियुक्त जन को भुजबलवाले राजा को नियमादि सहित सुन्दररूप से स्थित हुये तपस्वी को अथवा दुःखशोकादियुक्त को भी यह काल

ऐसे कभी नहीं छोड़ता जैसे कि वन में लगीहुई अग्नि किसी को नहीं छोड़ती ८३ इस स्थान पर एक पुरातन इतिहास कहते हैं जिसमें कि श्येनजित राजा से किसी ज्ञानवान् ब्राह्मण ने उसको पुत्रके शोक से दुःखित और महाव्याकुल देखके कहा है ८४। ८५ तत्त्वज्ञ ब्राह्मण ने राजासे कहा कि हे मूढ़ ! तू क्या मोहको प्राप्त होता है और अशोच्य को शोचताहै ? तेरे शोच करनेके पीछे अन्य लोग भी शोच करेंगे ८६ हे राजन् ! तू मैं और जो २ तेरी उपासना करतेहैं वे सब मृत्यु को प्राप्त होंगे इसमें क्यों विलाप करना चाहिये ८७ सब मनुष्य विनाही दीखते हुये यहां आये थे और विनाही दिखाई दिये चलेगये इसीलिये यह भी जैसे आया था वैसेही चलागया यह न तेराहै और न तू इसकाहै वृथा काहेको शोच करताहै ८८ और अपने शरीरसे भी यह न कभी मिला न मिलेगा तो अन्य जनोंसे कैसे मिलसक्ताहै ८९ जन्म लेनेहीसे यह जन कहाताहै और जन जनहीसे उत्पन्न होताहै सो तू जन होकर जन्मेहुये शरीर को शोचताहै आत्मा को नहीं शोचता पात्ररूप आत्मा कोही शोच ९० हे भरतर्षभ ! सब जीवमात्र आदिमें अप्रकट फिर मध्यमें प्रकटरूप दीखकर अन्तको मृत्युके समयभी अप्रकटही होजातेहैं ऐसे स्थानपर क्या शोच करना चाहिये ९१ हे राजन् ! अब तेरे पिता और पितामह कहाँहैं न तू उनको देखताहै और न वह तुझको देखतेहैं ९२ ऐसे ही पुत्र, पौत्र, ज्ञाति, सम्बन्धी, भाई, बन्धु आदिक भी सब हैं इन्हों में स्नेह कभी न करना चाहिये क्योंकि इन

सबसे अवश्यही वियोग होताहै ९३ और जन्मे हुये प्राणियों के संयोग वियोग भी ऐसे होजाते हैं जैसे कि जल के बुद्बुदे उत्पन्न होकर मिलजाते हैं और नष्ट होजाते हैं ९४ और जिसने संयोग बहुत प्रिय मान रक्खा है उसको वियोग इसलिये बुरा लगता है कि संयोग सदैव वियोग से ग्रसा हुआ है ९५ जितने इकट्ठे किये हुये द्रव्य होते हैं उनका अवश्यही क्षय होता है और जो ऊंचे पदार्थ हैं वह पतनान्तही हैं अर्थात् अवश्य कभी गिरतेही हैं संयोगों का वियोगही होता है जीवन के अन्त में मृत्युही होतीहै ९६ जीवन यौवनरूप धन का संचय आरोग्यता और प्रियजनों में बास यह सब अनित्य हैं पण्डितजन इन सबके मोहों में नहीं प्राप्त होताहै ९७ पण्डित, मूर्ख, बलवान्, दुर्बल, धनाढ्य, दरिद्री इन सबमें मृत्युकी तुल्यता है अर्थात् सबहीकी मृत्यु होजाती है ९८ हे राजन्! एक समय में जन्मेहुये और साथही जन्मे हुये यह सब सौ वर्ष की आयुर्दा रखनेवाले होते भी हैं और नहीं भी होते हैं ९९ सब जीवमात्रों की मथन करनेवाली और सब यत्नों की नाश करनेवाली जो अप्रमत्त अनित्यता है वह प्रमत्त जीवों के जागा करतीहै १०० पुत्र स्त्री और पशु आदिक यह ऋणसम्बन्धी हैं जब ऋण क्षय होजाताहै तब वह सब भी क्षीण होकर नाश होजाते हैं तहां क्या शोच करना चाहिये १०१ वह पुत्र तुमको विनाही मांगा प्राप्तहुआ था और अब तुमको छोड़कर चलागया वह जैसे आया था वैसेही चलागया इसमें क्या शोचकरना चाहिये १०२

इस हेतुसे जो ज्ञानी मनुष्य इस जगत् को अनित्य देखता है वह अनित्य समझकर किसी प्रकारके शोक को नहीं प्राप्त होताहै १०३ और विषयों के आनन्द में प्राप्त होनेवाले और उनके बन्धनों में फँसनेवालोंको मृत्यु एक ही पद में अर्थात् क्षणमात्र में ऐसे छेदन करडालती है जैसे कि, मनस्वी पुरुष बेटों तक को अलग कर देते हैं१०४ इसी दिन रात्रि में जरा अवस्था से इसलोक में फिरनेवाली मृत्यु सब जीवमात्रों को ऐसे ग्रस लेती है जैसे कि मेंढक को सर्प ग्रसलेता है १०५ और जैसे कि कोई पथिक वृक्षकी छायामें विश्राम लेताहै और श्रमको मिटाकर फिर चलदेताहै इसी प्रकार इन सब जीवों का भी समागम होताहै १०६ और समीपमें प्राप्तहुआ काल इन संयोग वियोग और सम्पत्ति विपत्तिको नाश हुआ कहताहै १०७ मनुष्यों की सम्पत्ति गन्धर्वनगरके समान सुखको दिखाती है अर्थात् क्षणभर में प्राप्त होकर फिर नष्ट होजातीहै १०८ जो पुरुष मरेहुये नष्टहुये अथवा व्यतीत हुये को शोचता है वह दुःखों के भी दुःख को भोगताहै क्यों उन दोनोंही अनर्थोंको प्राप्त होताहै १०९ कुछ चिन्ता करने से दुःख दूर नहीं होता किन्तु और अधिक बढ़जाता है दुःख की औषध यही है कि दुःख का चिन्तवनही न करे ११० पण्डितलोग अगाध तड़ाग की लहर के समान जानकर दुःख का शोच सुख का भोग त्याग मोह और किसी प्रकार का मनोरथ भी नहीं करतेहैं १११ अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला शोक शरीरका सुखानेवालाहै इस हेतुसे हे नृपोत्तम ! कुत्सित पुरुषों से

आचरण करनेके योग्य इस शोक को त्याग करदे ११२ व्यासजी कहतेहैं कि; ऐसे ब्राह्मणसे बोधित किया हुआ वह राजा अपने पुत्रशोक को त्यागकर चित्त से स्वस्थ होगया ११३ हे राजेन्द्र! इससे अब तूभी अपनी सात्त्विकी बुद्धि को प्राप्त होके अपने ज्ञाति, बन्धु, पुत्रादिकों के शोकको त्याग अकण्टक राज्यको भोग ११४ वैशंपायन बोले कि; इस प्रकार वेदव्यासजी से समझाया हुआभी वह राजा युधिष्ठिर ज्ञातिशोक से युक्त आत्मावान् हो कर फिर यह वचन बोला ११५ हे सर्वज्ञ, ब्रह्मन्! आप के वचनों को मैं श्रद्धापूर्वक मानता हूं परन्तु ज्ञाति के वधसे उत्पन्न हुआ शोक मुझको बलसे बांधरहाहै ११६ पुत्र, पौत्र, पिता, पितामह, भानजे, ज्ञातिके जनों समेत बान्धव ११७ और अनेक देशोंसे आयेहुये राजा महा-राजा इन सबको मैंने राज्यके लोभ से माराहै ११८ सो मुख्य २ यज्ञों के करनेवाले धर्म में निष्ठा रखनेवाले ऐसे २ राजाओं को मारकर मैं कौनसी गति को प्राप्त हूंगा ११९ और हे तात! इन श्रेष्ठ धर्मवाले राजालोगों से रहित इस पृथ्वी को हम ऐसा विचार करते हैं कि हम इसको दग्ध करदें १२० क्योंकि उन राजाओं के विना उनकी स्त्रियां अपने पति पुत्र पौत्रादि से रहित होकर किस दशा को प्राप्त होगईं कि कुररी के समान शोक से आठों पहर चिल्लाती हैं १२१ ऐसे उन अब-लाओंके करुणापूर्वक रोदन के शब्द सुनकर कौन जी-वनकी इच्छा करसक्ताहै १२२ ऐसे मुझ क्रूरकर्मी ज्ञाति कुटुम्बादिके नाश करनेवाले को अब त्रिलोकी का राज्य

भी आनन्द नहीं देसक्ता है १२३ वैशंपायन बोले कि; इस प्रकार शोकसे पीड़ित विलाप करते हुये उस राजा से कृपापूर्वक प्रसन्न होकर फिर व्यासजी बोले व्यासजीने कहा कि; हे महाराज ! तुमको बीती हुई बात का शोच करना उचित नहीं है हे युधिष्ठिर ! यह सब दैवके आधीन है इसमें भी फिर यह दृष्टान्त समझो १२४ जैसे कि स्वप्ने में लब्ध हुये पदार्थ जागने में निष्फल हो जाते हैं इसी प्रकार जो तैंने रण में मारे हैं उनको भी तू निष्फल जान १२५ वह सब उत्तम राजा सब पृथ्वी के शूर सुवर्णादि धन और घोड़े हाथी आदि के द्वारा भी विजय करने के लायक नहीं थे १२६ न तो तू उन का मारनेवाला है न भीम अर्जुनादि मारनेवाले थे वह केवल अपने कर्म में नियुक्त करके कालने मारे हैं १२७ तुम सब मारनेवाले राजालोग उस काल के हेतुमात्र हो भूत अर्थात् जीवों के साथ जीवही युद्ध करते हैं उनके स्वरूप में ईश्वर साक्षीमात्र है १२८ यहां शरीर में भूतात्मक आत्मा को जानना वही सबके पाप पुण्य का जाननेवाला है और सुख दुःखादि गुणों का भावीफल काल है वही कर्मफल का देनेवाला है १२९ और हे भारत ! जिसके कोई मित्र है न शत्रु है और जो संसार के कर्मफल का साक्षी है उस काल ने सबको मारा है १३० हे राजेन्द्र ! उन सबके कर्मोंका चिन्तवनकर जो कि नित्य विनाशके हेतु थे वह सबभी मृत्यु के वश में प्राप्त हुये १३१ और अपने भी आत्मा के नियमव्रत और शीलता को जानो तुम धर्मव्रत में प्रधान होनेवाले

को ऐसा मोह करना उचित नहींहै १३२ यह ऐसा कर्म भावी ने तेरे द्वारा कसदिया है दैवसे प्रेरित बुद्धिमान् भी क्या हित करसक्ता है आशय यह है कि अपने कर्मों से प्रेरणा कियाहुआ बुद्धिमान् मनुष्य भी क्या करसक्ता है विशेष करके मनुष्य की बुद्धि कर्मानुसारणी होती है १३३ उस कालरूपी समुद्र में यह जगत् डूब जाताहै जिसमें कि मृत्यु रोग और जरा वही ग्राह है उस समुद्र को यह मनुष्य नहीं जानसक्ताहै १३४ वह विधातारूप कारीगरका रचाहुआ जीवरूपी कच्चे घटोंका आवाँ है वह अपने कर्मरूप इन्धनसे देदीप्यमान होकर कालरूप अग्नि से पकता है १३५ पिता बीज है माता क्षेत्र है और शुभाशुभ कर्मही वर्षाहै और इस संसार की खेती के समान यह जीवहैं उन पके हुओंको और विना पके हुये जीवों को काल छेदन करता है १३६ ऐसी २ बातों से तू इस पृथ्वी के क्षय को काल का किया हुआ जान कर हे जनेश्वर ! इस ज्ञाति बन्धुओं से उत्पन्न हुये शोक को त्यागदे १३७ वासुदेवजी बोले कि; यह व्यासदेव ऋषि त्रिकाल के जाननेवाले हैं और तुम्हारे हित में तत्पर हैं इससे हे नृपोत्तम ! जो यह कहें सो कर १३८ हे राजन् ! शोक मोहरूपी ग्राहों से ग्रसे हुये मूर्खजन तो बहुत कालतक शोक करतेहैं परन्तु बड़े पण्डितजन क्षणमात्रही शोच करते हैं १३९ वैशंपायन बोले कि इस प्रकार वेदव्यासजी आदिक से समझाया हुआ वह राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्णजी समेत सब भाइयों से युक्त ऐसे शोभित हुआ जैसे कि सब ग्रहों से युक्त चन्द्रमा

शोभित होता है फिर बड़े भारी दुःख में डूबा हुआ भीष्मपितामह के पास गया॥ १४०॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयेश्येनजिताख्यानेयुधिष्ठिरशोकापनोदनन्नामप्रथमोऽध्यायः॥ १॥

दूसरा अध्याय॥

जनमेजय बोले कि; हे ब्रह्मन्! भाइयों समेत राजा युधिष्ठिर भीष्मपितामह के समीप में स्थित होकर क्या कहताभया वह सब मुझसे वर्णन कीजिये १ वैशंपायन बोले हे राजेन्द्र! वेदव्यासजी से और महात्मा श्रीकृष्ण जी से शिक्षित कियाहुआ राजा युधिष्ठिर भीष्मपितामह से कहनेलगा २ हे पितामह! श्रीवेदव्यासजी ने भी अनेक प्रकारसे मुझे बहुत समझाया परन्तु महादारुण पापकर्मी मुझ पापात्मा का मन शान्तिको नहीं प्राप्त होता ३ और आपका अन्त करनेवाला और ज्ञाति बन्धु आदि का नाशकर्ता होकर मैं शान्ति को नहीं प्राप्त होताहूं ४ पर्वत के समान झिरतेहुये रुधिर से लिप्त अङ्ग बाणोंसे छिदकर वर्षाऋतु में बूंदोंसे संतप्त कमल के समान संतप्त हुआ आपको देखकर मैं बड़ेही दुःख को प्राप्त होरहाहूं ५ महात्मा धर्मव्रतपरायण देवव्रत और तुमको कुटिलता से मारकर मैं कौनसे लोकों को जाऊँगा ६ हे राजन्! जो आप मेरे प्रिय को चाहतेहो तो आप मुझे वह शिक्षा करिये जिससे कि मैं इस महा घोर पाप से छूटूं ७ भीष्मजी बोले हे राजन्, युधिष्ठर!

तू आत्मा को परतन्त्र और पराये आधीन वा हेतुरूप अथवा कर्मों को भी कैसे मानता है यह बड़ा सूक्ष्म अतीन्द्रिय होकर इन्द्रियों से नहीं जाना जासक्ता है ८ बुद्धिमान्लोग सब प्राणधारियों के मन को कर्ममय वर्णन करते हैं इसीसे उन्होंका मन जैसी होतव्यता होती है उसीके अनुसार चेष्टा करताहै ९ जो अभावि है वह भावि अर्थात् कभी होताही नहीं और जो भावि है वह कभी अन्यथा होकर टलता नहीं है ऐसी यह चिन्तारूपी विषनाशक औषध तुझसे नहीं पान करी जाती है १० यहां एक प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिसमें कि काल लुब्धक और सर्प इन तीनों समेत मृत्यु का और गौतमी ब्राह्मणी का संवाद है ११ एक वृद्धाश्रम में प्राप्त हुई गौतमी नाम ब्राह्मणी थी उसने सर्प से डसे हुये अपने लड़के को अचेत देखा १२ इसके पीछे अर्जुन नाम एक व्याध उस सर्प को तांत की फांसी में ग्रसितकर खेंचता हुआ गौतमी के पास लाया १३ उसने गौतमी से कहा कि; यह दुष्टसर्प तेरे पुत्र का मारनेवाला है हे महाभागिनी! जो तू कहे तो इसको मैं मारडालूं १४ गौतमी ने कहा हे लुब्धक! इसके मारनेसे मेरा पुत्र कभी नहीं जीसक्ता है और न इसके बध करने से कोई गुण होगा इस हेतुसे तू इस दीन सर्पको छोड़ दे १५ व्याधि, अग्नि, विष, शस्त्र, क्षुधा, सर्प. पशु, जल इनमें से जिसकी मृत्यु जिसके द्वारा रची गई है वह उसीके द्वारा मरकर जाता है १६ पापी के साथ आप पापी नहीं होना चाहिये सदैव साधुही बनारहै और जो

मनुष्य पापकरनेकी इच्छा करता है वह महापापी होकर आत्माहीसे हत होता है १७ और जो पापी के ऊपर पाप करता है वह जलेहुये को फिर जलाता है और हतहुयेको हत करताहै अर्थात् मरेहुये को फिर मारता है १८ और जो महामोह से युक्त किसी जीव को निर्दयी होकर मारदेताहै वह क्रूर और मृतक का मारनेवाला मरकर घोर नरक में जाता है १९ लुब्धक बोला हे शोभने! निश्चय करके पापियों के मारने में पाप नहीं है इस निमित्त इस बालघाती क्रूरकर्मी को अवश्य मारूंगा २० गौतमी बोली श्रेष्ठपुरुषों में श्रेष्ठवार्त्ता करनेवाले पुरुष इस संसार में सुलभ और सुगम हैं परन्तु असाधु जनों में श्रेष्ठपुरुष दुर्लभ हैं २१ वही साधु सुन्दर जन्मवाले और पृथ्वी को भूषित करनेवाले हैं जो अपकार वा बुराकर्म करनेवाले पुरुषोंपरभी उपकारही करते हैं २२ मृत्यु, रोग, जरा इन सबसे दुःखित हुये जीवों को फिर कौन निर्दयी पुरुष दुःखदेने को योग्य है २३ जो दूसरे को दुःख देता है वह अवश्य महादुःख को प्राप्त होताहै इस कारण दुःख से भयभीत को कभी और दुःख न देनाचाहिये २४ और बड़े भारी दोष कियेहुये जीव को मारने में जिसकी इच्छारूप चेष्टा नहीं होती है उस मनुष्य का फिर यहां जन्म नहीं होता अर्थात् उसकी मोक्ष होजाती है २५ भीष्मजी बोले कि; उस गौतमी को सर्प के मारनेमें लुब्धक ने बहुत कुछ उपस्थित करना भी चाहा परन्तु उस महाभागा गौतमी ने पाप की बुद्धि नहीं की २६ जो पुरुष बीज योनि आहार व्यवहार इन

चारों में पवित्र रहता है उसका मन दुःख में भी प्राप्त होकर पाप की ओर नहीं लगताहै २७ क्योंकि विशुद्ध आत्मावान् पुरुष पापों में प्रेरा हुआ भी प्रवृत्त नहीं होता है और पापी पुरुष पापों से निवारण कियाहुआ भी पापकी इच्छा करता है २८ पापकर्म में प्रवृत्त हुआ पुरुष विद्वान्जनों से समझाया हुआ भी शुद्धभाव को ऐसे नहीं प्राप्त होताहै जैसे कि घिसाहुआ कोयला कभी निर्मल नहीं होता २९ पहले हजारों जन्मों में जैसी २ बुद्धि की भावना होगई है वैसी २ बुद्धि को यह जीव भजता है उसको उपदेश करना निरर्थक है ३० इसके अनन्तर वह सर्प भी ऊंचे श्वास लेताहुआ बड़े कष्टसे सुकड़ फांसी से महापीड़ित होकर मनुष्य की वाणी से बोलता हुआ ३१ अरे मूर्ख, अर्जुन ! इसमें मेरा क्या दोष है मुझ पराधीन और विवश को इस मृत्यु ने प्रेरा है ३२ इसी मृत्यु के वचनकी प्रेरणा से मैंने इस बालक को डसा है मैंने अपने क्रोध वा अपनी इच्छा से नहीं डसाहै इस कारण इसमें इसीका यह पापकर्म है मेरा नहीं है ३३ भीष्मजी बोले कि; मृत्यु से प्रेरित उस सर्प के इस प्रकार कहने पर मृत्युभी आई ३४ उसने सर्प से कहा कि हे सर्प ! मैंने भी तुझको काल से प्रेरित जानकर प्रेरणा करीहै इससे इस बालक के नाशका हेतु यह काल है मैं नहीं हूं ३५ सब स्थावर जङ्गम स्वर्ग और पृथ्वी पर जो पदार्थ हैं वह काल के वशीभूत हैं इसीसे यह जगत् कालात्मक है ३६ इस सब जगत् का कारणरूप आदि अन्त से रहित यह काल है यही काल

इस संसार को ऐसे पकाता है जैसे कि अहितफल को वृक्ष पका देताहै ३७ काल से पीड़ितहुये मनुष्यादिकी मन्त्र, तप, दान, मित्र और बान्धव कोई भी रक्षा करने को समर्थ नहीं है ३८ जन्म, विवाह और मरण यह तीनों फांसी काल की बनाई हुई हैं यह किसीप्रकार से भी निवृत्त नहीं होसक्ती जब जिससे जिसके साथ जहां जिसको बदा है वहीं होगा ३९ जैसे कि वायुसे आकाश में मेघ भ्रमते हैं उसी प्रकार यह जगत्भी कर्मयुक्त काल करके भ्रमाया जाता है ४० भीष्मजी बोले कि; इसके अनन्तर धर्म अर्थ के संशय में कालभी प्राप्त होकर सर्प मृत्यु और अर्जुननाम लुब्धक से कहने लगा ४१ कि हे लुब्धक! मैं और मृत्यु समेत सर्प हम तीनों इसके जन्म मरण के हेतु नहीं हैं और मरने के भी प्रयोजक नहीं हैं४२ इसने जैसा कर्म किया है वही इसका प्रेरक है इसके विनाश का हेतु कर्महीहै क्योंकि सबकर्मके वशीभूत हैं ४३ इस संसार में कर्मसम्बन्धी पुत्र भाई और ज्ञाति के जनहैं यहां आये हुये पुरुष को सुख दुःख में कर्मही प्रेरते हैं४४ जैसा कि सुवर्ण और चांदी का रूप जैसाका तैसाही रहताहै इसी प्रकार मनुष्यादि जीवों का रूप भी कर्मही के अनुसार होता है ४५ आयु, कर्म, वित्त, विद्या, मृत्यु यह पांचो वस्तु इस जीव की गर्भही में रच दी जाती हैं ४६ जैसे कि कुम्हार मृत्तिका के पिण्ड को जैसी २ इच्छा करता है वैसाही वैसा बनाता है वैसेही पूर्वजन्म के किये हुये कर्मभी कर्तारूप ब्रह्माजी के पास निर्माण करने के समय प्राप्त होजाते हैं ४७ देवयोनि, मनुष्ययोनि,

पशुयोनि, पक्षीयोनि और तिर्यक् सर्पादिक की स्थावर वृक्षादि योनि को जीव अपने ही अपने कर्म से प्राप्त होते हैं ४८ जैसे कि चिन्तवन विना कियेही सब वृक्षों के फल पुष्प अपनी २ ऋतु के समय अपने काल के अनुसार वर्तमान होजातेहैं इसी प्रकार पूर्वजन्म के कर्म भी अनायास उदय होआते हैं ४९ जिसने पूर्व जन्म में जैसा शुभाशुभ कर्म किया है वह उसीके अनुसार सुख दुःखादि को भोगता है ५० अपने शरीरहीका रचा सुख और दुःख है वह पूर्वदेह का कियाहुआ कर्मफल इस संसार में गर्भशय्या को प्राप्त होके भोगता है ५१ उस पूर्वदेह से किये हुये कर्म को कोई पुरुष भी बल बुद्धि के द्वारा अन्यथा नहीं करसक्ता है ५२ और जो कोई धीर पुरुष शास्त्र की रीति से उसके अन्यथा करनेकी इच्छा करता है वह अपने पूर्वकर्मों को स्वामी के समान करता हुआ अन्यथा करता है आशय यह है कि भोगे विना पिण्ड नहीं छुटता ५३ देहधारी जीव अपने किये हुये सुख दुःखों को प्राप्त होते हैं परन्तु जो उन कर्मों में कारणरूप होजाता है वह अहंकार से बँधताहै ५४ जैसे गौका बछड़ा हज़ारों गौओंमें अपनी माता को ही प्राप्त होजाताहै वैसेही शुभाशुभ कर्म भी अपने कर्ता को अवश्य प्राप्त होजाते हैं ५५ जिसका भोगके विना नाश नहीं है ऐसे बड़े बली पूर्वकर्म को अन्यथा करनेमें कौन समर्थ होसक्ताहै ५६ प्रथम जिस ने जो कर्म किया है वही कर्म उस भगते हुये के पीछे भागता है और सोतेहुये के संग सोता है ५७ ठहरतेके

संग ठहरता करतेहुयेके संग करता हुआ छाया के स-
मान साथ में रहनेवाला विधान कियाजाता है ५८ जैसे
कि धूप और छाया परस्पर में नित्यसम्बन्ध रखती हैं
वैसेही कर्ता और कर्म भी निस्सन्देह नित्यसम्बन्ध से
बंधेहुये हैं ५६ ग्रह, रोग, चोर, राजा, पक्षी आदि जीव यह
सब पूर्व जन्मके पीड़ा दियेहुये मनुष्यको पीछे पीड़ा देते
हैं ६० जिसको जहां जैसे सुख दुःखादिका भोगना है वह
उसी स्थानपर बल से रज्जु से बांधेहुयेके समान दैवसे
नियुक्त किया जाताहै ६१ जीवों के सुख दुःख उत्पन्न क-
रने में दैवही कारण है इस हेतुसे वह कर्म किसी दशामें भी
मनुष्य को अन्यथा समझना न चाहिये ६२ समय के
विना दैव मध्य में किसीके मारनेकी इच्छा नहीं करता
है और शस्त्र, अग्नि, दुर्गम स्थान इन्होंसे भी रक्षा क-
रनेके योग्यों की रक्षा करताहै ६३ दैवसे रक्षित किया
हुआ पुरुष विना रक्षा किये हुये भी ठहर जाताहै और
दैवसे अरक्षित होकर अनेक प्रकार से रक्षा किया हुआ
भी पुरुष नष्ट होजाताहै अनाथ पुरुष वनमें भी छोड़ा
हुआ जीता रहता है और यत्न कियाहुआ घरमें भी पु-
रुष नहीं जीवताहै ६४ जैसे कि पृथ्वी पर अनेक प्रकार
के रत्न हैं और उत्पन्न होते हैं वैसेही आत्मा में कर्म र-
हते हैं और उत्पन्न भी होते हैं ६५ जैसे कि तैलके अ-
भाव होनेसे दीपक शान्त होजाता है उसी प्रकार कर्मके
क्षय होनेसे जीव का शरीरभी नाश को प्राप्त होजाता
है ६६ तत्त्वज्ञ पुरुषों ने कर्म के क्षय होनेसे मनुष्यों की
मृत्यु कही है और अनेक प्रकार के रोग जो जीवों के

शरीर में होते हैं वही हेतुरूप हैं ६७ इस कारण हे लुब्धक! और बृद्धाब्राह्मणी मैं और मृत्यु अथवा यह सर्प हम तीनों इसमें कारण नहीं हैं यह बालकही अपनी मृत्यु में कारण है ६८ दुःख सुख और जन्ममरणवाले आत्मा की आत्मा ही ऐसे योनि कही जाती है जैसे कि अग्नि की योनि अरणी अर्थात् अग्निमथन काष्ठ होता है ६९ भीष्मजी बोले कि; ऐसे कालसे समझाई हुई गौतमी ब्राह्मणी अपने कर्माधीन लोकों को जानके अर्जुननामी व्याधसे यह वचन बोली ७० कि हे लुब्धक! इस बालकके बधमें काल सर्प और मृत्यु यह तीनों कारण नहीं हैं यह बालक अपनेही कर्मके द्वारा काल पाकर मृत्युके वश हुआहै ७१ यह कर्म मेराही किया हुआ है जिससे कि यह बालक मरगया है काल और मृत्यु चलेजायँ और हे अर्जुन! तूभी इस सर्पको छोड़दे ७२ भीष्मजी ने कहा कि यह सुनतेही काल और मृत्यु तो जहांसे आये थे वहीं चलेगये और अर्जुन व्याध समेत गौतमी भी शोकसे निवृत्त हुई ७३ हे राजन्! ऐसा जान कर तू शोक से शान्त होजा और चिन्ता में तत्पर मत हो इन लोकों को कर्माधीन जानके जन्म विवाह मरण कोभी कर्मही के आधीन जानो ७४ हे पार्थ! यह कर्म तैंने नहीं किया है और दुर्योधनादिकोंने भी नहीं किया किन्तु यह सब कर्म कालकेही किये हुये हैं जिससे कि सब राजा लोग हत होकर नष्ट होगये वैशंपायन बोले कि; धर्मपुत्र युधिष्ठिर ऐसे भीष्मजीके वचनको सुनकर ज्ञाति

बन्धु आदि के शोक को त्यागकर स्वस्थचित्त होता भया ॥ ७५ । ७६ ॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयेभाषायांगौतमीलुब्धकपन्नगमृत्युकालसंवादोनामद्वितीयोध्यायः ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय ॥

वैशंपायन बोले कि; इस प्रकार भीष्मजी और यदुनन्दन श्रीकृष्णजीके कहनेसे राजाओंमें शार्दूलरूप वह राजा युधिष्ठिर फिर यह वचन बोला १ हे भगवन्! दान और तप में कौनसी बात दुष्कर है और मरने के पीछे कैसा महत्फल मिलता है इन बातों को हे तपोधन! मुझे समझाकर कहो २ व्यासजी बोले कि; पृथ्वी पर दानके सिवाय दूसरा कुछभी दुष्कर नहीं है हे राजन्! यह लोक का साक्षी दान प्रत्यक्ष दीखता है ३ धनकी इच्छावाले पुरुष अपने प्रियप्राणों को भी त्याग के धनके निमित्त समुद्र में तथा गह्वर वनमें भी प्रवेश कर जातेहैं ४ और सेवाकरनेमें प्रवृत्त होकर अपनी कही हुई वृत्तियों में अर्थात् कोई हिंसा कोई क्लेशकारी खेती आदि में प्रवृत्त होजातेहैं ५ हे पुरुषव्याघ्र! दुःख से संचित कियेहुये प्राणोंसे भी प्रिय लगनेवाले द्रव्य का त्याग अर्थात् दानकरना बड़ाही दुष्कर है ६ हे महाराज! विशेष करके न्यायसे संचित कियेहुये धनको श्रद्धा से विधिपूर्वक पात्र के अर्थ देना बड़े ही अनन्त फल

का देनेवाला है ७ श्रद्धा धर्म की पुत्री है वही सब की पवित्र करनेवाली और विश्वको धारण करनेवाली है और सावित्रीरूप से संसारसागर से पार उतारनेवाली है ८ धर्म श्रद्धाही से सिद्ध कियाजाता है श्रद्धारहित बहुत से धन की राशियों से भी धर्म नहीं किया जाता क्योंकि मुनिलोगों के पास तो कुछ भी धन न था परन्तु वे अपनी श्रद्धाहीसे स्वर्गको गये ९ इस स्थान पर एक इतिहास को कहते हैं जिसमें द्रोणपरमित अर्थात् १२ ॥ सेर अन्न के दान करने से मुद्गल ऋषि ने एक बड़े फल को पाया है १० पूर्वकाल में एक धर्मात्मा शिलोञ्छ वृत्तिवाला मुद्गल ऋषि कुरुक्षेत्र में बसता था वह बड़ा शान्त शील स्वभाववाला अतिथि अभ्यागतों की सेवा करनेवाला ११ स्वाध्याय वेद में सम्पन्न सत्यवक्ता निन्दारहित जितेन्द्रिय और क्रोध दम्भादिकों से रहित था इन आचरणों से साक्षात् दूसरा धर्म ही था १२ वह सदैव शिलोञ्छवृत्ति से पन्द्रह दिन में एक द्रोणभर अर्थात् १२ ॥ सेर अन्न का संचय करता था और अपने पुत्र स्त्री समेत १५ दिनमें अभ्यागतों से शेष रहे अन्नका भोजन किया करता था १३ उस अद्भुतकर्मा को सुनकर दुर्वासा ऋषि उसके देखने को बड़े उन्मत्तरूप नग्न अङ्ग और अनेक प्रकार की बोलियां बोलते हुये उसके पास आये और उस तीव्र व्रतवाले मुद्गल ऋषिसे यह वचन बोले कि हे मुनि! मैं तेरे पास अन्नके निमित्त आयाहूं १४ व्यासजी कहते हैं कि उस मुद्गल ऋषि ने उसको देखतेही पूजन

किया और वचनों से तृप्त करके यह वचन कहा १५ कि अहो मैं आज बड़ा भाग्यवान् हूं कि मेरे मनोरथ के समान हे द्विजोत्तम ! तुम विना ध्यान किये हुये ही मेरे समीप कृपा करके समय परही आयेहो १६ हे ब्रह्मन् ! आपके इस आगमन से मुझ हर्षितचित्त वालेको आजका दिन महोत्सव के समान विदित होता है १७ व्यासजी बोले धर्म का जाननेवाला वह मुद्गल ऋषि इस प्रकारसे कहके न्यायपूर्वक पूजन करके बड़े आनन्द में भरकर शिलोञ्छवृत्ति से इकट्ठे किये हुये उस अन्नको उसके अर्पण करताहुआ १८ श्रद्धा से दियेहुये उस अन्नको उस दुर्वासाऋषि ने बड़े आनन्द से भोजन किया और शेषरहे हुयेको अपने अङ्गों में लेपकरके जहां से आये थे वहीं चले गये १९ इसी प्रकार से छःबार उस महात्मा के भोजन के समय आन आन कर दुर्वासाजी भोजन करके चलेगये २० परन्तु इस महात्मा के मनको क्रोध कृपणता अपमान और मत्सरता आदिकसे डिगानेको समर्थ नहीं हुये २१ तब दुर्वासाजी प्रसन्न होके और उसको शुद्धभाव जानके यह वचन बोले कि; हे मुद्गल ! संसार में तेरे समान अन्न का दाता न हुआहै न होगा २२ धर्म संज्ञा को क्षुधासे डिगाते हुये भी धैर्यही को ग्रहण करता है हे ब्राह्मण ! जिसने क्षुधाको जीता है उसने स्वर्ग को भी जीता है २३ इसके विशेष तुमने बड़े दुर्जय काम, क्रोध, लोभ, मद, निन्दा, मत्सरता, माया, मान, कृपणता और सब लोक भी तैंने कर्मोंकरके जीत लिये हैं इस

हेतुसे तू परम गति को प्राप्त है यह तेरा बड़ाभारी दान सब स्वर्गवासियोंने भी देखा है २४। २५ और जितेन्द्रियता, धैर्य, तप, सत्य, क्षमा, कोमलता, दया, दान, दमन यह सब भी तुझमें वर्तमान हैं २६ यह चराचर जीवों समेत सब लोक धर्महीं से स्थित हैं हे ब्रह्मन्! आप सरीखे स्तम्भरूपोंसे ही यह धर्म भी धारण किया जाताहै २७ मुद्गल बोला कि; मैं धन्यहूं अनुगृहीतहूं कि आज मुझको श्रेष्ठ पुरुषों का समागम हुआ है यह समागम सदैव पापों का हरनेवाला है २८ व्यासजी बोले कि, इस प्रकार उनके कहतेही में दिव्यरत्नों से विचित्र किंकिणी झरोखे और सुगन्धित मालाओंसे शोभित सर्वकामनाओंसे युक्त इच्छाके अनुसार चलनेवाले सुन्दर तेजसे प्रकाशित विमानको लेकर देवदूत मुद्गल के पास आकर प्राप्त हुआ २९। ३० और उससे बोला कि हे ब्रह्मर्षे! आप इस पर सवार हूजिये तुम अपने कर्मसे संचित कीहुई सिद्धिको प्राप्त हुयेहो ३१ इन्द्रादिक सब देवता और ब्रह्मर्षिलोग यह सब तुम्हारे दर्शन की इच्छासे उद्योगपूर्वक उपस्थित हुये हैं ३२ मुद्गल बोला बुद्धिमान् पुरुष श्रेष्ठ पुरुषोंके सत्यहीको अपनी मित्रता वर्णन करतेहैं इस कारण अपने हितकी कामना करके मैं विश्वासपूर्वक तुझसे पूछताहूं ३३ हे दूत! स्वर्गमें बसनेवालों का क्या गुण है और कौनसा दोषहै इसको कह पीछे जैसा आत्मा को हितकारी समझूंगा वह करूंगा ३४ देवदूत बोला हे महर्षे! तुम सारबुद्धिवाले हो स्वर्ग में जैसा सुखहै उसको आप बुद्धिसे विचारकर और

उसीको प्राप्तहुआ भी जानकर अधिक मान लीजिये हे मुद्गल ! वहां नन्दन आदिक बड़े रमणीक चित्तरोचक बगीचे सब कामनारूपी फल पुष्पयुक्त वृक्षों से चारों ओरको शोभित होरहे हैं ३५ । ३६ और अप्सराओंसे शोभित सब रत्नोंसे पूर्ण इच्छापूर्वक चलनेवाले स्थिर तरुण सूर्यके समान कान्तिवाले मुक्तादिकों के जाली झरोखों से विचित्र चन्द्रमण्डल के समान श्वेत और सैकड़ों सुवर्णकी शय्याओंसे भरेहुये दिव्य विमान हैं ३७ । ३८ उन स्थानों में सब कामनाओं की सद्धिवाले सब दुःखोंसे वर्जित श्रेष्ठकर्मी मनुष्य बड़े आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करते हैं ऐसे स्थानों में नास्तिक, अजितेन्द्रिय, क्रूर, निन्दक, कृतघ्नी, अभिमानी, क्रोधी, लोभी, दम्भी और छल करनेवाले लोग नहीं प्राप्त होते हैं केवल सत्यवादी, तपस्वी, शूरवीर, दयावान्, क्षमावान् और यज्ञ दान करनेवाले लोगही वहां बसतेहैं उन सुन्दर आलयोंमें रोग, जरा, मृत्यु, शोक और शीतोष्णता आदिक किसीप्रकारके दुःख नहीं हैं ३९।४०।४१।४२ और हे मुद्गल ! वहां किसीको क्षुधा, तृषा और ग्लानि नहीं है इन सब गुणोंके सिवाय और अनेक प्रकार के गुण हैं ४३ हे विप्र ! अब वहांके दोषोंको भी सुन प्रथम तो वहां शुभकर्मों काही फल भोगाजाताहै ४४ इसके विशेष कुछ और नहीं होता परन्तु पराई देदीप्त शोभा को देखकर सन्तोष नहीं रहता है ४५ और सुखही में आसक्त चित्तवालों का अकस्मात् अधःपतन अर्थात् नीचे गिरजाना होता है इस स्थान में जो कर्म किया

जाता है उसका फल वहां नहीं भोगाजाताहै ४६ इस पृथ्वीको कर्मभूमि कहते हैं और उस स्वर्ग को स्वर्ग फल भूमि कहते हैं ४७ मुद्गल बोला कि; तुमने निश्चय करके यह बड़े स्वर्गके दोष वर्णन किये अब बड़ा निर्दोष शाश्वत अर्थात् निश्चल जो लोक होय उसका वर्णन करो ४८ देवदूत बोला हे महामुने! ब्रह्मलोक से लेके जहांतक यह लोक हैं सब में यही दोष हैं इसी हेतु से ज्ञानी पुरुष किसी स्वर्गकी इच्छा नहीं करतेहैं ४९ ब्रह्मा के लोक से ऊपर विष्णु को परमपद है वह शुद्ध सनातन और ज्योतिरूप है उसीको ज्ञानीलोग परब्रह्मरूप ब्रह्मपद बोलते हैं ५० वहां विषयात्मक मूढ़ पुरुष नहीं प्राप्त होते हैं और दम्भ, लोभ, मद, द्रोह, क्रोध और मोह इनसबसे रहित पाप पुण्यसे वर्जित जितेन्द्रिय होकर ध्यान में प्रीति करनेवाले साधुजनही वहां निवास करते हैं ५१।५२ हे मुद्गल! जो तुमने मुझसे पूछा वह सब मैंने कहा अब शीघ्रता से इस विमान पर मेरे साथ स्वर्गको चलो ५३ व्यासजी बोले कि; ऐसे दूत के मुखसे सब वृत्तान्त सुनके वह उस दूत से कहने लगा कि आप जहांसे आयेहो वहांही जाओ मैं स्वर्ग को नहीं जाऊंगा ५४ और देवराज इन्द्रादिक समेत सब ब्रह्मर्षियोंसे मेरा प्रणाम कहकर मेरी ओरसे बन्दनापूर्वक क्षमापन करवादेना ५५ व्यासजी ने कहा कि वह धर्मात्मा मुद्गल मुनि देवदूत से ऐसा कहकर पुनरावृत्तिवाले स्वर्ग के सुखों की इच्छासे रहित होगया ५६ इसके पीछे स्वर्ग की कामना से रहित होके उस

देवदूत को विदाकर ध्यानयोग में तत्पर हुआ ५७ फिर सदैव एकान्तनिवासी स्वच्छतापूर्वक निरहंकारी सब दुःखसुखोंका सहनेवाला धैर्यता से सब प्राणीमात्रों में प्रीति करता इन्द्रियोंको रोक चित्तको आत्मासें तदाकार करता हुआ ईश्वररूप बनगया ५८। ५९ योगियों में श्रेष्ठ वह महर्षि देवताओं से भी बड़े दुष्कर परमयोग में आरूढ़ होकर परम दुर्लभ परमपदको प्राप्त होगया ६० सत्य है जो पुरुष जगत् की योनि कूटस्थ अचलात्मक ऐसे नारायण को प्राप्त होते हैं वह निस्सन्देह परमपद को जातेहैं ६१ हे राजेन्द्र! इस हेतु से तूभी अपने न्याय से संचित किये धन को दानकर और दानसे ज्ञान को प्राप्त करताहुआ ज्ञानसिद्धि के द्वारा अवश्य मोक्ष को प्राप्त होजायगा ६२ जो इस पवित्र आख्यान को नित्य सुने सुनावेगा वह सब पापों से छूटकर विष्णु के लोक को प्राप्त होगा ६३ और वह मुद्गल ऋषि हिरण्यवर्ण सर्वव्यापी हरि का आराधन करके दूत के कहे हुये स्वर्ग के दोषयुक्त सुखों से निरपेक्ष ईश्वर में तदाकारवृत्ति होकर सायुज्यमुक्ति को प्राप्त हुआ ॥ ६४ ॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायांमुद्गलोपाख्यानेदानधर्म-शासनंनामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय ॥

वैशंपायन बोले कि; तीर्थों के अद्भुत प्रभावों के वक्ता धर्मतत्त्व के ज्ञाता लोमशऋषि से युधिष्ठिर ने पूछा १

कि हे ब्रह्मन्! जो भयभीत शरणागत की रक्षा करताहै उसके पुण्यका जो फलहै उसको मुझसे कहिये २ लोमश ऋषि बोले हे राजन्! सुन्दर दक्षिणावाले सब यज्ञ तो एक ओर हैं और भयभीत प्राणी की रक्षाका फल एक ओर है ३ इसको प्रथम देवताओं ने तुला में धरकर जो तोला तो दक्षिणावाले सब यज्ञों से प्राणधारी की रक्षा का फल अधिक निकला ४ यहां एक प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिसमें इन्द्र का अग्नि से और शिवि का औशीनर से संवाद है ५ महायज्ञ के करने में प्रवृत्त होनेवाले शिवि राजा की परीक्षा लेनेके निमित्त इन्द्र तो बाज़ बनके और अग्नि कपोत होके दोनों उसके पास गये ६ वहां बाज़के भय से महाव्याकुल होकर वह कपोत राजाकी शरण में आया ७ इसके पीछे बाज़का रूप धारण किये इन्द्र भी उस कपोत का पीछा करता हुआ वहांही आकर उस महात्मा राजा से यह वचन बोला हे पृथ्वी के पालन करनेवाले, राजन्! मनुष्य तुझको बड़ा धर्मात्मा कहतेहैं सो तू धर्मविरुद्ध कर्म करने की कैसे इच्छा करता है ८।९ कि इस कृतघ्नी, क्रूरकर्मी, अनृतवादी, असाधु कपोत को अपनी दानशीलता और सत्यवादीपनेसे ग्रहण करते हो १० जो उपकार करे उसीका आपको उपकार करना उचित है आप तो उपकारी जन हो जो इस कपोत का अपकार करोगे तो यह भी उपकार हीहै तुम अहित कर्म में हितबुद्धि करते हुये पापमें भी पाप नहीं करतेहो दोषोंके ढूँढ़ने और गुणोंके देखने में तो अत्यन्तही चतुर हो ११। १२

हे राजन् ! क्षुधासे मुझ पीड़ितका यह उसी समयमें भक्ष्य था अर्थात् भक्षण करनेकेयोग्य था ऐसा समझकर तू धर्मकी हिंसा मत करे क्योंकि तुझको तो धर्महीं रचा है १३ राजा बोला हे बाज़ ! यह भयभीत हुआ कपोत पक्षी अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये तुझसे डरता हुआ मेरे समीप में आया है यह पक्षी केवल अपने प्राण बचानेकी इच्छा करता है १४ सो भयभीत होकर इस प्रकार से शरणागत आयेहुये इस पक्षी का त्याग मुझ सरीखे जन कैसे करसक्के हैं क्योंकि यह बात श्रेष्ठपुरुषों से निन्दित है १५ जो पुरुष लोभसे द्वेषसे तथा भयसे शरणागतको त्याग देताहै उसके पाप को बुद्धिमान् जन ब्रह्महत्या के समान कहतेहैं १६ महापापवालों का भी उपाय शास्त्र में देखा है परन्तु शरणागत त्यागने वा मारनेवालों का प्रायश्चित्त कहीं नहीं देखाहै १७ जैसे कि अपने प्राण प्यारे लगते हैं वैसेही सब प्राणीमात्रोंके जानने योग्य हैं इस हेतुसे बुद्धिमान् धर्मवाले मनुष्य को मृत्युके भयसे डरेहुये मनुष्यादिकों की रक्षा करनी चाहिये १८ जन्म मृत्यु जरा दुःख इन्होंसे संसारसागर में सब जीवमात्र क्लेश पाते हैं और अन्त में मृत्यु का त्रास मानते हैं १९ जिसके निमित्त शोक त्रास और क्रोध होता है अथवा जिसका मूल श्रम ही है ऐसे एक अङ्गको भी त्यागदेना योग्य है २० अपने मरजाने का जो पुरुष को दुःख होता है उसीप्रकार के ध्यानसे दूसरे की भी रक्षा करे २१ जैसे कि अपना जीवना प्रिय है वैसेही दूसरे को भी अपना जीवन प्रिय है और जैसे

अपने जीवनकी रक्षा करताहै तैसेही पराये जीवनकीभी रक्षा करे २२ इस हेतुसे हे बाज़! मैं इस भयभीत शरणागत आये हुये कपोत को तेरे अर्पण नहीं करसक्ता इसमें जो कुछ तू युक्ति जानता होय उसको मुझसे शीघ्र ही कहदे २३ बाज़ बोला हे जनेश्वर! आहारसे सब जीवों की उत्पत्ति होती है और आहारहीसे जीवते वा बढ़ते हैं २४ अन्य २ बातों के विना तो मनुष्य बहुत कालतक जीवता रहसक्काहै परन्तु आहार करे विना तो यहां जीव कहीं जीवने को समर्थ नहीं होसक्का २५ हे राजन्! इस आहारके लोप होजानेसे अर्थात् इसभक्ष्य के न मिलनेसे मेरे प्राणों की रक्षा तू क्यों नहीं करता अब मैं ऐसा क्षुधातुर हूं कि विना भोजनके मेरे प्राण इस शरीर को त्यागकर निस्सन्देह निकलजायँगे २६ और मेरे मरनेके पीछे मेरे पुत्र स्त्री और कुटुम्ब भी मरजायँगे सो तुम इस एक कपोत की रक्षा करके बहुतों के प्राणों का नाश करोगे २७ हे परन्तप! जो धर्म कि किसी दूसरे धर्म की बाधा करता है वह धर्म नहीं कहाता है और जो धर्म कि किसीका विरोधी नहीं है उसीको श्रेष्ठ पुरुषों ने धर्म कहाहै २८ इन धर्मके विरोधियों में जो हलका और भारी हो उसका विचार करके निर्णय करो २९ राजा बोले हे बाज़पक्षी! जो भयभीत प्राणियों को अभय दान दियाजाता है इससे बड़ा और भारी कोई दूसरा धर्म नहीं है ३० एक भी भयभीत जीवको अभयदान देनेके समान हज़ारों ब्राह्मणों का भोजन और हज़ारों गोदानों का फल नहीं है ३१ जो

पुरुष दया में तत्पर होके सबजीवों के अर्थ अभय-
दान देताहै उसके समान इस देहधारी के मुक्त होने
के लिये दूसरा धर्म नहींहै ३२ सुवर्ण धेनु पृथ्वी इत्या-
दिकोंके देनेवाले तो इस पृथ्वीमण्डलमें बहुत हैं परन्तु
सबजीवों का अभयदान देने वाला बड़ा दुर्लभ कोई
बिरलाही मनुष्य होताहै ३३ बड़े २ यज्ञोंका भी फल
काल करके नष्ट होजाताहै परन्तु अभयदान देनेका
फल अक्षय होताहै ३४ वाञ्छित दियाहुआ तप किया
हुआ तीर्थसेवा और शास्त्रका सुनना यह सबभी मिल
कर अभयदान की सोलहवीं कलाके समान नहीं
होते ३५ जो पुरुष चारों समुद्र पर्यन्तकी पृथ्वी का
दानदे और कोई भयभीत शरणागत को अभयदानदे
इनमेंसे अभयदान देनेहीवाला श्रेष्ठ और अधिकहै ३६
चाहे मेरा यह राज्य जाता रहे और इस दुष्कृत शरीर
को भी मैं त्यागदूं परन्तु भयसे संत्रस्त हुये इस कपोत
को कभी नहीं त्यागसक्ताहूं ३७ और जो कुछ कि मेरा
सुकृत है उसके द्वारा मैं जन्म जन्म में भयार्त दुःखित
पुरुषों की पीड़ा का नाश करनेवाला होजाऊं ३८ मैं न
तो राज्य की इच्छा करताहूं न स्वर्ग की न पुनर्जन्म की
केवल दुःख से संतप्त प्राणियों के दुःखनाश करने की
इच्छा करताहूं ३९ मैंने जो मिथ्यासे रहित वचन सत्य २
कहाहै तो मेरे सत्यसे महेश्वर भगवान् प्रसन्नहोजायँ ४०
हे पक्षी! तेरा यह समागम केवल आहारके निमित्त हुआ
है सो जिस आहार की तू इच्छाकरे वही मैं दूं ४१ बाज़
बोला कि; हे नरेश्वर! जो तू ऐसाही मानताहै तो इसी

कपोत को विधाता ने मेरा आहार रचा है इसीको छोड़ दे इसके सिवाय अन्य आहार की इच्छा नहीं करता हूं क्योंकि बाज़ कपोतहीको विशेष करके खाताहै यह सनातन से कहते आयेहैं हे राजन्! तू सारवस्तु के जानेविना केलेके गूदेपर मत सवार हो ४२।४३ राजाने कहा हे विहंग! मैं कुशास्त्र मार्ग करके कभी नहीं बर्तताहूं अर्थात् मिथ्या नहीं बोलता क्योंकि सत्य दया आदि में तत्पर रहना शास्त्रों से देखा हुआ धर्म है ४४ हे पक्षी! सब द्रव्यादिक पदार्थोंके दानों से एक दया करने का धर्म अधिक है ४५ हे खेचर! जिसको सब वेद यज्ञ और सब तीर्थों का अभिषेक यहभी नहीं करसक्के तिसको एक प्राणियों पर दया करसक्की है ४६ जो प्राणी मन, कर्म, बचनसे सबभूतों के हित में रत रहते हैं और दयाके मार्गको दिखातेहैं वह ब्रह्मलोक को प्राप्त होतेहैं ४७ और जिस मनुष्य की जागते सोते चलते और ठहरतेहुयेमें भी प्राणियों के हितकी चेष्टा नहींहै उसकी चेष्टा पशुओं के समान है ४८ जो मनुष्य स्थावर जङ्गम जीवों की रक्षा अपने प्राणोंके समान करते हैं वह परमगति को पाते हैं ४९ जो मनुष्य समर्थ होके प्राणियोंके बधको देखता है वह घोर नरक में जाता है ऐसा पण्डितजन कहते हैं ५० हे पक्षी! इस कपोतके विना जो तू मुझसे मांगेगा वही मैं तुझको दूंगा ५१ बाज़ बोला हे राजा जो तेरी कपोतहीसे ऐसी दृढ़ प्रीति है तो कपोतके बराबर अपने मांस को देदे ५२ राजाने कहा कि; हे बाज़! जो तू मेरा अभिघात करताहै इसको मैं अनुग्रह मानता

हू जितने मांस की तू इच्छा करताहै उतना अपना मांस मैं तुझे दूंगा ५३ जो अप्रिय बात होतीहै उसको बुद्धि-मान् लोग विलम्ब लगाते हैं और देरमें कहतेहैं परन्तु मुझ को तो यह बात प्रिय है इसकारण इसमें बहुत विलम्ब करना उचित नहीं है ५४ जो यह शरीर प्राणी के उपकारके लिये नियुक्त न किया जावेगा तो किस अर्थ में आवेगा ५५ बाज़ने कहा हे जनेश्वर! तेरे अ-धिक मांसको मैं नहीं चाहता केवल इस कपोतही के स-मान तुलामें रखकर तोल दो ५६ और क्षण क्षण में बिनाश होनेवाले चलायमान इस शरीरसे जो अचल धर्म को संचित नहीं करता है वह जड़बुद्धी मनुष्य शोचनेके योग्य है ५७ राजा बोला हे बाज़! जो मैंने तुझ से कहा है सो मैं अवश्य करूंगा हे पक्षी! अब तुझको भी वही बात करनी योग्यहै जिससे कि इस क-पोत की मुझसे रक्षा होजाय ५८ लोमशऋषि कहतेहैं कि; वह प्रभु समर्थ राजा ऐसे वचन कहकर अपने मांस को काट कर कपोत के बराबर तराजू से तोलने लगा ५९ सत्य है साधुलोग सबजीवों के हितकी इच्छा करके अपने सुख दुःखों को त्याग दूसरेके दुःखों से आप सदैव दुःखित होते हैं ६० इस प्रकार तराजूपर धरा हुआ कपोत जब राजा के उस काटेहुये शरीर के मांस से भारी हुआ और पलड़ा नीचारहा तब राजा फिर अपने मांस को काटकर चढ़ावता हुआ ६१ इसपरभी उसका मांस उस कपोतके समान नहीं हुआ तबतो वह क्षीणमांसवाला राजा आपही तराजूपर चढ़बैठा ६२ यह

बात सत्य है कि पराये दुःखोंसे आतुर सबभक्तोंके हित में रत होने वाले महात्मा पुरुष अपने सुखों की इच्छा नहीं रखते ६३ जब कि वह औशीनर राजा तुलापर चढ़ गया तब देवतालोग दुन्दुभी बजाकर पुष्पोंकी बर्षा करने लगे ६४ और इन्द्रभी उस राजाकी दृढ़धर्म में धारणा देख कर बाजके रूप को त्याग अपने रूपमें स्थित होके यह वचन बोला ६५ हे राजन्! मैं इन्द्र हूं और यह कपोत रूप अग्नि है हे पृथ्वीपते! आपका कल्याण हो हम दोनों आपकी परीक्षा करनेको आयेथे ६६ ऐसा कर्म प्रथम किसी राजाने नहीं किया न आगे कोई करेगा जैसा कि दुष्कृतकर्म तैंने किया है ६७ जैसे कि पराये प्राणों के जानेमें तुझको बचानेकी प्रीति उत्पन्न हुई वह प्राणों को प्रिय माननेवाले किसी अन्य देहधारी को नहीं हुई ६८ और हे राजन्! दूसरेके प्राणों को बचाने के निमित्त अत्यन्त कल्याणकरनेवाली तेरीही करुणा इस प्रकार से आचरण करती है दूसरे की नहीं करसक्ती ६९ जैसे कि यह सब जगत् अपने कर्मरूप पाश से बँधा हुआ है वैसेही हे नृपोत्तम! तू संसार के दुःख छुटानेके लिये करुणा से बँधा हुआ है ७० इस संसार की स्थिति में तेरी बासना भी नहीं है परन्तु सर्वात्मताभाव करके तुझ को दोषों में भी हित है ७१ श्रेष्ठ पुरुषों में ईर्षारहित होना हीनांगवालों का अपमान न करना और बराबरवालों में स्पर्द्धा द्वेषभाव न करना इन सब गुणोंसे तू इस संसारमें उत्तमताको प्राप्त है ७२ पराये उपकार करने को विधाताने एक सजल मेघ

दूसरा सफलवृक्ष और तीसरे तुमहीं को रचाहै ७३ जो मनुष्य अपने प्राणों से दूसरेके प्राणों की रक्षा करता है वह उस परमधाम को प्राप्त होताहै जहांसे कि फिर लौट नहीं आता है ७४ हे राजन्! तैंने अपने प्राणोंसेही इस दीनप्राणीकी रक्षा करी और अपने शरीरका मांस भी देदिया तो अन्य द्रव्यों की क्या कथा है ७५ केवल अपनाही उदर भरनेवाले तो पशु भी जीवते हैं परन्तु उसी जीवतेहुयेकी प्रशंसा है जोकि परायेही निमित्त जीवता है ७६ जैसे कि चन्दन के वृक्ष केवल दूसरेकेही निमित्त शीतलता आदि देने को पृथ्वी पर होते हैं वैसे ही सन्तजन भी परायेही अनुग्रह करने में तत्पर रहते हैं ७७ जो पुरुष पराये उपकारके व्यापारमें तत्पर रहता है वह परमपद को प्राप्त होता है हे राजन्! तुम सरीखे पुरुष जगत् के हितके लिये जन्मते हैं और पराये सुख के लियेही बुद्धि रखते हुये अपने सुख की इच्छाभी नहीं रखते हैं ७८ । ७९ हे धरणीश! जो कि परायेप्राण की रक्षा के लिये तुमने अपने शरीरसे मांसपिण्डोंको काटा सो यह तुम्हारी अचलकीर्ति सबलोकों में व्याप्त हो जायगी ८० और तुम दिव्यरूपको धारण कियेहुये चिरकाल तक इस पृथ्वीका पालनकर सब लोकोंको उल्लङ्घन करके ब्रह्मलोक में व्याप्त होजाओगे ८१ लोमश बोले कि; वह इन्द्र और अग्नि राजा से इस प्रकार की वार्त्तालाप करके स्वर्गको गये और वह राजाभी यज्ञका पूजन करके बहुत कालतक देवताओंके समान आनन्द करता भया ८२ जो मनुष्य इस शिबिराजा के चरित्र

को नित्य सुनेगा वह सब पापों को त्यागकर स्वर्ग में प्राप्त होगा ८३ वह त्रिलोकी का भूषणरूप राजा शिबि अपने शरीर को अध्रुव और चलायमान जानकर और सबसे दुष्प्राप्य यशको ध्रुव मान शरीर के दानपूर्वक पराये जीवकी रक्षा का विधान करके इस शरीरको त्याग स्वर्गलोक को गया ॥ ८४ ॥

इति इतिहाससमुच्चयभाषायांश्येनकपोतीयोनाम

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पांचवां अध्याय ॥

वैशंपायनजी बोले कि, बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् इन्द्रके समान महापराक्रमी भीष्मजी को शरशय्यापर प्राप्तहुआ १ जान उनके दर्शनके निमित्त अत्रि, वशिष्ठ, भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, गौतम, अगस्त्य, सुमति और आत्मवान् २ विश्वामित्र, स्थूलशिरा, संवर्त्त, प्रमति, दम, रैभ्य, बृहस्पति, वेदव्यास, च्यवन, कश्यप, ध्रुव ३ दुर्वासा, जमदग्नि, मार्कण्डेय, गालव, उशना, भरद्वाज, यवक्रीत, त्रिक ४ स्थूलाक्ष, सकटाक्ष, कण्व, मेधातिथि, ध्रुव, नारद, पर्वत, सुधन्वा ५ मित्र, भू, भुवन, धौम्य, शतानन्द, धृतव्रत, जमदग्निके पुत्र परशुराम, कच, चैत्य, एधमा, धय, यह सब बड़े २ महात्माऋषि आतेहुये ६ इन सब तेजपुञ्ज ऋषियों का भाइयोंसमेत धर्मपुत्र राजायुधिष्ठिर ने यथायोग्य न्यायसे प्रणामादिपूर्वक पूजन किया तब वह

जगत्के पूज्यरूप सुन्दर तेजवाले ऋषि राजासे पूजित होकर विराजमान होतेहुये और भीष्मजी के समीप होकर धर्मसम्बन्धी कथाओंको कहने लगे ७। ८ उनकी धर्मसम्बन्धी कथाओंके पीछे राजायुधिष्ठिर भीष्मजी को प्रणाम करके यह बात पूछने लगा कि हे पितामह! धर्मार्थी पुरुषों को कौन २ देश, नदी, पर्वत और आश्रम सेवन करने चाहिये ९। १० भीष्मजी बोले कि; यहां एक प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिसमें कि एक शिलोञ्छवृत्तिवाले ब्राह्मण का और महात्मा सिद्ध का संवाद है ११ किसी समय एक द्विजातिरूप सिद्ध पृथ्वी पर बिचरता हुआ किसी शिलोञ्छवृत्ती गृहस्थी ब्राह्मण के घरगया १२ वहां उस ब्राह्मण ने उसका आतिथ्य-भाव से पूजनकिया और पूजन कियेहुये आनन्दपूर्वक श्रम से रहित आसनपर बैठेहुये उस सिद्धसे वह ब्राह्मण यही बात पूछता हुआ जो तैंने मुझसे पूछी है ब्राह्मण बोला कि हे महात्मा सिद्धजी! देश, राष्ट्र, पर्वत, नदी इनमेंसे पुण्य के देनेवाले हैं उनको आप कृपा करके बताइये सिद्ध बोला वेही देश जनपद पर्वत आश्रम और नदी पवित्र और पुण्यकारी हैं जिनके मध्यमें होकर श्रीगङ्गाजी गमनकरती हैं १३। १५ ब्रह्मचर्य, तप, यज्ञ और दानादिकोंसेभी उस गति को मनुष्य नहीं प्राप्तहोता है जिसको कि श्रीगङ्गाजी के सेवनसे प्राप्त होता है १६ नियतात्मा होके गङ्गाके प्रवाह में बहनेवाले पवित्रजलों से स्नान किये हुये पुरुषों की जो गति होती है वह गति सैकड़ों यज्ञकरनेसे भी नहीं होती है १७ जैसे कि उदय-

काल में अन्धकार को दूर करके सूर्य प्रकाशमान होता है वैसेही श्रीगङ्गाजी के स्नान कियेहुये पुरुष पापों को दूर करके प्रकाशमान होते हैं १८ जैसे कि रुई का समूह अग्नि को प्राप्त होकर शीघ्रही भस्म होजाता है उसी प्रकार श्रीगङ्गाजी में गोता मारतेही सब पाप नष्ट होजाते हैं १९ जो पुरुष सूर्यसे संतप्त हुये गङ्गाजल को पीता है वह पुरुष पापरूपी शीत से छुटकर सूर्यके समान शोभायमान होता है २० जो पुरुष शरीरके शोधने को चान्द्रायण व्रत करता है और जो श्रीगङ्गाजी के जल को पीताहै वह दोनों समान हैं २१। २२ जो पुरुष हज़ार युगोंतक एक पैरसे खड़ारहे उससेभी अधिक श्रीगङ्गाजी में यथेष्ट स्नान करनेवाला होताहै जो पुरुष नीचेको शिर करके दश हज़ार वर्ष लटके और जो एक महीने भर श्रीगङ्गाजी में स्नान करे वह दोनों समान हैं २३ इस संसारमें अनेक बड़े २ पापोंसे ग्रसित हुये पुरुषों को और घोरनरकगामी पुरुषों को सेवित कीहुई श्रीगङ्गाजी उद्धार करती हैं २४ और जो नियतात्मावाले होकर गङ्गाजल के सेवन को जाते हैं वे पुरुषभी इन्द्रादि देवताओं समेत स्वर्ग में नित्य विहार करतेहैं २५ जैसे कि देवताओं की उपजीविका करनेवाली कामधेनु गौ कही है वैसेही देहधारियों के वाञ्छित फल की देनेवाली श्रीगङ्गाजी वर्णनकरी हैं २६ जो पुरुष श्रीगङ्गाजीके तट की मृत्तिका मस्तकपर धारण करताहै वह पापोंके दूर करने के लिये सूर्यको धारण करताहै २७ जो पुरुष श्रीगङ्गाजी के दर्शन करके स्नान को करता है वह अपने सात

पूर्व और सात पर पुरुषोंको परलोकमें पहुँचा देताहै २८ जो पुरुष ध्यानपूर्वक दर्शन स्पर्शन कर गङ्गाजल में स्नान करताहुआ श्रीगङ्गेगङ्गे कीर्तन करताहै वह अन्य मनुष्योंको भी उद्धार करदेता है २९ जो पुरुष अपने जन्म को पुरुषार्थ को और शास्त्र के सुननेको सफल करने की इच्छा करताहै वह बड़े २ महापापी अपावन पुरुषोंको भी पापरहित करके तार देताहै ३० जो पुरुष सब पापोंकी नाश करनेवाली श्रीगङ्गाजीका सेवन करते हैं पुत्रलोग गङ्गाजी पर प्राप्त होकर अपने पितरों का तर्पण करते हैं और जिन्होंने श्रवण, ध्यान, दर्शन, जलपान और स्नान किया है इन सबके दोनों वंशोंको श्रीगङ्गा उद्धार करदेती है ३१ । ३२ जो पुरुष समर्थ होकर भी श्रीगङ्गा जी पर नहीं जाते हैं वह मरने के पीछे अन्धे लँगड़ों के समान जाते हैं ३३ त्रिकालदर्शी बड़े २ उत्तम ऋषियों से सेवित और इन्द्रादिक देवताओं से भी सेवित कीहुई श्रीगङ्गाको कौन नहीं सेवन करते हैं अर्थात् सब सेवन करते हैं ३४ वानप्रस्थ, यती, गृहस्थी, ब्रह्मचारी और सब विद्वान् लोगों से सेवन कीहुई श्रीगङ्गा जीको कौन नहीं सेवन करे ३५ मन वाणी और शरीर से उत्पन्न होनेवाला अनेक प्रकारके पापोंसे ग्रसाहुआ पुरुष श्रीगङ्गाजीके दर्शन करनेसे ही निस्सन्देह पवित्र होजाता है ३६ जो पुरुष प्राण निकलनेके समय श्रद्धापूर्वक सावधानी से मन लगाकर गङ्गाजीका स्मरण करता है वह भी परमगति को प्राप्त होताहै ३७ जितने दिनतक कि गङ्गाजीके जल में मनुष्यों के अस्थि डूबे

रहते हैं उतनेही हज़ार वर्षोंतक वह मनुष्य स्वर्गलोक में बास करते हैं ३८ जो मनुष्य पूर्वावस्था में पापों को करके पीछे गङ्गाजीका सेवन करते हैं वह भी परमगति को प्राप्त होते हैं ३९ जो पुरुष गङ्गाजी की लहरोंमें अपने अस्थि शरीर त्वचा मांस केश और नखों को धोडालता है उस पुरुषको श्रीगङ्गाजी शीघ्रही पवित्र कर देती हैं ४० जिस महापुण्यवाली सुन्दर गङ्गाजी को श्री महादेवजीने अपने शिरपर धारण किया उस महादेवी का आश्रय कौन नहीं करे ४१ इसी पवित्रतासे उन श्रीगङ्गाजी का यश तीनों लोकोंमें विख्यातहै जिन्होंने कि भस्महुये सगरके पुत्रों को स्वर्गमें प्राप्त किया ४२ अन्धे, नपुंसक, जड़, व्यङ्ग, रोगी और नीच जातिके लोग ऐसे २ पुरुष भी गङ्गाजीका सेवन करके देवताओंके समान होजातेहैं ४३ जिन श्रीगङ्गाजीको राजा भगीरथ बड़े भारी उग्रतपों के द्वारा बहुतसा आराधन करके अपने पूर्वजों के उद्धार करने के निमित्त सुमेरु पर्वतके शिखरसे यहाँलाया है ४४ उन सुस्वादु रसयुक्त पुण्यकारी सर्व कामना देनेवाले पवित्रजलों से युक्त श्रीगङ्गाजीको कौन सेवन नहीं करेगा ४५ ऐसी दिव्यरूप विश्वरूप कल्याणरूप और अमृतरूप गङ्गाजीको जो २ नर प्राप्त हुये हैं वह सब स्वर्ग में प्राप्त होगये हैं और जो २ ऋषि मुनि आदिक उस अमृतरूप सुन्दर जल युक्त तीन मार्गोंसे गमन करनेवाली जह्नुमुनि की पुत्री श्रीजाह्नवी गङ्गाजी को प्राप्त हुये हैं वह सब निश्चय करके ब्रह्मलोक में निवास करते हैं ४६। ४७ शिवजी

के गात्र के स्पर्श होनेसे महापवित्र भाव को प्राप्त होने वाली ऐसी श्रीगङ्गाजी को कौन नहीं सेवन करता है गङ्गाजी पर मरण केशव भगवान् में दृढ़भक्ति और ब्रह्मविद्याका बोध यह तीनों बातें अल्प तप का फल नहीं हैं ४८ हे मुनिपुङ्गवलोगो! सब पितरलोग अपने २ पुत्रों से यह इच्छा रखते हैं कि हमारे वंशमेंसे कोई भी धर्मात्मा श्रीगङ्गाजी पै कभी जायगा ४६ जो मनुष्य गङ्गाजलसे अपने पितरों को तृप्त करताहै उसीका जन्म लेना सफल है और वही इस पृथ्वी पर धन्य है ५० दूरदेश का रहनेवालाभी जो पवित्र होकर नियमपूर्वक तीनों कालकी सन्धियों में श्रीगङ्गागङ्गा कहता है वह भी परमगति को प्राप्त होजाताहै ५१ मरणसमय में विष्णु का स्मरण करना अत्यन्त दुर्लभ कहाजाताहै वह फल भी श्रीगङ्गाजीके थोड़ेही सेवनसे प्राप्त होजाता है ५२ विष्णुकी नाभिरूप जलसे सुन्दर कमल उत्पन्न होताहुआ उसकी नाल सुमेरु पर्वत था जिसमें कि ब्रह्मा बास करते हैं वहांही ब्रह्मलोक से प्राप्त आकाश से नीचे आकर शिवजी महाराज के मस्तक पै पड़ी हुई इस पृथ्वीपर गिरकर श्रीगङ्गानामसे प्रसिद्ध हुई सो मधु दैत्य के मारनेवाले विष्णु और ब्रह्माजी से संपर्क होने वाली पवित्र गङ्गाको कौन नहीं बन्दनाकरे ५३ यह मैंने गङ्गाकी महिमा को केवल अंशमात्र कहा है इनके सब गुणोंके कहनेको हज़ारों वर्ष में भी कोई समर्थ नहीं है ५४ जैसे समुद्र के रत्न सुमेरुपर्वत के सुवर्णरूप पत्थर इन सबकी संख्या करनेको कोई समर्थ नहीं है ऐसेही

गङ्गाजी के गुणोंको भी कोई कहनेको समर्थ नहीं है ५५ भीष्मजी बोले इस प्रकारसे परमबुद्धिवाला शिलोञ्छवृत्ती श्रीगङ्गासम्बन्धी अनेक धर्मों को पूछकर और बहुत से प्रकारों से उन गुणों का विधान करता हुआ प्रकाशमान हुआ और वह सिद्ध महात्मा भी आकाश में प्रवेश करगये ५६ इसके पीछे सिद्ध के वचनों से अनेक प्रकार से बोधित हुआ वह शिलोञ्छवृत्ती ब्राह्मण विधिपूर्वक गङ्गाजीकी उपासना करता हुआ दुर्लभ सिद्धि को प्राप्त होता भया ५७ हे राजन् ! इस हेतुसे तूभी श्रीगङ्गाजीका सेवनकर इससे बड़ी सिद्धिको प्राप्त होगा ५८ यह गङ्गामाहात्म्य का इतिहास बड़े पुण्य फल का देनेवाला है इसको जो कोई पढ़ेगा वा सुनेगा वह परमगति को पावेगा ॥ ५९ ॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायांगङ्गामाहात्म्यं नामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

छठवां अध्याय ॥

जनमेजय बोले कि; हे तपोधन ! वैशंपायनजी धर्मपूर्वक राज्य करनेवाले बड़े बुद्धिमान् मेरे पितामह युधिष्ठिरके यज्ञ में जो कुछ आश्चर्यकी बात हुई हो उसको भी मुझसे वर्णन कीजिये १ वैशंपायन बोले हे राजन् ! उस महायज्ञमें जो बड़ा आश्चर्य हुआ वह मुझसे सुन जब कि यज्ञ के अन्त में सब मुख्य २ ब्राह्मण तृप्त होचुके दीन, अन्धे, लूले आदि भी तुष्ट होचुके सब

दिशाओं में महादान बटनेलगे और सब मनुष्यों समेत धर्मराज युधिष्ठिर पर पुष्पोंकी वृष्टि भी होनेलगी थी कि उसी समय एक नौला जिसका कि आधा देह सुवर्ण का था अपने बिलेसे निकलकर उस यज्ञ में आया और उस यज्ञ को देखकर मनुष्य की वाणी वनाकर बड़े उच्च शब्द से यह बचन बोला २।४ कि इन पुष्पों की वर्षा से और महाधनोंसे भी क्या हुआ यह यज्ञ उस कुरुक्षेत्रवासी शिलोञ्छवृत्तीवाले के प्रस्थमात्र सत्तूके यज्ञ के समान नहीं हुआ है उसके ऐसे इस वचन को सुन कर वह सब द्विजोत्तम बड़े आश्चर्ययुक्त हुये ५।६ और खड़े होकर आश्चर्यपूर्वक उससे पूछनेलगे ७ कि ऐसे अत्यन्त अद्भुत आकारवाले तुम कौन हो कहां से आये हो और किसहेतु से इस राजा के बड़े यज्ञकी निन्दा करते हो ८ नकुल बोला हे ब्राह्मणलोगो! यह बात मैंने क्रोध, ईर्षा, द्वेष और मत्सरता आदि से मिथ्या नहीं कहीहै हे द्विजवर्यलोगो! इस प्राचीन इतिहास को श्रवण करो ९ कि पूर्वसमय में एक उञ्छवृत्ती ब्राह्मण कुरुक्षेत्रमें बसता था और अपने पुत्र पुत्रवधू और स्त्री समेत सब कुटुम्बको उस उञ्छवृत्ती के तुच्छ धान्यों से पालना किया करता था १० इस प्रकारसे रहतेहुये उस ब्राह्मण के कुछ समय पीछे बड़ाभारी दुर्भिक्षकाल होता हुआ कि जिसमें सब प्राणी क्षुधा से महापीड़ित हुये ११ उस समय वह परन्तप ब्राह्मण भी काल के मारे महापीड़ित हुआ १२ और बहुत समय के पीछे उसको एकप्रस्थभर यव प्राप्त हुये उनका

विधि से सत्तू बनाकर बहुतकाल के क्षुधित हुये वह चारों प्राणी चार विभाग करके बाँटतेभये १३ उस समय वह चारों उतनेही भोजनसे संतोष कियेहुये भोजन को बैठे उनके उसी समयपर एक क्षुधित अभ्यागत आया १४ उस समय परभी उस क्षुधातुर ब्राह्मण ने उस अतिथिका विधिपूर्वक पूजन किया और प्रसन्नमन होकर बड़े आदरभाव से बोला १५ मैं आज बड़ा धन्य होकर अनुगृहीत हूं क्योंकि आप मेरे स्मरण करतेही समय पर ऐसे प्राप्त हुयेहो जैसे कि घाम से तृषित होनेवालेको जल की प्राप्ति होती है १६ हे विप्रवर्य ! आपका सुखपूर्वक आगमन हुआहै अब आप इस मेरी कुटीको पवित्र कीजिये अर्थात् निवास करिये १७ गृहस्थजनों के वह घर धन्य हैं जिनमें मार्ग से आये हुये आप सरीखे श्रमित पुरुष विश्वासपूर्वक भ्रमते हैं १८ और वह गृहस्थीभी धन्यहैं जिनके कि अतिथि पूजनों में खाली दिन नहीं जाते १९ तृण, जल, भूमि, प्रियसत्यवाणी और सुन्दर स्थिति यह सब वस्तु श्रेष्ठ-पुरुषों के घरमें कभी नष्ट नहीं होती हैं २० आर्तपुरुष को शयन और बैठक देना उचित है और स्नान किये हुये को आसन तृषित को जल और भूखेको भोजन देना चाहिये २१ अतिथि को सुन्दर दृष्टि से देखना मनसमेत सुन्दरवाणी से बोलकर पूजन करना और चलनेके समय उसके पीछे गमन करना इत्यादि बातें योग्य हैं २२ नकुल कहता है कि; इसके अनन्तर वह धर्मात्मा ऐसे वचन कहकर प्रसन्नता से उसका पूजन

कर अपने भाग को उसके भोजनके निमित्त देताभया परन्तु उतने भागसे वह अभ्यागत तृप्त नहीं हुआ २३ तब क्षुधा से कृशित हर्ष से रहित त्वचा अस्थिही शेष रहे जिसके ऐसी वृद्धा तपस्विनी बहुत कांपती हुई उसकी भार्या अपने पतिसे यह वचन बोली २४ कि हे धर्मज्ञ ! इन सत्तुओं के विद्यमान होने पर भी तुम क्यों शोच करतेहो इस अभ्यागत की तृप्ति के लिये इस मेरे भागको भी देदो २५ ब्राह्मण बोला हे शोभने ! मृग, कीट, पतङ्ग भी अपनी २ स्त्रियों की रक्षा करते हैं और पालना करते हैं इस हेतुसे तू ऐसे कर्म करनेको योग्य नहींहै २६ इसके विशेष धर्म, अर्थ, काम, शुश्रूषा, कुलकी सन्तति और पितरों समेत अपना स्वर्ग यह सब स्त्रियोंकेही आधीन है २७ जो स्त्रीकी दया नहीं करते और इस संसारमें उनका पोषण नहीं करते वह बड़े परिश्रमों को प्राप्त होकर नरक में पड़ते हैं २८ ब्राह्मणी बोली हे द्विजवर्य ! विधाता ने स्त्री पुरुष दोनों एक धर्ममें रहनेवाले रचे हैं इस हेतुसे आप इस महान् धर्म से मुझको अलग रखनेको योग्य नहींहो २९ स्त्री का पतिही परम धर्म है पतिही देवता पतिही परमबन्धु और पतिही परम गति है ३० पतिके प्रसन्न होनेसे स्त्री धर्म अर्थ काम यश और स्वर्ग को निस्सन्देह सदैव प्राप्त होती है ३१ जो स्त्री कर्म, मन, वाणी आदिसे पतिके अनुकूल रहती है वह महाभागा इसी स्थान में बैठीहुई देवताओंसेभी पूज्य है ३२ और मैंने तुम्हारे भोजन करनेसे पहले कभी भोजन नहीं किया है यह

मेरा व्रत जानकर इन सत्तुओंकोभी देदो ३३ नकुल ने कहा कि ऐसे स्त्री के वचन सुनकर वह ब्राह्मण उसके सत्तुओं कोभी उठाकर उस अभ्यागतको देताभया परन्तु वह अभ्यागत उसकेभी सत्तू खाकर तृप्त नहीं हुआ३४ इसके पीछे बिनीत आत्मवान् धर्मज्ञ और बुद्धिमान् उसका पुत्र पिता से बोला हे तात ! अभ्यागत की तृप्ति के निमित्त मेरा भागभी देदेना योग्य है ३५ जिसके आश्रम में आया हुआ अभ्यागत शून्य घरके समान निराश होकर चलाजाता है उसका जीवना धिक्कार है ३६ जो कुटुम्बको पीड़ा देकर लोभ मत्सरता से रहित अभ्यागत को अन्नदान देता है वह परमगति को प्राप्त होताहै ३७ पिता बोला हे बालक ! मेरी बुद्धि से तू सौ वर्ष की आयुर्दावाला है हे पुत्र ! बालकों के क्षुधा अति बलवाली होती है इस हेतु से तू भोजन कर ३८ पुत्रसे लोकों को जीत लेताहै यह सनातन श्रुति है हे वत्स ! तेरे जीवनेसे सबलोक मेरे धारण किये हुये हैं ३९ इस कारण लोकों की इच्छा करते हुये मुझको तेरी रक्षा करनी उचितहै ऐसा जानकर विद्वान् लोगों को अपनी सन्तति की रक्षा करनी चाहिये ४० हे पुत्र ! मैंने बड़ी २ तपस्या करके विधिपूर्वक हवन किया और तुझ सरीखा पुत्र मेरे सन्तान भी है इस हेतु से मैं मृत्यु से नहीं डरता हूं ४१ विशेष करके पापयुक्त होने से जिस मनुष्य को मृत्युका भय होताहै वही सब कर्मों को त्यागकर अभ्यागतको मृत्युके समान देखताहै ४२ पुत्र बोला पिताही गुरु पिताही देवता और पिताही सनातन धर्म है पुत्रों

का पिता जब प्रसन्न होता है तब सब देवताभी प्रसन्न होते हैं ४३ शरीर सम्पत्ति स्त्री विद्या और अचल लोक भी पिताही के प्रसन्न होनेसे मिलजाते हैं उससे विशेष कौन पूज्यतम है ४४ प्रथम अवस्था में पिता पुत्रको पालता है यह श्रुति है परन्तु पिछली अवस्था में पिता को पुत्रही पालता है इसहेतु से मेरे भी सत्तुओंको आप दीजिये ४५ नौला बोला कि पुत्र के ऐसे वचन सुनकर उसने उसके भी सत्तू उठाकर उस अतिथि को दिये उसके भागको भी खाकर वह अतिथि तृप्त नहीं हुआ तब पुत्र की बधू प्रसन्न होकर विनयपूर्वक अपने श्वशुर से बोली हे महाराज! इस मेरे भी सत्तू को इस ब्राह्मण की तृप्ति के अर्थ देदो ४६। ४७ श्वशुर बोला बाला स्त्री पुत्रबधू बड़ी श्रेष्ठ और नियम व्रतोंसे कृशित ऐसी तुझ अबलाको कुलकी सन्तति के हेतु मुझको अवश्य रक्षा करनी चाहिये ४८ गुरु पतिकी शुश्रूषासे श्रान्त क्षुधासे कृशाङ्ग तपमें स्थित दीन बदनवाली ऐसी तुझ बधूको देखकर मेरा मन अत्यन्त पीड़ित होताहै ४९ हे शुभे! जिस तप धर्मादिक कामोंमें भृत्योंका भाग लगाया जाता है उस अन्यजनों से सेवित हुये क्रूरकर्म को और तप धर्म को सन्तजन नहीं सराहते हैं ५० हे शुचिस्मिते! इस हेतुसे मैं तेरे भाग को देना नहीं चाहताहूं ५१ पुत्र-बधू बोली हे महाराज! यह विधि वहांके लिये कही गई है जहां कि भृत्यादिकोंमें विरोध होय और जहां प्रसन्नता-पूर्वक अनुग्रह मानते होयँ वहां कुछ दोष नहीं है ५२ आप मेरे स्वामी के भी स्वामी देवोंके भी देव और

गुरु से भी बड़े गुरु होकर अत्यन्त बड़ेहो इस हेतुसे आपको ऐसा कहना न चाहिये ५३ हे भगवन्! आप दया विचार और भक्ति का चिन्तवन करके मुझ दीन पर अनुग्रह करके इन सत्तुओं को दीजिये ५४ नौला बोला इसके अनन्तर उस पुत्रबधूके भी सत्तुओंको वह अतिथि के अर्थ देताभया उन सब सत्तुओंको खाकर वह अतिथि तृप्त होगया ५५ ऐसा करके भी वह महातपस्वी अपने कुटुम्ब समेत अनुग्रह मानता हुआ धर्म में नियुक्तआत्मावाला होकर अचल पर्वत के समान चलायमान नहीं हुआ ५६ इसके पीछे उसको ऐसा शुद्ध भाववाला जानकर वह अतिथि कहने लगा ५७ कि हे द्विजवर्य! मैं धर्महूं ब्राह्मण के रूपसे तेरी परीक्षा करनेके निमित्त यहां आयाथा शम, दम, दया, दान, शूरवीरता, इन्द्रियों का निग्रह, सत्य, क्षमा, कोमलता और ज्ञान येही मेरे शरीर के अङ्ग हैं सो जो मनुष्य मेरे इन शरीर समेत अङ्गोंको भजता है ५८।५९ उसको मैं प्रसन्न होकर वाञ्छित फल देताहूं तैंने जो उञ्छवृत्ती से प्राप्तहुये संचित अन्न को बड़े शुद्धभावसे मुझे देदिया और कष्ट नहीं किया इस हेतुसे तुम सब कुटुम्बसमेत स्वर्गमें वास करो ६० और स्वर्गवासी देवता और दिव्य ब्रह्मर्षिलोग यह सब आश्चर्य चित्तवाले होकर तेरे दान की प्रशंसा करते हैं कि श्रद्धापूर्वक एक प्रस्थमात्र सत्तू दानरूप मेघ से उत्पन्न हुये यशरूप जलों के समूह से इस ब्राह्मण ने तीनों लोकों को व्याप्त करदिया है ६१ हे श्रेष्ठ! तुम्हारा जन्म सफलहै और ब्राह्मणपना भी सफल

है ऐसे कहतेही उसके मस्तक पर आकाश से पुष्पोंकी वर्षा होनेलगी ६२। ६३ यह क्षुधा बुद्धि बल और धैर्य की नाश करनेवाली है जो मनुष्य इस दुर्जय क्षुधा को जीत लेताहै वह स्वर्गको भी जीत लेताहै ६४ हे द्विज! तैंने अपने दुस्त्यज आत्मारूप स्त्री पुत्र और पुत्रवधू कोभी धर्मके निमित्त तृणके समान त्याग करदिया ६५ मैं बड़े २ फल के देनेवाले दानों से ऐसा नहीं प्रसन्न होता जैसा कि श्रद्धासमेत न्यायसे संचय किये थोड़ेही अन्नदान से प्रसन्न होजाताहूं ६६ अश्रद्धा परमपाप है और श्रद्धा पाप की नाश करनेवाली है श्रद्धावान् पुरुष पापको इस प्रकार दूर करता है जैसे कि अपनी कांचली को सर्प दूर करदेताहै ६७ अश्रद्धा से दियेहुये बहुत से द्रव्य को भी पण्डित लोग नष्ट कहते हैं और श्रद्धा-पूर्वक दिया हुआ जल भी अनन्त गुण देता है ६८ धर्मात्मा रन्तिदेव पहले कुछ भी नहीं था वह श्रद्धापूर्वक दानहीसे पवित्र होकर स्वर्ग में प्राप्त होगया ६९ और औशीनर शिबिराजाभी अपने मांस के दान देनेसे सब दुःखोंसे रहित होकर देवता के समान स्वर्ग में आनन्द करताहै ७० राजा नृग ब्राह्मणोंको हज़ारों गोदान देता था और एक गौ को देकर फिर हरलीनी इस अपराध से बहुत कालतक गिरगटयोनि में पड़ा रहा ७१ बहुत से राजसूय और अश्वमेधयज्ञों का फल भी प्रस्थमात्र सत्तू के दान के समान नहीं है ७२ नौला बोला कि; प्र-सन्न होनेवाले साक्षात् धर्म की इन बातों को ग्रहण करके वह ब्राह्मण अपने कुटुम्बसमेत दिव्य विमानपर चढ़-

कर स्वर्ग को जाता भया ७३ इसके अनन्तर जब धर्म भी चले गये तब मैं अपने बिल से निकलकर बड़ी शीघ्रता से उस दिव्यपुष्पों से आकीर्ण सत्तुओं के जल में लोटा ७४ उसी समय धर्म के प्रसाद से और उस मुनिके तेजसे अथवा दिव्यपुष्पों के स्पर्श से मेरी एक ओर की यह पसली सुवर्ण की होगई ७५ अब दूसरी पसली भी किसी यज्ञ के जलसे सुवर्णकी करना चाहता हूं इसी विचारसे अनेक तपोवन तीर्थ और यज्ञोंमें भी गया ७६ अब धर्मराज के इस यज्ञ की प्रशंसा सुनकर बड़ी आशापूर्वक यहां आकर प्राप्त हुआ परन्तु दूसरी पसली यहां भी सुवर्ण की नहीं हुई ७७ इसी हेतुसे मैंने आपलोगोंके प्रत्यक्षमें यह बात कही कि यह तुम्हारा यज्ञ प्रस्थमात्र सत्तू के दानके समान नहीं हुआ है ७८ वैशंपायन बोले कि; वह नौला ब्राह्मणों के सन्मुख ऐसी २ वार्त्तालाप करके जहां से आया था वहांहीं चला गया और वह सब ब्राह्मणलोग भी अपने २ घर को चले गये ७९ उस समय उस अश्वमेध यज्ञ में सबलोग आश्चर्ययुक्त हुये यही बात तैंने मुझसे पूछी थी सो सब तेरे आगे वर्णन की ८० हे राजन्! इसी हेतुसे तुझको भी यज्ञोंमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये मुनिलोग यज्ञों के विना कियेहुयेही स्वर्गको गये ८१ सब जीवमात्र में द्रोहरहित संतोष सत्य इन्द्रियोंका निग्रह कोमलता क्षमा और तप यह सब स्वर्ग के साधन हैं ८२ हे राजन्! अपने परिश्रम से न्यायपूर्वक संचित कियेहुये थोड़ेसे भी द्रव्य का बड़ा फल होता है जैसे कि वह द्विज थोड़े

से न्यायपूर्वक श्रद्धा से दियेहुये सत्तुओं के प्रभाव से अपने कुटुम्ब समेत निरपेक्ष होकर भी स्वर्ग में जाता हुआ ॥ ८३ ॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायांसक्तुप्रस्थीयोपाख्यानं नामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सातवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे तात ! धर्मके आश्रय होके किस गृहस्थी पुरुष ने मृत्यु को जीता है यह आप मुझे सम्झाकर वर्णन कीजिये १ भीष्मजी बोले इस स्थान पर एक इतिहास को कहताहूं जिसमें एक गृहस्थी पुरुष ने धर्म के आश्रय होके मृत्यु को जीता है २ इक्ष्वाकु वंश में श्रीमान् दुर्योधननाम राजा होता हुआ वह बड़ा उत्तम होकर सर्वगुणसम्पन्न था ३ उस देवरूप राजा से देवनदी नर्मदाजीका विवाह हुआ उससे मोघवती नाम कन्या जन्मती भई ४ उस साक्षात् अद्भुत दर्शनवाली कन्या को अग्नि वरता हुआ अर्थात् उस राजाने अपनी कन्या को अग्नि के अर्थ वसोर्द्धारा के समान अर्पण किया ५ उसमें सुदर्शननाम अग्नि का पुत्र होता हुआ वह वदान्य महादानी सत्यवक्ता और दान्त होकर शरीर को धारण कियेहुये धर्महीके समान हुआ ६ उस सुदर्शन राजा को राजा नृग के पितामह ओघवान् भूपति ने ओघवती नाम अपनी कन्या विवाह दी ७ वह महातपस्वी बलवान् धर्मात्मा राजा कुरुक्षेत्र में बसता हुआ उसने ऐसी प्रतिज्ञाकरी कि

घरमेंही स्थित होकर मैं मृत्युको जीतूंगा ८ एक समय वह धर्मज्ञ राजा अपनी धर्मशीला ओघवती रानी से कहने लगा कि; तू कभी भी किसी अतिथि अभ्यागत का निरादर न करियो ९ क्योंकि जिसके घरसे निराश होकर अभ्यागत चलाजाता है वह उसको अपना पाप देकर और उसका सब पुण्य लेकर चला जाता है १० सत्य, तप, शौच, वाञ्छित दियाहुआ दान और शास्त्र, वेद, पुराणादिकोंका सुनना यह सब उस मनुष्य के नष्ट होजाते हैं जिसके घरमें से विना पूजित हुआ अभ्यागत चलाजाता है ११ जिसके घरसे सब कामनाओं से तृप्त होकर अतिथि आते हैं उसीको गृहस्थ जानना और इसके विपरीत अन्य सब लोगों को केवल घर का रक्षकही जानना चाहिये १२ जिनलोगों ने पहले कुछ पुण्य दान नहीं किये हैं उन मनुष्यों को इसलोक में श्रद्धा, दान, शक्ति और अभ्यागत की प्राप्ति ये तीनों नहीं प्राप्त होते हैं १३ जिस गृहस्थी के घर में आये हुये अभ्यागत प्रसन्न होते हैं उस पर सब देवता भी प्रसन्न होते हैं और अतिथि के विमुख होजाने से निस्सन्देह वह सब देवतादिक भी विमुख होजाते हैं १४ इस हेतुसे हे प्रिये ! तुमको नित्यही अतिथि प्रसन्न करने चाहिये उनके प्रसन्न करने में अपनी आत्मा का भी दान कर देना इसमें किसी बातका विचार करना १५ हे कल्याणिनि ! चाहे मैं घर से बाहर रहूं अथवा घरही में रहूं परन्तु तू अतिथि अभ्यागत का निरादर कभी मत करियो इस मेरी बात को

प्रमाणपूर्वक सत्य २ ही समझना १६ हे प्रिये ! पण्डित लोगोंने स्त्रियों का यही धर्म कहाहै कि मन वाणी और कर्म से भर्ता का हित नित्य करनाचाहिये १७ जो स्त्रियां मन वाणी और कर्म से सदैव पति के अनुकूल रहती हैं वह इस पृथ्वी पर अनन्तकीर्ति को पाती हैं १८ पति के वचनों को सुनकर वह ओघवती स्त्री अपने पति से बड़ी विनयपूर्वक यह वचन बोली हे महाव्रत! मुझको तुम्हारे किसी वचन में भी निषेध नहीं है १६ भर्ता के वचन का पालन करना स्त्रियों का परमधर्म है अहो मैं अत्यन्त धन्य होकर भाग्यवाली हूं कि मुझको आप सरीखे महाधर्म व्रतवाले तपोधन ऐसे सुधर्मों का उपदेश करते हो आप भरण धारण करने-वाले भर्ता हो और पालन करने से मेरे पति कहाते हो २० । २१ प्रीति के देने से सुखदायी और बुद्धि के देने से धर्मद कहातेहो हे प्रियतम ! काम, अर्थ, सम्पत्ति, पुत्र और इस संसार में कीर्ति का होना यह सब बातें आपके ही प्रसाद से प्राप्त होतीहैं इस हेतुसे पति के सिवाय स्त्री को कौनसा दूसरा देवता है २२।२३ भीष्म जी बोले कि; थोड़ेही समय के पीछे अतिथि अभ्या-गत के सत्कार करनेके द्वारा मृत्यु के जीतने की इच्छा करतेहुये सुदर्शन बाहर चलेगये इसी अन्तर में उसकी परीक्षा लेनेको छिद्र देखता हुआ मृत्यु आया २४ उस समय वह तो इन्धनलेनेको जङ्गल में गया था और स्त्री अकेली थी ऐसे समय मृत्यु ने अतिथि अभ्यागत ब्राह्मण का रूप धरकर उस महाभागा पतिव्रता धर्म की

आचरण करनेवाली महाभागिनी एकान्त में बैठी हुई ओघवती स्त्री से यह वचन कहा २५। २६ हे कल्याणिनि! मैं अभ्यागत और अतिथि हूं मैं इस निमित्त तेरे पास आया हूं जो तुम गृहस्थ आश्रम के धर्म पर चलती हो और श्रेष्ठ मानती हो तो आज मुझको भजो अर्थात् मेरे संग क्रीड़ा करो २७ हे शुभे! जो मनुष्य अभ्यागत का सत्कारपूर्वक मनकी इच्छा पूर्ण करताहुआ पूजन करताहै और चित्त से उसको मानता है पण्डित लोग उसके फल को सौ यज्ञों केभी फलसे अधिक वर्णन करते हैं २८ भीष्मजी बोले कि इस बातके सुनतेही उस पतिव्रता स्त्री ने प्रथम तो उस अतिथि को अन्य २ वरों से लुभाया परन्तु जब वह आत्मा के दिये विना अन्य किसी बात की इच्छा नहीं करताहुआ सम्भोगके सिवाय दूसरे पदार्थ को न मांगताभया २९ तब तो उसकी इच्छा धर्म लेनेहीकी पक्की जानकर और भर्ता के उस वचन को स्मरण करके वह महाभागा महालज्जित होकर उसके सङ्ग एकान्तमें क्रीड़ा करतीहुई ३० इसके पीछे अग्नि का पुत्र सुदर्शन भी जङ्गलसे इन्धन लेकर वहां आया और अपने आश्रम के द्वार परसे अपनी स्त्री को बुलाया ३१ तब वह साध्वी महालज्जित उस ब्राह्मण से स्पर्श की हुई अपने को उच्छिष्ट और भ्रष्ट जानकर अपने भर्ता के वचन का आदर नहीं करती हुई ३२ इसके पीछे उस प्रिय अभ्यागत को अपनी कुटिया में स्त्री के संग जानकर वह सुदर्शन यह वचन बोला कि, आप इस स्त्री को यथेष्ट भोगिये

आप के चित्त में जो इच्छा होय उसको जैसा उचित होय वैसा करो ३३ इस वचन के सुनते ही मृत्यु देवता मुद्गर हाथ में लेकर महाक्रोधित हुआ और कहा कि हे हीनप्रतिज्ञावाले! अब मैं तुझ को मारूंगा ३४ ऐसे उस के वचन को सुनकर सुदर्शन कर्म, मन, वाणी से क्रोध, ईर्षा से रहित बड़ी प्रसन्नतापूर्वक यह वचन बोला ३५ कि हे विप्रर्षे! आप स्त्रीसे संग करो मेरी परमप्रीति है गृहस्थी का यही परमधर्म है कि सब प्रकार से अतिथि का पूजन करे ३६ जो गृहस्थी परमश्रद्धा से अतिथि का पूजन करता है वह मरा हुआ स्वर्ग में जाकर देवताओं से पूजित होता है ३७ मेरी स्त्री तो प्राणही है इस के विशेष जो कुछ मेरा है वह सब मैं आनिके अर्थ दे सक्काहूं यह मेरा व्रतहै ३८ जो मैंने सत्य २ कहा है तो मेरी देवता रक्षा करें और जो मिथ्या कहा होय तो मुझे दग्ध करें ३९ और सब जीवोंका आत्मा सर्वेश्वर विष्णुहै और सब जीवोंके हृदय में वर्तमान है वही मेरे सत्य और मिथ्या को जानता है ४० भीष्मजी बोले कि; उसी समय साधु साधु ऐसी आकाश से देववाणी हुई और उस महात्मा के शिरपर पुष्पों की वर्षाभी हुई ४१ इसके अनन्तर वह ब्राह्मण कुटियासे बाहर निकल पवित्र होकर सुदर्शनसे बोला कि मैं धर्महूं विप्र के रूपसे तेरी परीक्षा के लिये यहां आया हूं ४२ हे सुदर्शन! देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सर्प ये सब भी तेरे जीतनेको समर्थ नहीं हैं क्योंकि तैंने कामदेव को भी जीत लिया है ४३ जिसने आत्मा के

संगही उत्पन्न होनेवाले दुर्जय कामदेव को जीत लिया है वह सब को जीतकर अत्यन्त सुख को प्राप्त होता है ४४ तैंने दुर्जयकाम और लोकों का भय करनेवाला मृत्यु भी जीतलिया है इस निमित्त इस तुम्हारी साध्वी पतिव्रता स्त्री को कौन दुष्टजन देखने को समर्थ होसक्ता है यह तुम्हारी स्त्री अपने आधे शरीर से तो लोकों के पवित्र करने के लिये ओघवती नाम नदी होगी और आधे शरीर से तेरे समीप प्राप्त रहेगी ४५ । ४६ भीष्मजी बोले कि, धर्म भगवान् तो ऐसा कहकर वहीं अन्तर्धान होगये और धर्मात्मा सुदर्शनने मृत्युको जीता हुआ माना ४७ इस के अनन्तर हज़ार उड़नेवाले घोड़ों से युक्त उत्तम विमानपर अपनी ओघवती स्त्री समेत चढ़कर स्वर्ग में प्राप्त हुआ ४८ हे राजेन्द्र! उस सुदर्शन ने गृहस्थाश्रममेंही एक अतिथि के पूजन करने से मृत्यु को जीतकर सब लोकों को जीता ४९ गृहस्थी का अतिथिही धर्म और गुरुहै अतिथिही देवता और अतिथिही गति है ५० इस निमित्त आत्मा के हित चाहनेवाले गृहस्थी को सब यत्न से श्रद्धापूर्वक देवता के समान नित्यही अभ्यागत का पूजन करना चाहिये ५१ क्षुधा तृषा आदि और श्रम इनसे दुःखित होकर जो ब्राह्मण किसी योग्य को अयोग्य कहे वहभी विशेष करके क्षमा करना चाहिये ५२ मांगनेवाले ब्राह्मणका गोत्र आचरण स्वाध्याय और श्रुत इनमें से किसी बात को भी न पूछे जो ब्राह्मण अन्न मांगे उसको विनाही विचार किये हुये देदेना योग्य है ५३ ब्राह्मण चाहे अधिक वा

न्यून कितनाही भोजन करे उसको चाहे विसर्जन करदे परन्तु उससे कभी खोटा वचन न कहे ५४ जो इस सुदर्शन के चरित्रको सुनेगा पढ़ेगा अथवा सुनावेगा वह उत्तमगति को पावेगा ५५ यह अग्नि का पुत्र सुदर्शन अतिथि अभ्यागत का पूजन करताहुआ सुख संपत्ति से युक्त पुण्यात्माओं में श्रेष्ठ उत्तम दर्शनीय होकर अपने स्त्रीसमेत घर को अभ्यागतों के अर्थ निवेदन करताभया ॥ ५६ ॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायांसुदर्शनोपाख्यानंनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

आठवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर ने पूछा कि; हे पितामह ! कैसे २ कर्मों से मनुष्य नरक में पड़ता है और कौन २ से कर्म करने से पुरुष को स्वर्ग की प्राप्ति होती है यह आप कृपा करके मुझे समझाइये १ भीष्मजी बोले, जो ब्राह्मण लोभसे मोहित होके अपने ब्राह्मणपने को त्याग देते हैं और कुत्सितकर्मों की आजीविका करते हैं वह नरक में जाते हैं २ इनके सिवाय नास्तिक भिन्न मर्यादावाले कुत्सित विषयी दम्भी कृतघ्नी ३ निन्दा करनेवाले क्रूर अभिमानी मिथ्यावादी कठोरवचन और अनर्थकवचन बोलनेवाले ऐसे सब पुरुष नरक में निवास करते हैं ४ अथवा जो पराये द्रव्यों के हरनेवाले पराये द्रव्यों का भेद बताने वाले और पराई लक्ष्मी को देखकर दुःख मानतेहैं ऐसे

पुरुष भी नरक में जाते हैं ५ हे परन्तप! कूप, तड़ाग, प्रपा, पौशाला, सड़क इन सबके नाश करनेवाले पुरुष भी नरक में जाते हैं ६ और जो मनुष्य ब्राह्मण के अर्थ धन को संकल्प करके नहीं देते हैं ७ अथवा जो स्त्री बालक और अभ्यागत इनके विना भोजन करते हैं और पितर देवतादिकों का पूजन त्याग कर देते हैं ८ और हे राजन्! जो लोग व्रतों के दूषक होके सती स्त्री और वेदों की निन्दा करते हैं ९ और सबलोकों के महेश्वर आदि सनातन शिव और विष्णुजी का स्मरण-पूर्वक चिन्तन नहीं करते हैं १० अथवा गौ, ब्राह्मण, कन्या, सुहृद् इनके धनको अपने काम में लाते हैं ११ जो काष्ठ कील अथवा कांटों आदिसे मार्ग को रोक देते हैं १२ सब जीवमात्रों में अविश्वासी निर्दयी और सब से कुटिलता करनेवाले ऐसे मनुष्य भी नरक में जाते हैं १३। १४ क्षेत्र की वृत्ति को गृह को प्रीति को और किसीकी आशा को जो छेदन करते हैं १५ जो अपनी अबला निराश्रय स्त्री के पास ऋतुसमयपर नहीं जाते किन्तु उससे शत्रुताभी करलेते हैं ऐसे पुरुष भी नरक-गामी हैं १६ कन्याके बेचनेवाले रसके बेचनेवाले विषके बेचनेवाले १७ और जो क्षुधा तृषा और श्रमसे पीड़ित होके आश्रय में आये हुये अभ्यागतों का अपमान करतेहैं १८ मद्य मांस के खाने गाने बजाने में और द्युत वा परस्त्रीसंग में प्रीति रखते हैं १९ अथवा स्नेहमें बँधे हुये अन्धे होकर रजस्वला स्त्री का संग करनेवाले और जो पर्वके दिनों में भी भोग करतेहैं २० और जो पुरुष

अपने शरीरके मैलको अग्निमें वा जलमें डालते हैं अ-
थवा बगीचे मार्ग और गौओंके मार्गमें जो विष्ठा करते
हैं यह सब नरक में जाते हैं २१ जो मनुष्य स्त्रियों के
धनसे आजीविका करते हैं और स्त्रियोंसे जीते हुये हैं
और स्त्रियोंकी रक्षा नहीं करतेहैं यह सबभी नरकमें नि-
वास करतेहैं २२ हे राजेन्द्र! जो मनुष्य शस्त्र बाण और
धनुष इनको बनाते हैं और बेचतेहैं २३ अथवा जो
शूद्रलोग अनाथ दीन कृपण रोगसे पीड़ित और बँधे-
हुये पुरुषोंपर दया नहीं करते हैं २४ और जो अजिते-
न्द्रिय पुरुष नियमों को धारण करके फिर उनका लोप
करदेतेहैं यह सबलोग नरकमें दुःखों को भोगतेहैं २५
अब जो २ लोग कि स्वर्गगामी और सुखों के भोगने
वाले हैं उन सबकोभी तू मुझसे श्रवण कर २६ जो
मनुष्य सत्य, तप, क्षमा, दान और ध्यानपूर्वक धर्म के
अनुसार कर्मों को करते हैं २७ अथवा होम, जप, स्नान
और देवपूजन में तत्पर होकर श्रद्धा को धारण करते
हैं वह सब महात्मा स्वर्गगामी हैं २८ जो पवित्रदेश में
महापवित्र होकर वासुदेव में परायण विष्णु के गुणोंको
गाते और पढ़ते हैं २९ और सदैव माता पिताकी आदर
पूर्वक सेवा टहलकरते दिनमें कभी नहीं सोते हैं वह सब
स्वर्गगामी हैं ३० जो पुरुष सबहिंसाओं से रहित सबके
सहायक और सबको आश्रय देनेवाले हैं वह सब स्वर्ग
में जाते हैं ३१ और जो शुश्रूषा और तप आदि से
शास्त्रको श्रवणकर दान प्रतिग्रहको त्यागदेते हैं ३२
अथवा जो पुरुष जीवों को भय, पाप, शोक, दरिद्र

और व्याधिके दुःखों से छुटा देते हैं वह स्वर्ग में वास करते हैं ३३ जो हज़ारोंको ऐबों से बचाते और उनके दोषोंको छिपातेहुये हज़ारों को दानदेकर हज़ारोंकीही रक्षा करतेहैं ३४ और हे भारत! जो पुरुष धनाढ्यरूप यौवनसम्पन्न जितेन्द्रिय और धैर्य से युक्त होते हैं वह सब स्वर्ग में सुखोंको भोगते हैं ३५ और सुवर्ण, भूमि, अन्न और वस्त्रादिक पदार्थोंके देनेवालेभी स्वर्ग में आनन्द भोगतेहैं ३६ जो पुरुष याचना करने से प्रसन्न होते हुये देकरभी प्रिय बोलतेहैं और दानके फल की इच्छा को त्यागदेते हैं वह स्वर्ग में जातेहैं ३७ हे परन्तप! जो पुरुष अपने बोयेहुये धान्यों को और रसों को आपही उखाड़ अपने हाथसे दान करते हैं ३८ और जो अपने शत्रुओं के भी दोषों को कभी नहीं कहते हैं किन्तु उन के गुणों का कीर्तन करतेहैं वह स्वर्गमें प्राप्त होतेहैं ३९ जो महज्जन पराई लक्ष्मी को देखकर ईर्षासे रहित होके खेद नहीं करते और प्रसन्नता से उसकी सराहना करते हैं वह स्वर्ग में जाते हैं ४० और जो महात्मा पुरुष प्रवृत्ति निवृत्ति दोनोंमें वेदशास्त्रकी रीतों से बर्ताव करते हैं ४१ अथवा जो पुरुष क्षुधा तृषा और श्रम से भी दुःखित होकर अन्नादिक का विभाग करताहै और हन्तकारादि भोजन का दान देतेहैं वह स्वर्ग में जातेहैं ४२ जो मनुष्य अभ्यास कियेविना अपनी मूर्खतासे प्रिय वचन नहीं कहसक्तेहैं उनको जो प्रिय वचनादिक कहने का ज्ञान कराते हैं वह स्वर्ग को जाते हैं ४३ जो लोग कूप, वापिका, तड़ाग, प्रपा, पौशाला, देवमन्दिर इनको

शुभ आरम्भ करके बनवाते हैं ४४ और जो असत्य वक्ताओं में भी सत्य बोलते हुये खोटे पुरुषों में सरलता बर्तते हैं और शत्रुओं में भी हित की इच्छा करते हैं वह स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ४५ किसी कुल में जन्मे हुये बहुत पुत्रोंसे युक्त बड़ी आयुर्दाय के क्रोध को जीत कर श्रेष्ठाचरणवाले होते हैं वह भी स्वर्ग में निवास करते हैं ४६ जो पुरुष सदैव एक धर्म से किसी दिनको खाली नहीं जाने देते हैं वह भी नित्यव्रतवाले होकर स्वर्गमें प्राप्त होतेहैं ४७ जो पुरुष दूसरे से प्राप्तहुये मार्ग में पड़ेहुये तृण को भी अपमान से नहीं हँसतेहैं वह स्वर्गमें प्राप्त होतेहैं ४८ जो गाली देनेवाले और स्तुति करनेवाले इन दोनों को समान जानतेहुये देखते हैं वह शान्तात्मा अपनी आत्मा के जीतनेसे स्वर्ग को जाते हैं ४९ जो पुरुष चोरों को भय से त्रसित हुये ब्राह्मण गौ और स्त्रीजनों को सब स्थानों में रक्षित करते हैं वह स्वर्ग में प्राप्त होते हैं ५० और जो महज्जन गङ्गा, पुष्कर और गयादिकतीर्थों पर पितरों को पिण्डदान देते हैं ५१ अथवा मन इन्द्रिय आदिके शान्त करनेमें प्रवृत्त होकर भय शोक और क्रोध को त्याग देतेहैं वह स्वर्ग को जातेहैं ५२ और जो तीर्थ साधु की सेवा में रत और शान्त होकर सुख दुःखादि के सहनेवाले होते हैं ५३ अथवा जो कर्म मन वाणी आदि से किसी मनुष्य को दुःख नहीं देते हैं वह स्वर्गगामी हैं ५४ जो पुरुष कर्म, मन, वाणी से भी कभी पराई स्त्री से रमण नहीं करते हैं और अपने सत्यसत्त्वहीमें स्थित रहते

हैं ५५ अथवा जो पुरुष अपनी सामर्थ्य को जानके भी निन्दित कर्मों से रहित होकर विहित कर्मों को करते हैं वह स्वर्ग में बास करते हैं ५६ हे भारत! यह सब मैंने तुमसे वर्णन किया इस रीतिसे नरक और स्वर्ग कर्मों केही द्वारा प्राप्त होतेहैं ५७ अन्यजनों के प्रतिकूलकर्मों के करनेसे मनुष्य नरक में पड़ताहै और अन्यजनोंके अनुकूल करते हुये मनुष्य का जीवन सुखपूर्वक होताहै परन्तु मृत्यु सबके ही समीप वर्तमान रहती है समय आतेही ग्रस लेतीहै ॥ ५८ ॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायांस्वर्गनरकवर्णनो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नववां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि; हे सर्वशास्त्रविशारद, महाप्राज्ञ, पितामह! शरणागत आयेहुयेकी पालना करनेका जो धर्महै उसको वर्णन कीजिये १ भीष्मजी बोले, हे महाधर्मवाले, महाराज, युधिष्ठिर! शरणागतके पालनेवाले का बड़ा भारी धर्म पण्डितजन वर्णन करते हैं २ हे राजन्! शिबि आदिक महात्मा राजालोग शरणागत के पालन करनेसेही परम सिद्धि को प्राप्त हुये ३ सुनाजाता है कि कपोत पक्षी ने भी शरण आयेहुये शत्रुको भी न्याय से पूजन करके अपने मांससे तृप्त किया था ४ युधिष्ठिरने पूछा हे पितामह! प्रथम कपोत पक्षी का शत्रु कैसे शरण में आयाथा और कैसे मांस से पूजित हुआथा और

उस पूजन करनेसे वह पक्षी किस गतिको प्राप्त हुआ ५ भीष्मजी बोले कि, हे राजन् ! अब तू सबपापोंकी नाश करनेवाली इस पवित्र कथा को सुन जो भार्गवजी ने राजा मुचकुन्द से कही है ६ हे पार्थ ! इसी प्रसङ्ग को पुरुषों में उत्तम बड़े यशस्वी राजा मुचकुन्द ने इसी प्रयोजन के अर्थ बड़ी नम्रतापूर्वक भार्गवजी से पूछा था ७ तब उसकी शुश्रूषा और सेवा को देखकर भार्गव जी ने इस कथाको कहा है जैसे कि कपोत करके सिद्धि की प्राप्ति हुई ८ भार्गवजी ने कहा हे राजन्, मुचकुन्द ! तू अर्थ धर्म और काम से युक्त होकर बड़े निश्चयके साथ इस कथा को सावधानीसे सुन ९ कोई महाक्षुद्र आचरण-वाला पक्षियोंका काल महाघोररूप जिसके काक केसे नेत्र वर्ण और काक केही समान स्वर रूक्षशरीर बड़ी २ पि-ण्डली छोटी ग्रीवा छोटेही पैर और बड़ा उदर उस महा-वनमें पक्षियोंका ब्याध बिचरताथा उसके महाभयंकर कर्मोंसे सबलोगोंने उसे त्यागदिया था उसके कोई मित्र बान्धव और सम्बन्धी भी न था १०। ११ ऐसा पर-द्रोही दुरात्मा प्राणियोंके प्राणोंका हरनेवाला जीवों का कंपानेवाला कालरूप सर्प के समान होकर वह ब्याध पक्षियों के मारने के लिये अपने जालको लेकर वन में बिचरता हुआ दीनपक्षियों को पकड़ २ कर नित्य बेंचा करता था १३। १४ इसी प्रकार की वृत्ति से उस दु-रात्माको बहुत काल व्यतीत होगया परन्तु उसने किसी धर्म को नहीं जाना १५ वह प्रतिदिन प्राणियों के बध में तत्पर मांसाशी दीनजीवों का कंपानेवाला सर्प के स-

मान स्वभावयुक्त स्त्रीसमेत उस वन में बिचरता हुआ उस अनेक प्रकार की वृत्ति में तदाकार होनेवाले दुराचारी मूढ़ को दैवयोग से किसी समय वनमेंही स्थित हुये को बड़ेवेगवाले वृक्षों के तोड़नेवाले वायु का संभ्रम हुआ और यथार्थही बड़ेवेग से वायु चली १६। १८ और एक मुहूर्त मेंही आकाश मेघों से छागया और जैसे कि समुद्र नौकाओं के समूहों से आच्छादित होजाता है उसी प्रकार आकाश भी बिजलीके मण्डल से शोभित होकर मेघों से पूर्ण होगया १९ वर्षा की धारासमूहों से इन्द्र ने भी पृथ्वी को जल से पूर्ण करदिया २० जब पृथ्वी जल से पूर्ण होगई उस समय वह नीच हतचित्त व्याध शीत से पीड़ित आत्मा से महाव्याकुल हो जल और थल को नहीं पहँचानता भया और जल के समूहों से उसका मार्ग भी भरगया २१। २२ और वायु की वर्षा से पक्षी भी लीन होकर जहां तहां छिपगये मृग, सिंह, वराह आदि जीव स्थलके आश्रय को पाकर सोगये २३ उस बड़ी वर्षा से सब वनके जीव महादुःखी हुये उस समय वह भयसे पीड़ित काष्ठरूप होनेवाला लुब्धक भी अपनी रक्षा के निमित्त बहुत कांपता हुआ बड़ी शीघ्रता से जहां तहां फिरने लगा तो किसी स्थान में शीत से व्याकुल हुई महाभयभीत और दुःखित होकर पृथ्वी पर पड़ीहुई किसी कपोती को उसने देखा २४। २५ और ऐसी महापीड़ित उस कपोती को इस महादुःखित दशामें भी इस दुष्ट व्याधने अपने पिंजरे में डाल लिया श्रेष्ठों का वचन है

कि जो महादुःखमें प्राप्त होकर भी अन्यों को दुःख देता है वह पापकारी पापात्मा कभी दुःखों से नहीं छूटताहै इसके उपरान्त वह वनेचर ब्याध शीतसे कांपता हुआ फिररहाथा कि उसी समय उस वन में मेघ के समान नील छायावाले फल पुष्पयुक्त अनेक पक्षियों से सेवित किसी वृक्ष को देखता भया २६। २८ फिर दैवयोग से वह आकाश भी निर्मल होगया और क्षणमात्रमें ही सब तारामण्डल उदय होकर वह आकाश प्रफुल्लित कमल-पुष्पवाले तड़ाग के समान शोभित होगया २६। ३० तब शीत से व्याकुल हुआ वह दुरात्मा लुब्धक मेघ-रहित आकाश को देखकर दिशाओं को देखनेलगा ३१ हे राजन्! उस स्थान से ग्राम और बस्ती बहुत दूर थे इस हेतुसे वहां ही उस वृक्ष के नीचे उसीके आश्रय में रहनेकी बुद्धि उस ब्याधने करी ३२ और अपने शिर पर अञ्जली बांधकर उस वृक्ष से यह वचन बोला कि; जो जीवमात्र इस वृक्ष पर रहते हैं मैं आज उन्हींकी शरण में आया हूं ३३ ऐसा कहकर शीत क्षुधादि से पीड़ित हुआ वह ब्याध पृथ्वीपर वृक्षों के पत्ते बिछाकर एक शिला के ऊपर अपने शिर को धरके सोगया और महा-दुःखसे भराहुआ श्रमित हो घोरनिद्रा के वशीभूत हुआ ३४ भीष्मजी बोले कि उस वृक्षकी शाखा पर एक कपोत बहुत चिरकाल से बैठाहुआ था और उसकी स्त्री बहुत कालसे गई हुई लौटकर नहीं आई थी इसीसे वह कपोत बहुतरात्रि व्यतीत हुई जानकर उस अपनी कपोतनी के शोच से संतापित होकर यह वचन

बोला कि वायु वर्षा दोनों समाप्त हुई और मेरी प्रिया नहीं आई इसका क्या कारण है? कि अबतक नहीं आई ३५। ३७ बड़ी उन्नतछाती सुन्दरग्रीवा विचित्राङ्गी और मधुर वचनवाली ऐसी जो मेरी स्त्री आज नहीं आवेगी तो मैं अवश्य प्राणों को त्याग दूंगा ३८ हे वनके देवताओ! निश्चय करके उस मेरी प्रिया का कल्याण करो क्योंकि उसके विना अब मेरा घर शून्य है ३९ घर को गृह नहीं कहते किन्तु स्त्री कोही घर कहते हैं पुत्र, पौत्र, बधू और भृत्यादिकों से सब ओर युक्त भी होय परन्तु भार्या से हीन गृहस्थी का घर शून्यही है गृहणी के विना घर शून्य अरण्य के समान है ४०। ४१ जो वह लालनेत्रवाली सुन्दराङ्गी प्रिय बोलनेवाली ऐसी मेरी कान्ता अब नहीं आवेगी तो मेरे जीवनसे क्या प्रयोजन है ४२ जो मेरे भोजन किये विना आप भोजन नहीं करती स्नान किये विना स्नान नहीं करती और मैं बैठता तब आपबैठतीहुई सोता तबसोती४३ मेरी प्रसन्नतासे प्रसन्न दुःखित होनेमें दुःखी और मेरे रूषने में दीनमुख होती हुई मेरे क्रोधके समय प्रिय बोलती ४४ पतिव्रता पतिप्राणवाली पति के हितमें रत जिसकी ऐसी भार्या होय वह पुरुष धन्य है ४५ जहां स्त्री वर्तमानहै वह वृक्षकी जड़भी घरहै और स्त्रीके विना उत्तम महल भी दुर्गम और भयंकरवनहै ४६ धर्म कामादिकों में पुरुष की सहायक भार्याही है और इस पुरुष के विदेश गमन करने में स्त्रीही विश्वास करनेवाली है ४७ पतिव्रता स्त्री रोगयुक्त कष्ट में प्राप्तहुये भी अपने पति के अनुकूल

होकर स्नेहसमेत भक्ति से युक्त रहती है ४८ भार्या के समान बन्धु नहीं भार्या के समान प्यारा नहीं और हे राजन्! पीड़ित पुरुषोंको स्त्री के समान कोई औषध नहीं है ४९ और जिसके घर में सुन्दर नियमवाली प्रियवादिनी स्त्री नहीं है उसको जैसा घर वैसाही वन है इसहेतु से वनमें ही चलाजाना योग्य है ५० भीष्मजी बोले, इस प्रकार से उसके करुणापूर्वक विलाप को सुनकर ब्याधसे पकड़ी हुई पिंजरेमेंसे कपोतनी बोली ५१ अहो मैं अत्यन्त भाग्यवाली हूं जिसके कि शुभाशुभगुणों को मेरा प्राणपति वर्णन करता है ५२ जिसका भर्ता प्रसन्न नहीं होता वह स्त्री नहीं कहाती है स्त्रियों का भर्ता प्रसन्न होनेसे सब देवता प्रसन्न होजाते हैं ५३ और जिसका भर्ता प्रसन्न नहीं होता है वह स्त्री ऐसे भस्म होजाती है जैसे कि दावाग्निसे पुष्प फलों समेत लता दग्ध होजाती है ५४ हे कान्त! अर्थात् पति! मैं तेरे हितके निमित्त जो कहती हूं उसको मन लगाकर बड़ी सावधानी से सुनो तुमको सदैव शरणागत की रक्षा प्राणोंसे भी अधिक करनी चाहिये ५५ तेरे बासस्थान के आश्रय में यह ब्याध सोता है यह शीतसे कंपा हुआ और क्षुधासे पीड़ित है इसका सत्कारपूर्वक पूजन करो ५६ जो कोई ब्रह्महत्या वा लोक की माता गौका बध करे इसीके समान शरणागत के मारनेका पाप है ५७ सूर्यास्त होनेके पीछे प्रदोषके समय कुसमय कैसाही होय जिस गृहस्थी के घर पर आया हुआ अतिथि भोजन किये विना बसता है उस गृहस्थी का उद्योग करना वृथा है ५८ जो

कोई सन्ध्यासमय पर आये हुये अतिथि को नहीं पूजता है उसके निमित्त वह अतिथि अपने दुष्कृत को देकर और पुण्य को लेकर चलाजाता है ५९ इस कारण सर्वात्मा करके आये हुये अतिथि का पूजन करना गृहस्थी को अवश्य चाहिये यही इसका परमधर्म है शेष उपधर्म कहाते हैं ६० और जोकि इसने मुझे बांध लिया है इस हेतुसे इस पर क्रोधपूर्वक द्वेष मतकर मैं अपने पूर्वकर्मों के बन्धन से बँधगई हूं ६१ दरिद्रता, रोग, दुःखबन्धन और व्यसन ये सब देहधारियों के अपराधरूपी वृक्ष में फल लगतेहैं ६२ सुख दुःखादि का न कोई देनेवाला है न हरनेवाला है ये दोनों दुःख सुख अपनेही किये हुये भोगेजाते हैं ६३ दुःखों को अन्य कोई देताहै ऐसा समझकर उससे द्वेष करना अज्ञानता है रोग और तीव्र दुःखों को कब किसी ने दिया है ६४ इस निमित्त तू मेरे बन्धन से उपजे हुये द्वेष को त्यागकर अपने मन को धर्म में सावधान करके इस का विधिपूर्वक पूजन कर ६५ जो उपकार करनेवालों में साधु और उत्तम है उसके उत्तमपने में कौन कारणरूपी गुण है अथवा जो अपकारी बुरा करनेवालों में साधु है उसको श्रेष्ठलोग उत्तम कहते हैं ६६ साधुजन अपकारी पुरुषों में भी ऐसे सदैव श्रेष्ठरीति से रहता है जैसे कि चन्दनका वृक्ष अपनी सुगन्ध से छेदन करनेवालेको भी सुख देताहै ६७ भीष्मजी बोले कि; वह कपोत स्त्रीके ऐसे वचनोंको सुनकर सत्यधर्म में युक्त होके हर्षयुक्त होगया और नेत्रों में अश्रुओं को भर विधि-

पूर्वक कर्म में प्राप्त होकर उस अतिथिरूप पूज्य लुब्धक से बोला ६८। ६९ हे भद्र! तुम्हारा आना सुखपूर्वक है कहिये तुम्हारे निमित्त हम कौन कार्य करें जो आप की इच्छा होय उसको कहिये ७० मैं विनयपूर्वक तुमसे कहता हूं कि तुम हमारे शरण आये हो आपको किसी बात का संताप न करना चाहिये आप अपने ही घर में रहेहुये समझो ७१ मार्ग से थके हुये क्षुधा से युक्त ऐसे अतिथि को जानके जो नहीं पूजता है वह ब्रह्मघातकी कहाता है ७२ इस स्थान पर शरणागत का अत्यन्त सत्कार यत्न से करना चाहिये और जिसने पञ्चयज्ञोंका विधान कर रक्खा है उस गृहस्थी को तो विशेष करके पूजन करना चाहिये ७३ जो गृहस्थी मोह और अ-ज्ञान से पञ्चयज्ञों को नहीं करता है उसके दोनों लोक बिगड़जाते हैं ७४ जो तुम कहा चाहतेहो सो विश्वास-पूर्वक कहो वही मैं करूंगा तुम अपने चित्तको वृथा शोक में मत करो ७५ भीष्मजी बोले कि; उस कपोतके वचनों को सुनकर वह व्याध बोला कि, मुझको शीत बाधा कररहा है इस शीतसे तू मेरी रक्षा कर ७६ इस क्रूर कर्म को सुनकर वह कपोत अत्यन्त पीड़ित हुआ परन्तु उसके पास कहीं से अग्नि को लाया और बहुत शीघ्र सूखे २ पत्ते इकट्ठे करके उसकी ओर पास उस अग्नि को जलाया ७७ अग्नि को देदीप्त करके उस शरण में आये हुये व्याधसे कहा कि तुम विश्वासयुक्त भयसे र-हित होके अपने अङ्गों को तपावो ७८ ऐसे कहकर वह पक्षी फिर जङ्गल में से जाकर बहुतसे सूखे पत्ते लालाकर

देता भया ७९ इसके अनन्तर उस व्याध ने अपने सब अङ्गों को तपाया और अग्नि से तापकर उसके गये हुये प्राण बचे तब प्रसन्न होकर उस व्याध ने कहा कि ८० अब मुझे क्षुधा बाधा कर रही है इससे बहुत शीघ्र कुछ भोजन भी दो व्याध के इस वचन को सुनकर वह पक्षी बोला ८१ हे व्याध! मेरे घर में कोई विभव नहीं है जिससे तेरी क्षुधा का नाश करूं हम वनचर हैं नित्य भोजनादि उत्पन्न करके जीवते हैं ८२ हमारे वन में मुनियों के समान कुछ संचयभी नहींहै हे तात! प्रतिदिन अपनी चञ्चुसे अपने उदरको भरते हैं ८३ दरिद्री साधुके प्रयोजनका पूर्ण करनेवाला अर्थही होता है उसको अर्थ न मिले तो कैसे जीवे ८४ मुझ दुष्कृत और दीन जीवनवाले कृपणको धिक्कारहै कि मुझ को विधाताने केवल अपनेही उदरका भरनेवाला बनाया है ८५ कोई हज़ारोंको कोई सैकड़ों को और कोई दश पाँचही को पालताहै परन्तु मुझ हीनपुण्यवाले को अपने आत्मा का भी भरना दुर्लभहै ८६ इच्छापूर्वक सब जनोंका जीवन देनेवाला मैं फलयुक्त वृक्ष होजाऊं परन्तु केवल अपनेही उदरका भरनेवाला निर्धन नहीं रहूं ८७ पुष्प, फल, छाया, मूल, बल्कल और काष्ठादि से युक्त वृक्ष ही धन्य हैं जिनके कि आश्रयमें आकर अर्थीजन बिमुख नहीं जाते ८८ और जो एक अतिथि अभ्यागतकोभी अन्न देनेको समर्थ नहीं है उसको इस अनेक प्रकारके क्लेशों से युक्त घरमें बसने से क्या प्रयोजन है अर्थात् उसका घरमें रहना निष्फल है ८९ इस

कारण से इस व्यर्थ जीनेवाले शरीर से वह साधन करूंगा जिससे कि आयेहुये अतिथिसे यह वचन न कहूं कि मेरे घरमें कुछ नहीं है ९० भीष्मजी बोले कि; इस प्रकार से वह कपोत अपनी निन्दा करके उस लुब्धक से यह वचन बोला कि, एकमुहूर्त भरतक अपने शरीर की पालना करो फिर मैं तुमको तृप्त करूंगा ९१ मैंने प्रथम देवता और ऋषियों के संवादों में बारम्बार सुना है कि अतिथि के पूजन में बड़ा भारी धर्म है ९२ बहुत दूर से आशायुक्त क्षुधा तृषा और श्रमों से दुखित आयेहुये अतिथि को जो पूजता है उसको सब यज्ञों के करनेका फल मिलता है ९३ ऐसे कहके वह धर्मात्मा कपोत बड़े प्रसन्नमनसे अग्नि की तीन परिक्रमा करके उस अग्नि में अपने घरके समान प्रवेश कर गया ९४ फिर अग्नि में पड़ेहुये उस कपोत को वह लुब्धक देखकर करुणा करके बहुतसा दुखी हुआ और ऐसे कहनेलगा ९५ कि मुझ अकृतज्ञ क्रूरबुद्धि दुष्टकर्मी ने यह क्या किया मैं जबतक जीऊंगा तबतक यह पाप मेरे हृदय को दग्ध करेगा ९६ जो मनुष्य पाप करता है उसका आत्मा अप्रिय है अपने कियेहुये पाप को आपही भोगता है ९७ जो पापका चिन्तवन करताहुआ जैसा कहताहै वैसाही करताहै वह पाप में रतहुआ पुरुष पापयोनि में जन्म लेताहै ९८ सो मैं पापमें प्रधान और सदैव पापही में रहनेवाला हूं इस हेतुसे निस्सन्देह महाघोर नर्कमें पडूंगा ९९ कृमि भस्म और विष्ठा यही जिसकी तीनों गति हैं उस काया के निमित्त मनुष्य पापों को कैसे करता

है १०० अहो निश्चयकरके इस कपोतने अपने शरीर को भस्म करके गृहस्थियोंको अतिथिके पूजन का परम धर्म बताया है १०१ दुष्कृतकर्मी और पाप में निश्चय करनेवाले मुझ अधम को धिक्कार है जो मैं शुभकर्मोंको त्यागकर इस हिंसाकर्म में सदैव लगा रहताहूं १०२ जो हिंसक अपने शरीर के सुख के निमित्त जीवों की हिंसा करता है वह जीवता हुआ अथवा मरा हुआ भी कहीं सुख को नहीं पाता है १०३ निश्चय करके मुझ क्रूर कर्मवाले को उस महात्मा कपोत ने अपने मांसोंके देने से उपदेश दर्शाया है १०४ अब मैं भी आजसेही सब भोगोंको त्यागकर निश्चय अपनी देह को ग्रीष्म ऋतु में स्वल्पजलके समान शोषण करूंगा १०५ इस अपने मलिन शरीर को शीत वात और घाम से कृश करता हुआ बहुतसे नाना प्रकार के व्रतों से धर्मों को करूंगा १०६ पापसमूहों को जल पर्वत और आश्रमादिक भी पवित्र नहीं करसक्के इन महापापों से केवल आत्माही पवित्र करताहै १०७ आत्मा का आत्माही बन्धु है और आत्मा का आत्माही शत्रु है जिसने कि आत्मा करके आत्मा को जीत लिया है उसका आत्मा बन्धु है १०८ जो आत्मा को अहित कर्मों से आत्माही न बचावे तो उससे अधिक हितवाला कौन है जो आत्मा को अहित कर्मों से बचावे १०९ भीष्मजी बोले हे युधिष्ठिर! ऐसे धर्म के प्रभाव से और धर्मही के समागम होने से इस महापापी की भी मति धर्ममें होती भई ११० इस के अनन्तर वह लुब्धक अपनी यष्टी शलाका पिंजरा

और जाल को भी तोड़ डालता भया और उस दीन कपोतिनी कोभी छोड़दिया १११ तब लुब्धक से छुटी हुई कपोती अग्नि में पड़े हुये अपने पति को देखकर शोकसे दुखितचित्त महापीड़ित होकर यह विलाप करने लगी ११२ कि हे कान्त! मैं तेरे वियोग का कभी भी स्मरण नहीं करतीहूं क्योंकि तुझ सरीखे गुणाढ्य पति को बड़ी भाग्यशाली स्त्री प्राप्त होती है ११३ मैंने पुष्पित वृक्षों के ऊपर नदियों के झिरनों पर और पर्वतों के गुफाओं में तेरे संग रमण किया है ११४ हे प्रभो! तेरे विना मैं एक दिनभी नहीं जीऊंगी पति से हीन दीन हुई नारी का जीवन निष्फल है ११५ पिता मित अनुमान के समान देता है और भाई पुत्रादिक भी थोड़ेही फल को देते हैं और पति अमितफलों को देता है इस हेतु से अमित फल के देनेवाले पति को कौन स्त्री नहीं पूजेगी ११६ निश्चय करके चाहे किरोड़ों रुपये कीभी मालिक स्त्री हो और पुत्र मित्रों से भी युक्त होय परन्तु पति से हीन होनेसे वह तपस्विनी भी स्त्री बन्धुओं से शोचनेके ही योग्य होती है ११७ गन्ध, पुष्प, आभूषण और वस्त्र शय्यादिक भी विधवा स्त्री के कौन काम आसक्ते हैं ११८ अब इस अपने प्राणपति के मरने के सिवाय कौनसा इससे भी अधिक दुःख होगा जो कि मेरे प्राणों का हरनेवाला होगा ११९ स्त्रियों को वैधव्यके समान कोई दूसरा दुःख नहीं है वह स्त्रियां धन्य हैं जो भर्ता के आगे ही मरजाती हैं १२० जैसे कि तन्त्रीके विना वीणा

नहीं बजता है चक्र के विना रथ नहीं भ्रमता वैसेही पतिके विना सैकड़ों बन्धु पुत्रादि से युक्त भी स्त्री पूर्ण सुख को नहीं प्राप्त होती है १२१ मान अभिमान बन्धुओं में कुलकी पूजा और दास भृत्यादिकों से पूजा यह सब विधवा होनेसे नष्ट होजाते हैं १२२ दरिद्री, व्यसनी, वृद्ध अथवा व्याधि से पीड़ित और चाहे कैसाही कृपण भी होय वही स्त्रियों का पति परमगति है १२३ भर्ता के समान कोई धर्म नहीं भर्ता के समान कोई प्यारा नहीं भर्ता के समान कोई स्वामी नहीं और भर्ता के समान कोई गति भी नहीं है १२४ भीष्म जी कहते हैं कि इस प्रकारसे अत्यन्त दुःखित होनेवाली वह पतिव्रता कपोती भी बहुत से विलापों को करती हुई अग्नि में प्रवेश कर गई १२५ इसके अनन्तर वह कपोती दिव्य वस्त्रों को धारण किये दिव्य अलंकारों से भूषित और दिव्य विमान में बैठे हुये अपने पति को स्वर्ग में देखती भई १२६ कपोत भी दिव्यरूपवाली उस कपोती को देखकर बड़े आनन्दपूर्वक उससे मिलाप करताहुआ यह वचन बोला १२७ हे प्रिये! तुझ मेरे पीछे आनेवाली ने यह बड़ा शुभ धर्म किया और क्षणमात्र के दुःख से अत्यन्त सुख का संचय कर लिया १२८ मनुष्य के शरीर पै साढ़े तीन करोड़ रोम होते हैं उतनेही वर्षों तक जो स्त्री भर्ता के पीछे दग्ध होती है वह स्वर्ग में बास करती है १२९ सर्पका पकड़नेवाला जैसे कि बिलसे सर्प को बड़े बल से निकाल लेता है वैसेही स्त्री भी भर्ता को उद्धार कर

के उसीके संग मोद करती है १३० चाहे जैसा दुर्वृत्ती सब पापों से युक्त भी भर्ता होय ऐसे भर्ता कोभी धर्मों में नेष्टा करनेवाली पतिव्रता स्त्री उद्धार करदेती है १३१ भीष्मजी बोले कि; वह धर्मात्मा कपोत इस प्रकार की बातें कहकर स्त्री समेत विमान में बैठकर देवताओं के समान आनन्दपूर्वक विहार करने लगा १३२ हे राजन्! इसके पीछे वह लुब्धक भी वैराग्य में अपने मन को लगाकर बड़े प्रस्थान के आश्रय होकर उत्तर दिशा को गया १३३ और क्रोध, काम, भय, दम्भ, मोह, मद, अहंकार, असूया, किसीके गुणोंमें अवगुण न कहना और कुटिलता आदि सब अवगुणों को त्याग सुख दुःखादि समेत पत्थर सुवर्णादि में समानबुद्धि करके कर्म मन वाणी से सब जीवमात्रों को अभय देता हुआ सुखदुःख से रहित अनेक सर्पादिक भयंकर जीव-वाले जङ्गल में प्रवेश करता भया १३४।१३६ वहां कांटों से छिन्न लोहू से भीजा अङ्ग ऐसी छवि किये हुये जड़ अन्धे बधिर की सी आकृति बनाये हुये वह वन में फिरने लगा १३७ दैवयोग से उस जङ्गल में बांसों के रगड़ने से बड़ी अग्नि उत्पन्न हुई और थोड़े ही समय में युगान्त के समान वह अग्नि होकर सब वन को भस्म करने लगी १३८ उस भयंकर अग्नि को बड़ी शीघ्रता से आता हुआ देखकर वह लुब्धक बड़ी प्रसन्नता से उसीके सन्मुख गया १३९ इसके पीछे वह लुब्धक उसी अग्नि में दग्ध होकर अपने पापों से रहित होके सुन्दर दिव्य विमान में बैठ स्वर्ग को

गया १४० इस प्रकार से कपोत कपोती और लुब्धक यह तीनों दुष्कर कर्म को करके स्वर्ग में गये १४१ इसी प्रकार जो कोई स्त्री भर्ता को प्राप्त होगी वह भी उस पतिव्रता कपोती के समान स्वर्ग में विराजमान होवेगी १४२ हे राजन्! उस लुब्धक महात्मा कपोत और कपोती इन तीनों की जिस कर्म से उत्तम गति हुई सो सब हमने तेरे आगे वर्णन किया १४३ हे धर्मधारियों में श्रेष्ठ, राजन्, युधिष्ठिर! यह सब पापों का नाश करनेवाला धर्म तुझसे कहा है १४४ इस हेतु से तूभी धर्म में मनको लगाकर सब जीवोंके हित में आलस्यरहित होके अपना कार्य कर १४५ हे पुरुषव्याघ्र! जो जन्म के क्षय होनेकी इच्छा करता है तो अलसी पुष्प के समान श्यामवर्ण पीतपटवाले अच्युत भगवान् को स्मरण कर १४६ जो इस उत्तम आख्यान को पढ़े सुनेगा वह सब पापों से छूटकर स्वर्ग को जायगा १४७ देखो वह लुब्धक उस निराकुल अग्नि में पड़े हुये कपोत को देखकर शान्त को प्राप्त हुआ और कपोत स्वर्ग में पहुँचा और उस महात्मा की संगति से महा पापों का करनेवाला वह लुब्धक भी स्वर्गमें गया॥१४८॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायांकपोतोपाख्यानं
नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह! जिन २ भावोंसे सब

ओर से क्लिश्यमान हुये जीव दुर्गति स्थानों से तर जाते हैं वह सब मेरे आगे वर्णन कीजिये १ भीष्मजी बोले जो ब्राह्मण यथोक्त आश्रमों में यथोक्त कर्म के अनुसार नियत आत्मा होकर अपने समय को व्यतीत करते हैं वह दुर्गम स्थानों को तरते हैं २ जो पुरुष कर्म, मन, वाणीसे भी जीवों की हिंसा नहीं करते और अपनी आत्मा को क्रूरकर्मों में नहीं लगाते वह दुर्गम स्थानों को तर जाते हैं ३ जिनका कि जीवन केवल धर्मकेही निमित्त है और संतान के निमित्त मैथुन है अथवा देह के धारणके ही निमित्त भोजन है वह दुर्गम स्थानों से तरते हैं ४ जो अग्निहोत्र में प्रतिदिन तत्पर रहते हैं और नित्य अतिथिपूजन में अनुरक्त हैं और नित्यही पठन पाठनादि स्वाध्याय में प्रवृत्त हैं वह दुर्गम स्थानों को तरते हैं ५ जो मान की इच्छा नहीं करते और दूसरों का मान्य करते हैं और किसी को भी अपमान से बाधित नहीं करते वह दुर्गमता से तरते हैं ६ जो कर्म, मन, वाणीसे वासुदेव की पूजा करते हैं वह सब पापों से छूटकर स्वर्ग को जाते हैं ७ जो कर्म, मन, वाणीसे पराये द्रव्योंसे निवृत्त रहते हैं और पराई लक्ष्मी को देखकर संताप करके दुःख नहीं मानते हैं वह भी स्वर्ग में जाते हैं८ अथवा जो पराई स्त्रियोंको माता बहिन पुत्रीके समान देखकर वर्त्तते हैं वह स्वर्गवासी होते हैं ९ जो क्रोध करनेवालों केभी ऊपर कभी क्रोध नहीं करते हैं और मारतेहुओं को भी नहीं मारते हैं वह भी सब जीवों के हितकारी होकर स्वर्ग को जाते

हैं १० जो शान्त बुद्धि धर्म में बुद्धि करते हैं और सदैव सत्य में स्थित रहते हैं वह स्वर्ग को जाते हैं ११ जो पुरुष कष्टित होकर भी अन्यसे याचना नहीं करते हैं और संतोषपूर्वक धैर्यमें स्थित रहते हैं वह स्वर्गवासी हैं १२ जो शूरवीर पुरुष युद्ध में मरणके दुःख को त्यागकर धर्म से विजय की इच्छा करते हैं वह स्वर्गके अधिकारी हैं १३ जो कुमारअवस्था में ब्रह्मचारी होकर तपस्याओं को करते हैं और जितेन्द्रिय होकर आत्मा को जीतते हैं वह स्वर्गवासी हैं १४ जिन्होंसे कोई त्रास नहीं मानते हैं और आपभी किसीसे नहीं भय खाते हैं अथवा आत्मा के समान जिनको सब संसार है वह स्वर्ग के योग्य हैं १५ जो कर्म, मन, वाणी से किसी प्रकार का पाप नहीं करते और धर्मही में निष्ठा रखनेवाले हैं वह स्वर्गवास करते हैं १६ जो मांस मत्स्य और मदिरा आदिसे रहित होकर सबसे निवृत्त रहते हैं और अन्य मनुष्यों का उद्धार करते हैं वह स्वर्गवासी हैं १७ और जिन पुरुषों का बल केवल दुर्बल के निमित्त है और द्रव्य दान के निमित्त अथवा पढ़ना लिखना प्रवृत्ति के लिये है वह स्वर्गवासी हैं १८ और अनादिनिधन देवदेव जगत् की उत्पत्ति और नाश के करनेवाले श्रीमहेश्वरजी की भक्ति करनेसे दुर्गमस्थानोंसे तरजाते हैं १९ अथवा सब पापोंके नाशकरनेवाले महामङ्गलरूप त्रिविक्रम भगवान् में भक्ति करनेवाले पुरुष दुर्गतिको तर जाते हैं २० क्योंकि इस दुःखरूप भँवर तमरूप जालसे युक्त धर्माऽधर्मरूप जल से पूर्ण क्रोधरूप कीचसे व्याप्त

मदरूप ग्राहोंसे भयानक लोभरूप बुद्बुदों से आच्छादित मोहरूप गंभीर पातालवाले सत्यमान से विभूषित ऐसे संसारसागर से डूबतेहुओं को एक विष्णुही उद्धार करतेहैं २१।२२ इस " दुर्गतितरण नाम " अध्याय को जो आदरपूर्वक पढ़ेंगे वा सुनावेंगे वह दुर्गति से तर जायँगे २३ हे भारत! इस दुर्गति को जैसे २ कर्मों से तरजातेहैं वह सब मैंने तुम से वर्णन किया २४ और जिसने गोवर्धन पर्वतको मूलसमेत उखाड़ कर गोकुल के ऊपर छत्र के समान करदिया और यमुनानदी को अपने हलसे जिसने खींचकर वृन्दावन में प्राप्त करदी अथवा राहुको चूर्णित करके यज्ञमें लीलापूर्वकही राजा बलिको बांधलिया ऐसे त्रैलोक्यनाथ हरि भगवान् और बलभद्रजी युग २ में हमारी रक्षा करें॥ २५॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायांदुर्गतितरणंनाम
दशमोऽध्यायः॥ १०॥

ग्यारहवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! तीव्र व्रतवाले ब्राह्मण अत्यन्त क्लेशयुक्त होने पर भी राजाओं के दान प्रतिग्रहादिकों को क्यों नहीं लेते हैं इसका भेद सब आप मुझसे वर्णन कीजिये १ भीष्मजी बोले हे राजन्! सब राजालोग विशेष करके राजकीय ऐश्वर्य और मदों से युक्त रहते हैं और अपने धर्म में नहीं ठहरते हैं इस लिये सन्तजन उनके दानादिको निषिद्ध मानते हैं और

त्यागभी देते हैं २ इस स्थानपर एक प्राचीन इतिहास को कहता हूं जिसमें कि वृषादर्भि राजा का और सप्त ऋषियोंका संवादहै ३ हे राजन्! कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, भारद्वाज, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि और साध्वी अरुन्धती इन सब तेजस्वियों की परिचारिका दासी एक राक्षसी थी और उसका भर्ता पशुओं का पालक एक शूद्र था ४। ५ यह सब प्रथम तपस्याओं को करके इस पृथ्वी पर बिचरते थे और समाधियों से सनातन ब्रह्मलोक के जीतनेकी इच्छा करते थे ६ हे नृप! इसके उपरान्त किसी समय दैवइच्छा से अत्यन्त दुर्भिक्ष और वर्षा का अभाव होताभया तब सारा संसार क्षुधा से पीड़ित कष्टित प्राणोंवाला होता भया ७ फिर वह सप्तऋषि भी अन्नसे रहित होनेवाले इस लोकमें शरीर से सुखपूर्वक नहीं रहे और महाक्षुधा से ऐसे पीड़ित हुये कि एक मरेहुये बालकको कहीं से लाकर पकाते हुये ८ इसके अनन्तर उस जङ्गल में क्लेशयुक्त बिचरने वाले ऋषियों को वृषादर्भि राजा ने देखकर यह वचन कहा ९ कि हे ऋषिलोगो! प्रतिग्रह दानादिक ब्राह्मणों की अनिन्दित वृत्ति परमेश्वर ने रचीहै इस हेतुसे हे मुनिपुङ्गवो! आप सब मेरे दियेहुये प्रतिग्रहदानको स्वीकार करो १० सुन्दर ग्राम, व्रीहि, धान्य, यव, रस, अन्न, सुवर्ण और धेनु यह सब मैं तुम्हारे निमित्त दूंगा तुम अभक्ष्य मुरदे का भक्षण मत करो ११ राजा के वचन को सुनकर ऋषि बोले हे राजन्! प्रतिग्रहदान और मदिरा विषके समान है हे महाराज! आप सब

जानतेहुये भी हमलोगोंको लुभातेहो १२ देखो दश हत्या करनेवालों के समान चक्री अर्थात् कुम्हार है दश कुम्हारों के समान मदिरा का बनानेवाला कलार होता है दश कलारों के समान एक वेश्या होती है और दश वेश्याओं के समान राजा होता है १३ जो कलार दश हज़ार हत्याओंको प्राप्त होय उसकेही समान राजा है उसका प्रतिग्रह दान बड़ा घोर होता है १४ जो ब्राह्मण लोभसे मोहित होकर राजा का प्रतिग्रह लेताहै वह घोर तामिस्रादिक नरकों में पकता है १५ हे पार्थिव! इस हेतु से तू अपने दानसमेत घरको जा तेरी कुशल हो तू इस द्रव्य को इसके मांगनेवालों को दे ऐसा कहकर वह वन में चलेगये १६ इसके पीछे राजा का मन्त्री अपने राजा की आज्ञा से उस जङ्गल में सुवर्णसे भरेहुये गूलर के फलों को पृथ्वी पर बखेरता भया १७ तदनन्तर वह सब ऋषि अन्य फलोंको बीनतेहुये उन स्वर्णपूरित फलों को भी ग्रहण करनेलगे तब तो भारी २ जानकर अत्रि ऋषि ने कहा कि यह फल ग्रहण करने न चाहिये १८ क्योंकि हम मूढ़ विज्ञानवाले और मन्दबुद्धि नहीं हैं हम इन फलों को सुवर्णभरे जानते हैं हम चैतन्य होकर जागते हैं १९ इस स्थान में इन फलों का ग्रहण करना परलोक में अनिष्ट फलों का देनेवाला है इस निमित्त अनेकसुखों की इच्छाकरनेवाले मनुष्यों को नहीं ग्रहण करना चाहिये २० यह सुवर्ण सैकड़ों हज़ारों प्रतिग्रहवाला है इसको मनुष्य जितना अधिक ग्रहण करता है उतनाही अधिक पापवाली गति को प्राप्त होताहै २१

जो कि पृथ्वी पर व्रीहिधान्य, यव, सुवर्ण, पशु और स्त्री आदिक सुख हैं यह सम्पूर्ण एकहीके नहीं होते ऐसा जानकर शान्तिको प्राप्त होना योग्यहै २२ वशिष्ठजी बोले जो धर्म के भी लिये द्रव्योंका संचय करता है उसकीभी प्रशंसा नहीं है यहां द्रव्योंके संचयसे तप का संचय विशेष है २३ जो पुरुष सब प्रकारके संचयों को त्याग देते हैं उनके सब उपद्रव नाश होजाते हैं और संचय करनेवाला कोई भी उपद्रव से खाली नहीं दीखता २४ जैसे २ ब्राह्मण नष्ट प्रतिग्रहों को नहीं ग्रहण करता है वैसेही वैसे इसके संतोष से इसका ब्रह्मतेज बढ़ता है २५ जब कि जितात्मा पुरुषके अकिञ्चनत्व को और राज्य को तुला पर धरकर तोला तो उस महात्मा के अकिञ्चनत्व से राज्य बहुत हलका रहा २६ कश्यपजी बोले, जो द्रव्य संचय करताहै वह ब्राह्मण उस संचित द्रव्य के ऐश्वर्य से अपने श्रेष्ठ कल्याण को भ्रष्ट कर-देता है २७ और द्रव्यरूपी सम्पत्तिके निमित्त जो मोह है वह मोह नरक का हेतु है इसीलिये कल्याण की इच्छा करनेवाले पुरुष उस अनर्थक द्रव्य को दूरही से त्याग देते हैं २८ और जिसकी धन में चेष्टा धर्मार्थ के निमित्त है उसकी भी वह चेष्टा शुभ नहीं है क्योंकि कीच में अपने आप सनके फिर धोडालनेसे तो यही उत्तम है कि उसको दूरही से स्पर्श भी न करे २९ जो पुरुष द्रव्यसे धर्म को साधता है वह तुच्छही कहाता है और जो पराये द्रव्य के त्यागने से धर्म को सिद्ध करताहै वह मुक्तिके लक्षणवाला कहाता है ३० भारद्वाज

बोले जीर्ण पुरुष के केशभी जीर्ण होजाते हैं और दांत नेत्र कान भी जीर्ण होजाते हैं परन्तु तृष्णा तरुणाही के समान आचरण करती है ३१ सीवनेवाला जन जैसे कि सुई से वस्त्र में सूतको प्रवृत्त करदेता है वैसे ही यह संसारसूत्र तृष्णारूपी सुईसे बांधा जाता है ३२ जैसे कि मृग के बढ़ने में मृग के सींग भी बढ़ते जाते हैं वैसेही यह तृष्णा भी धनके बढ़ने में अधिक बढ़ती जाती है ३३ इस अपार दुःखवाली दुस्त्यज तृष्णा का त्याग देनाही उत्तमपुरुषों को अवश्य उचित है ३४ गौतमजी बोले संतोष करनेवाला ऐसा कौनसा मनुष्य नहीं है जो फल मूलादिकों से अपना निर्वाह करने को समर्थ न होसके सब इन्द्रियों की चञ्चलता से अनेक संकटों को प्राप्त होताहै ३५ जिसका मन प्रसन्न है उसके घर में सब संपत्तियां ऐसे हैं जैसे कि उपानह्से ढके हुये पैर को सब पृथ्वी चर्म से व्यावृत्त के समान जानी जाती है ३६ संतोषरूपी अमृतसे तृप्त हुये शान्तचित्तवालों को जो आनन्द है वह इधर उधर भागनेवाले धन के लोभियों को कहां है ३७ संतोष करनाही परमसुख है और संतोष न करनाही परम दुःख है इस निमित्त सुख की इच्छा करनेवाला पुरुष सदैव संतोष को करे ३८ विश्वामित्रजी बोले कामना की इच्छा करनेवाले पुरुष की जो कामना पूर्ण भी हो जाय तौ भी वह दूसरी कामना में प्रवृत्त होताहै ३९

१ वलिभिर्मुखमाक्रान्तं पलितैरङ्कितं शिरः। गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते ॥ १ ॥

कामों के भोगने से कभी भी ऐसे इच्छा शान्त नहीं होतीहै जैसे कि अग्नि घृत की आहुति से शान्त नहीं होतीहै अर्थात् बढ़तीही जाती है ४० अज्ञानसे कामों की इच्छा करताहुआ पुरुष ऐसे सुख को नहीं पाता है जैसे कि बाज़पक्षी के घोंसलेवाले वृक्ष की छाया में कपोत बैठाहुआ सुख को नहीं पाता है ४१ जो राजा चारों समुद्रपर्यन्त की पृथ्वी को भोगता है उससे भी वह पुरुष सुखी और कृतार्थ है जो सुवर्ण और पत्थर को समान जानकर बर्तताहै ४२ जमदग्निजी बोले प्रतिग्रह दान का त्याग बड़े तप को बढ़ाताहै इसीसे ब्राह्मण का तप धन के लोभ से डिगजाताहै ४३ जो ब्राह्मण राजासे द्रव्य प्राप्त करके इस शोचनेके योग्य कर्म में प्रसन्न होताहै वह दुरात्मा नरक की पीड़ाके भय को नहीं विचारता है ४४ दान प्रतिग्रह के लेनेमें समर्थ पुरुष को भी प्रतिग्रह में प्रसन्न न होना चाहिये प्रतिग्रह दान से ब्राह्मण का ब्रह्मतेज नष्ट होजाता है ४५ प्रतिग्रह दान लेनेमें सामर्थ्यवान् भी होकर जो पुरुष प्रतिग्रह को नहीं लेते उनको जो पुण्य होता है वही प्रतिग्रहके दोष कहनेवाले को और प्रतिग्रह न लेनेवाले को भी होता है ४६ अरुन्धतीजी बोलीं जैसे कि विष अर्थात् मूलकन्द का तन्तु कन्द के अन्तर में स्थित रहता है वैसेही आदि अन्त से रहित यह तृष्णा का तन्तु मनुष्यों की देह में प्राप्त रहता है ४७ यह तृष्णा दुष्टबुद्धिवालों से त्यागी नहीं जासक्ती है और जीर्ण होतेहुये भी पुरुष की जीर्ण नहीं होती है इसीसे यह तृष्णा प्राणों का नाश

करनेवाला रोग है इस तृष्णा को जो कष्ट सहकर भी त्यागदेता है वह सुख को प्राप्त होताहै ४८ उसीका पढ़ना सुनना और मनन करना है जिसने कि आशा को त्यागकर निराशा का अवलम्बन किया है ४९ राक्षसी बोली इस उग्रभयरूप तृष्णा से जो यह बड़ी २ सामर्थ्यवाले महात्मा ऋषिलोगही डरते हैं तो मैं तो अत्यन्त ही असामर्थ्य होकर इससे डरती हूं ५० पशुपालक बोला सदैव धर्म में परायण रहनेवाले विद्वान्लोग जिस आचरण को करें वही आचरण आत्मा के हित चाहनेवाले मूर्खको भी करना उचित है ५१ भीष्मजी बोले कि, वह सब ऋषि इस इस प्रकारकी बातेंकरके उन सुवर्णगर्भित फलों को त्याग अपने व्रत में दृढ़ता धारण करतेहुये अन्यस्थान को चलेगये ५२ फिर वन में विचरते हुये वे सब फल मूलों के खानेवाले अकस्मात् आनेवाले श्वानसखा संन्यासी को देखतेभये ५३ फिर सब उसीके सङ्ग अन्य वन में जाकर फूलेहुये कमल समूहवाले सरोवर को देखतेभये ५४ उस सरोवर पर जाकर अपने संचय कियेहुये मूलकन्द फलोंको सरोवरके किनारे पर रखकर अपने पुण्यकारी जलक्रीड़ाको करने लगे ५५ फिर उस जलक्रीड़ा को करके सरोवरसे बाहर होकर सब अपने २ कन्दमूल फलों को देखनेलगे तो वहां वह फल न देखे तब सब इकट्ठे होकर यह वचन बोले कि, क्षुधासे युक्त आहार करनेकी इच्छा करनेवाले हम सबलोगों के यह कन्दमूलफल और कमलोंकी जड़ किस पापकर्मी क्रूरकर्मवालेने हरलिये ५६ । ५७ यहां

हम सबही हैं और कोई अन्य भी नहीं आया और कन्द जातेरहे इस हेतुसे किसी अन्यका किया हुआ यह दोष नहीं है अपनेही सब लोगोंमें ढूँढ़ने चाहिये ५८ भीष्मजी बोले कि, फिर वह सब ऋषि आपसमेंही शङ्का करके परस्पर पूछने लगे तब हे राजन्! उन सबों ने परस्पर में बड़ी बड़ी शपथ खाईं ५९ परस्पर में केवल व्यवहार केही गौरवसे शपथसे निश्चय किया परन्तु कन्द मूलकी गौरवता से शपथ नहीं खाईं ६० अत्रि बोले जिसने कन्दों को चुराया होय वह सबदेवों से नमस्कृत त्रिलोकीके स्थिति, पालन, संहार रचना और सब ओर से धारण करनेवाले सब जगत् के स्थिति कर्ता और सब के गुरुरूप ब्रह्मण्यदेव विष्णु भगवान् को त्यागकर अन्य किसी अनीश्वरको भजो ६१। ६२ और वह पुरुष सबस्थानों में सर्व ग्रहण करे अथवा किसी की स्थापित वस्तु में लोभ करे और मिथ्या साक्षी होय जिसने कन्द मूल चुराये होयँ ६३ वह पुरुष छल से आचरण करे राजा की आजीविका करे मदिरा मांसादिक भी खाय जिसने चुराये होयँ ६४ कश्यपजी बोले, जो कन्दों की चोरी करने वाला है वह सदैव यती लोगों की निन्दा करे वैष्णवों का अपमान करे अध्यात्मविद्या से विमुख होजाय ६५ वेदों को पढ़के त्याग दे तीनों अग्नियों का अपमान करे वाद से ब्राह्मणों को जीते ६६ सदा मिथ्या बोले वृद्धावस्था के कर्म से जीवन करे कन्या को मूल्य से बेंचे ६७ वशिष्ठ जी बोले जो कन्दों की चोरी करे वह इतिहासकथा को सुनता हुआ धर्मोपदेश को

भी सुनता हुआ निद्रा के वशीभूत होजाय ६८ और वह दुर्बुद्धि इतिहास पुराण और धर्मशास्त्र इन सब को कभी न सुने ६९ विना ऋतुकाल स्त्री से मैथुन करे दिनमें सोवै परस्परमेंही अतिथि और अभ्यागत बने और एककूपवाले ग्राम में रह कर शूद्र की स्त्री का पति होकर रहे जिस ब्राह्मण ने कन्दों को चुराया होय ७० भारद्वाज बोले जिसने कन्दमूल चुराये होयँ वह धर्मशास्त्रों को सुनके भी पापों का सेवन करे दान की शक्ति से हीन होजाय ७१ विष्णुपरायण न हो विष्णु का शत्रु होय धर्मसे पराङ्मुख रहे कुकर्म के नियम करे ७२ सब जनों में क्रूर होय समृद्धि होने से अहंकारी होय कुटिलता करनेवाला चुगली करनेवाला ७३ क्रोधी होकर गाली देनेवाला होय आप पिटकर दूसरों को पीटे रसों को वेंचे जिसने कि कन्दों को चुराया होय ७४ गौतमजी बोले जिस ने कन्द चुराये होयँ वह प्राप्त हुये अतिथि को त्याग दे पाक रसोई में भेद करे सदा शूद्र के अन्न को खाय ७५ दान देकर कीर्तन करे अपनी स्त्री से आजीविका करे और अकेला मिष्टान्न भोजन करे ७६ विश्वासघाती होय ठगने में सदैव प्रवृत्त रहे मिथ्याकर्मी हो ७७ भीतर से दुष्ट होकर बाहरसे शान्त होय ब्रह्म बेंचने में तत्पर हो कर्म की निन्दा में प्रवृत्त रहे ७८ नित्य अनुष्ठानों में युक्त होकर अध्यात्मज्ञान से दुर्बल पुरुषों को मोहे और दुष्टबुद्धिवाला भी होय जिसने कन्दों की चोरी करी होय ७९ विश्वामित्रजी बोले जिसने कन्दों की चोरी करी होय

वह तीर्थयात्रा में तत्पर न रहै तीर्थों का दूषक रहे और तीर्थों पर पाप करनेवालाभी होय ८० पाखण्ड धर्म के स्वभाववाला हो उन्हीं का साधकहो और ब्राह्मणपने का दूषक होकर वह महादुष्ट पुरुष होजाय ८१ नित्य कामासक्त रहे दिनमें भी मैथुन करे और नित्य याचना करनेवाला हो ८२ दूसरे की निन्दाकरे परस्त्रीगामी होय पराये द्रव्यों का हरनेवाला ८३ रसों का बेंचने वाला होकर भग का बेंचने वाला और विषों का बेंचने वाला हो ८४ भृत्य और अतिथि को त्यागकर अपने ही निमित्त अन्न को पकावे और राजा की निन्दा में तत्पर होय जिसने कि कन्द चुराये हों ८५ जमदग्निजी बोले जिसने कन्दमूलों की चोरी करी है वह देवता और ब्राह्मणों की निन्दामें तत्पर होकर पशुओं के समान क्रीड़ा करे ८६ चौरकर्म में रतरहे चोरों का सूचक रहे मिथ्या और अभिशाप को कहे ८७ वेद की निन्दा करता हुआ अपने राजा की भी निन्दा करे ८८ माता पिता का अपमान करे और श्वशुर से अपनी जीविका की वृत्ति को ग्रहण करे ८९ सदैव अन्य के पाक को खाय दिन में मैथुन करे वेद को बेंचे ९० अत्यन्त पापसे अधर्म से क्लेश से और शत्रुओं के मारने से द्रव्यों का संचय करनेवाला होय जिसने कि कन्दों की चोरी करी होय ९१ अरुन्धती बोलीं जिसने कन्द की चोरी करी होय वह इतिहास पुराणों के कहे हुयेको और धर्मशास्त्रके कहेहुये को त्यागकर अन्यधर्मों को करे ९२ भर्ता, भर्ताके मित्र, प्रियजन, भाई, बन्धु

इन सब को त्यागकर अन्यके भाववाली होजाय ९३ अपनी सास के संग विवाद करे भर्ता से हीन होकर जीवे और अकेली स्वादिष्ठ भोजन करे ९४ और वह स्त्री दरिद्री विकल दीन रोग से पीड़ित और वृद्ध भर्ताका अपमान करे जिसने कन्दमूल चुराये होयँ ९५ राक्षसी बोली जिसने कन्दों की चोरी करी होय वह स्त्री शूद्रा होकर शूद्र की दासी होनेकी इच्छा करे और शूद्र की आज्ञावर्ती होके उसकी टहलकरे ९६ अपने भर्ता से प्रतिकूल होकर देवतादिकोंको प्रणाम न करे ९७ पशुपालक बोला जिसने कन्दों की चोरी करी है वह ब्राह्मणों के आगे गमन करताहुआ मार्ग को नहीं बतलावे और वियोग करे ९८ संन्यासी बोला जिसने कन्दों की चोरी करी होय वह न्यायपूर्वक वेदों को पढ़े और अभ्यागतों का प्यारा होकर गृहस्थी होय दुष्ट पुरुषों में सत्य बोले ९९ नित्य अग्नियों की उपासना करके विधि से यज्ञकरनेवाला हो और ब्रह्मलोक में भी जाय १०० और रागद्वेष से रहित होकर सदैव पराये हितमें तत्पर हो और इससंसार को असार जानके ध्यानयोग में परायण हो और अध्यात्मब्रह्मविद्या में प्रीतिमान् होकर लोहे, पत्थर, सुवर्णमें समान बुद्धिवाला होजाय जिसने कि कन्दों की चोरीकरी होय १०१।१०२ अकेला रहनेवाला परमार्थ को जाननेवाला और परहिंसा से रहित होकर ब्रह्मसायुज्यमुक्ति को प्राप्त होजाय जिसने कि कन्दों की चोरी करी होय १०३ और सब आभूषणादि से अलंकृत अपनी कन्या को

ऋतु २ में पूजन करनेवाले उत्तम ऋत्विज ब्राह्मण को दान देनेवाला होकर मदसे रहित होय जिसने कि कन्दों को चुराया होय १०४ ऋषिबोले हे श्वानके सखा, संन्यासी! तैंने जो शपथ करी है यह तो ब्राह्मणों को वाञ्छितही है इस हेतुसे हम सब के बीच में तैंनेही चोरी करी है १०५ संन्यासी बोला हे ब्रह्मर्षि, ब्राह्मणलोगो! मैंने तुम्हारे धर्म सुनने के लिये इन कन्दमूलों को चुराया है मैंने अन्तर्हित होकर तुम्हारे इन कन्दमूलों को छुपाया है और मुझको इन्द्र जानों १०६ हे मुनिसत्तमो! तुमने लोभके त्यागने से अक्षयलोकों को जीतलिया है इस हेतु से तुम विमानों पर बैठो और हम तुम समेत स्वर्ग को चलते हैं १०७ इसके अनन्तर वह ऋषि लोग उसको इन्द्र जानकर बहुत प्रसन्न हुये और उसीके संग स्वर्ग में गये १०८ हे राजन्! वह मुनिसत्तम प्रतिग्रह दान को घोर जानते हुये मृतकको भी भक्षण करके तृष्णा से मूढ़ नहीं हुये १०९ और बहुत प्रकार के भोगों से लोभित करानेपर भी लोभ नहीं करते हुये इस हेतु से स्वर्ग में गये ११० जो मनुष्य इन ऋषियों के इस चरित्र के माहात्म्य को सुनेगा वह सब पापों से छूटकर स्वर्ग में प्राप्त होगा॥ १११॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायांसप्तर्षिसंवादोनाम
एकादशोऽध्यायः॥ ११॥

बारहवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे भारत! पाप का कौन सा

अधिष्ठान है अर्थात् उसकी स्थिति कहां रहती है कहां
से इस पाप का जन्म होताहै और क्या इसका कारणहै?
इसको हे पितामह! मुझे बताइये १ भीष्मजी बोले
पाप की प्रतिष्ठा लोभ है लोभसेही पाप उत्पन्न होताहै
और लोभही पापका कारण है यहां तू सन्देह मतकर २
लोभसे क्रोध उत्पन्न होताहै लोभसे ही द्रोह पैदा होता
है और लोभहीसे मोह, ममता, मान, मत्सरता अर्थात्
दूसरे की शुभसम्पत्ति का न सहना यह बातें उत्पन्न
होती हैं ३ और नानाप्रकार की द्रव्यों से भी लोभ ऐसे
नहीं पूर्ण होताहै जैसे कि सदैव गम्भीरजलवाली नदियों
से भी समुद्र पूर्ण नहीं होता है ४ हमने सुना है कि
राजा पुरूरवा सब द्वीपोंसमेत अठारह हज़ार रत्न द्रव्यों
कोभी भोगताहुआ तृप्त नहीं हुआ ५ हे भारत! वह
लोभी पुरुष सब जीवों में विश्वासयुक्तभी होकर सब
का हिंसक और कुटिल होता है ६ लोभ जबहीं नष्ट
होताहै जब कि विष्णुके चरणारविन्दों की भक्ति उत्पन्न
होतीहै सो वह भक्ति पुरुषों को बड़ी दुर्लभ है ७ जो पु-
रुष बड़े २ शास्त्रों के धारण करनेवाले और सुनने वा
सन्देहों के भी छेदन करनेवाले हैं वहभी लोभसे ग्रसित
होकर अधोगति को पातेहैं ८ लोभ के नाश होजाने से
शरीरधारियों के सब पाप भी नष्ट होजातेहैं और हे
राजन्! लोभ की वृद्धि होनेसे सब पापोंकी भी निस्सन्देह
आधिक्यता होजाती है ९ जब लोभ क्षय होजाता है
तब सब उपद्रवभी शान्त होजाते हैं और तभी पुरुषों
के धर्म की वृद्धि होतीहै १० धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन

चारोंके साधन में तत्त्वदर्शी मुनियों का यही परमधर्म है ११ और लोभ से आच्छादितहुये मनुष्य के धर्म का सम्बन्ध नहीं होता क्योंकि यही परम दारुण लोभ धर्म का विध्वंस करनेवाला है १२ हे महाराज, युधिष्ठिर! जो तू अपनी अचलगति होनेकी इच्छा करता है तो लोभ को त्याग १३ जिनका लोभ नष्ट होकर विषयोंसे रहित चित्त होजाता है और शान्तचित्त होकर कुटिलता से रहित हैं वह उस विष्णु के परमपद को प्राप्त होते हैं जिसको कि योगीजन सनातन पद वर्णन करतेहैं॥ १४॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायांलोभाख्यानंनाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

तेरहवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले शम[1] अर्थात् शान्तकरना और तप करना इनदोनों में से कौनसा अधिक उत्तम है? हे तात! मेरे इस सन्देह को आप कहने के योग्य हैं १ भीष्मजी बोले हे राजन्! पण्डितजनों ने अपने २ विज्ञान के आश्रय होके धर्म की अनेकप्रकार की गति कहीहैं उन सबोंमें शम अर्थात् शान्तिही उत्तम है २ शम अत्यन्त पवित्र है पुण्यकारी है शमही असंख्य सुखकारी होकर अशेषपापों का हरनेवाला कहाहै ३ इस स्थानपर एक प्राचीन इतिहास को वर्णन करते हैं जिसमें तुलाधार और महात्मा जाजलि का संवाद है ४ पूर्वकाल में

१ शमः कः मनो निग्रहः।

समुद्र के समीप बड़ा तपस्वी एकजाजलि नाम ब्राह्मण तपस्या करता था और समाहित होकर वायु का भक्षण करता था ५ फिर वृक्षादि के समान स्थित होकर उस को खड़ेहुये बहुत वर्ष व्यतीत हुये तब उसके ऊपर पृथ्वी की धूलि इतनी जमगई कि उस पर वृक्ष उत्पन्न होगये फिर दो पक्षी उसके शिर के वृक्ष पर अपना घोंसला बनाकर रहनेलगे ६ फिर उस शान्त स्वभाव दयावान् ब्रह्मर्षिनेभी जप करतेहुये उन पक्षियों के जोड़ेको देखा और उन पक्षियोंने विश्वासयुक्त होकर अण्डेभी रक्खे ७ फिर अण्डेपकनेके पीछे उन अण्डोंसे बच्चेहुये और वहीं बढ़े परन्तु जाजलिऋषि चलायमान न हुआ ८ फिर किसीसमय उनके पंख उत्पन्न हुये तब वह पक्षी उड़कर चलेगये और फिर कहीं जाकर वह नहीं आये तब वह ब्राह्मण वहांसे गमन करताभया ९ उसके पीछे अपनी भुजाओं को बजाता अभिमान में भरा हुआ वह जाजलि यह वचन बोला कि, इस संसार में मेरे समान तपस्या करनेवाला कोई नहींहै उस के ऐसे कहनेपर आकाशवाणी हुई १० कि हे ब्राह्मण! काशीजी में बड़ा बुद्धिमान् तुलाधारनाम ब्राह्मण बसता है सो वहभी बड़ा तपस्वी है और बड़ातपस्वी होकरभी वह ऐसा नहीं कहताहै जैसा कि तुम कहते हो ११ उस के इस वचन को सुनकर तुलाधार के देखनेकी इच्छा करके वह ब्राह्मण थोड़ेही काल में काशीपुरी में प्राप्त हुआ १२ इसके अनन्तर वहां बहुतसे रसों को बेंचते हुये उस तुलाधार को देखा तब तुलाधार उसको देखकर

यह वचन बोला १३ हे द्विजसत्तम! मैंने आपको यहां आया हुआ कभी नहीं देखाहै परन्तु आपके यहां आने का जो प्रयोजनहै वह मैंने जानलिया है १४ हे ब्रह्मन्! तप करतेहुये तुम्हारे मस्तक पर पक्षी उत्पन्नहुये फिर आश्चर्य के कारण तुमको मेरे विषयमें आकाशबाणी होती भई १५ हे महर्षे! उसको सुनकर तुम मेरे देखने की इच्छा करके यहां आयेहो हे द्विजश्रेष्ठ! आप कृपा करके जो आज्ञा करें वह मैं आपका प्रिय करूं १६ जाजलिऋषि बोला, हे तुलाधार! तुम सब रसों को और गन्धों को प्रतिदिन वेंचते हो परन्तु यह उत्तम धर्म आप को कहां से प्राप्त हुआ यह आप मुझसे वर्णन कीजिये १७ तुलाधार बोला हे द्विज! मैंने शास्त्र नहीं पढ़े हैं और ब्राह्मणों की भी उपासना नहीं करीहै मुझको तो यह धर्म प्रथम ही जन्म के अभ्यास से प्राप्त हुआ है १८ मनुष्य जिसको कर्म मन और वाणी से नित्य सेवन करता है उसको उसीका अभ्यास होजाताहै इस में तुम किसी बात का सन्देह मत करना १९ जो पुरुष दुखितजीवों को देखके आप भी दुखित होताहै और सुखी जीवों को देखके सुखी होता है वह उत्तमधर्म को प्राप्त होता है २० और हे जाजलि ऋषि! जीवोंके द्रोह से रहित अथवा अल्पद्रोह से जो वृत्ति है वही परम धर्म है मैं उसीसे जीवता हूं अर्थात् आजीविका करताहूं २१ और मैंने जैसे इस आच्छादित किये हुये तृणकाष्ठादि से यह रक्षा की है वैसेही अपने वित्त के अनुसार विष्णु भगवान् का मन्दिर भी बनाया है २२

और अन्यदेवता ब्राह्मण गौ आदि की नित्य शुश्रूषा अर्थात् टहल भी करीहै परन्तु सदैव पाखण्डों से रहित रहाहूं २३ और जो मैं देताहूं वह कम नहीं देता और जब ग्रहण करताहूं तो किसीसे अधिक धन नहीं लेताहूं सो मैं मदिरा आदिक से रहित होकर निष्कटु रसों को बेंचताहूं २४ जो पुरुष इस बणिजकर्म में अज्ञान अन्धे और मूर्खों को ठगता है वह घोर नरक में पड़ता है और उसका सब धन भी नष्ट होजाता है २५ हे जाजलि! जो सब प्राणियों का मित्र है अथवा सबके हित में कर्म, मन, वाणी से प्रवृत्त है वह बड़े धर्म को प्राप्त होता है २६ जिस पुरुष से मृत्यु के समान सब जीव भयसे भीत होकर कांपते हैं वह पुरुष कर्म मन वाणी आदि से पाप की गति को प्राप्त होताहै २७ और हे द्विजवर्य! मैं अन्यों के कर्मोंकी सराहना निन्दा से रहित होकर करताहूं और हे जाजलि! मैं सब में सम भाव रखताहूं यही मेरा व्रत है २८ जैसे पंगु, अन्धा, बहरा, नपुंसक, गूंगा, जड़ और ज्ञान से रहित यह सब पुरुष दैवसेही ज्ञानमार्गसे रहित हैं अर्थात् स्वतन्त्र इन्द्रियों के भोगादिकों से रहित हैं वैसेही विषयों में मेरी भी उपमा है २९ जैसे कि वृद्ध आतुर रोगी और कृश पुरुष यह सब इन्द्रियों के भोग से रहित हैं वैसे ही काम भोगों में मेरी भी इच्छा विगत होरही है ३० हे जाजलि! मैं शत्रु मित्र इन दोनों में समान हूं और लाभ हानि में भी समबुद्धि होकर सब जीवों में एक सी बुद्धि रखताहूं ३१ और सम्पूर्ण जीवों में आत्मारूप

सर्वत्र सम देखता हुआ अपने ब्रह्मपद की इच्छा करताहूं ऐसे पुरुष के वृत्तिमार्ग में देवता भी मोह को प्राप्त होजाते हैं ३२ और जब सब जीवों में कर्म, मन, वाणी से भावी के अनुसार पाप करता है तभी ब्रह्म प्राप्त होताहै ३३ जो मेरी स्तुति करता है अथवा शत्रुता से निन्दा करता है वह दोनों मुझको समान हैं और रागद्वेष से रहित हुये मेरे कोई प्रिय और अप्रिय नहीं है ३४ और सब नदी सरस्वतीके ही समान हैं पर्वत पुण्यस्थानों के समान हैं और सब तीर्थों को समानही जानताहूं इसको आप निस्सन्देह जानो ३५ शम ही परमतीर्थ है सम अर्थात् समानता ही परम तप ज्ञान और शमही परम योग है ३६ ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थ और यती यह सब भी शान्तिही करने से परमगति को प्राप्त हुये हैं और होते हैं ३७ दान, पूजन, तप, शौच, तीर्थ सेवा और शास्त्रों का सुनना यह सब अशान्ति पुरुष के वृथा होकर अनर्थक होते हैं ३८ राग, प्रीति, वेष, मिथ्या, क्रोध, लोभ, मोह इन सब दोषों से रहित होना ही शान्त कहाती है ३९ जिन पण्डित लोगों ने निश्चय करके शब्दों के द्वारा शास्त्र जाने हैं उन सबसे अधिक सब शास्त्रोंका जाननेवाला वह पुरुष है जिसका मन सदैव शान्त रहताहै ४० जो सुना है और शब्दशास्त्र से निश्चय भी किया है और दृढ़ भी कर लिया है परन्तु जो वैराग्यपूर्वक शान्तिके अर्थ नहीं है वह काकभाषित अर्थात् कौवेके शब्दके समान है ४१ भीष्मजी बोले वह तुलाधार इन धर्मों को कहकर फिर

इस जाजलिऋषि को उन समीप में स्थितहुये पक्षियों को भी दिखावता भया ४२ तुलाधार बोला कि हे विप्र! जो तेरे मस्तक पर पक्षी उत्पन्न हुयेथे वह यहहैं हे द्विज-श्रेष्ठ! तुम इनके धर्म के पितारूप हो इससे इनको तुम्हीं बुलावो ४३ भीष्मजी बोले उसके कहनेसे उस जाजलि मुनि ने उन पक्षियों को बुलाया तब वह आकर धर्मरूप वचन से यह वाणी बोले ४४ हे ब्रह्मन्! तुम इस स्पर्द्धा और कुटिलता को त्यागकर परम आश्चर्य को भी त्यागदो और शान्ति में मनको धारण करके परमपद को जावो ४५ आश्चर्य करने से अत्यन्त दुःखसे संचित किया हुआ यह तुम्हारा तप नष्ट होताहै तप के नष्ट होजाने से फिर परमपद को नहीं प्राप्त होगे ४६ हे तपके क्षय करनेवाले! तुम विस्मयको त्यागि मन को शान्ति में युक्त करके ध्यानयोग में तत्पर होजावो ४७ हे ब्रह्मन्! पुराने फटे वस्त्रों का धारण करनेवाला जटा त्रिदण्डका भी धारण करनेवाला पुरुष वृथा क्लेश को पाता है जब कि उसका मन शान्त नहीं है ४८ और जो दुखित होकर भी जहां तहां आश्रम में रहता हुआ धर्म के आचरणपूर्वक सब जीवमात्रों में सम रहता है वह मुक्तिपद का अधिकारी होता है ४९ रागस्नेह करनेवाले पुरुषों को वन में भी दोष लगजाता है और पांचों इन्द्रियों का रोकना घरमें भी तप कहलाता है अर्थात् जो निन्दारहित कर्म में प्रवृत्त होकर प्रीति से निवृत्त रहता है उसको घर ही तपोवन है ५० और हे ब्रह्मन्! हम तेरे धर्मके निश्चय जाननेकी इच्छासे यहां

स्नेह से प्राप्त हुये थे सो तुम कुटिल स्वभाव को त्यागकर शान्त चित्त होजावो ऐसा कहकर वह पक्षी उड़कर वन को चले गये ५१ भीष्मजी बोले कि, वह ब्राह्मण इस प्रकार से पक्षियों के और तुलाधार के समझाने पर नियम से शान्ति को प्राप्त होकर परमगति को प्राप्त होता भया ५२ हे राजन्! इस हेतु से तप से भी शान्ति बड़ी उत्तम है तपस्वी तो स्वर्ग को जाता है और शान्तात्मावाला पुरुष वैष्णवपद को प्राप्त होता है ५३ हे भारत! यह सब तत्त्व मैंने तुमसे कहा अब तुम भी शान्तचित्त होकर ध्यानयोग में तत्पर होजावो ५४ जो इस उत्तम पवित्र आख्यान को नित्य सुने अथवा अञ्जलीबद्ध होकर पढ़ेगा वह परम गति को प्राप्त होगा॥ ५५॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायांतुलाधारजाजलिसंवादो नामत्रयोदशोऽध्यायः॥ १३

चौदहवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि, हे पितामह! कोई तो अर्थद्रव्य की प्रशंसा करते हैं कोई धर्म की प्रशंसा करते हैं इन दोनों में उत्तम लाभ कौनसा है वह मेरे आगे वर्णन कीजिये १ भीष्मजी बोले कि, मुनिजनलोग मनसाके धन को सदा स्थिर नहीं कहते हैं द्रव्य को दैव अर्थात् भाग्य के आधीन कहते हैं परन्तु धर्म को दिव्यसुख का देनेवाला कहते हैं २ इस स्थान पर मैं एक इतिहास को

कहताहूं जिसमें कुण्डधार ब्राह्मण ने पूर्वप्रीति से भक्त के लिये जो उपकार किया है उसका वर्णन है ३ कोई निर्धन ब्राह्मण लोभ से मोहित होकर धनके निमित्त देवताका पूजन करता था परन्तु उसको कहीं से भी धन नहीं प्राप्त हुआ ४ फिर वह चिन्तायुक्त होकर विचार करने लगा कि कौनसा देवता सेवन करने के योग्य है जो मनुष्यों करके जड़रूप न होकर शीघ्रही प्रसन्न होजाय ५ इसके अनन्तर वह ब्राह्मण किसी देवताओं के समीपवर्ती देवताओं के अनुचर कुण्डधार नाम ब्राह्मण को देखताभया और उसको देखकर चिन्तवन किया कि यह मेरा कल्याण करेगा ६ क्योंकि यह देवताओं के समीप रहता है और मनुष्यों से आवृत नहीं है यह मुझको उत्पन्न हुये धनको अवश्य देगा ७ प्रथम ब्रह्माजी हज़ारों लाखों वर्षों तक विष्णु का आराधन करके त्रिलोकी के धाता अर्थात् रचनाआदिक करने को नियत हुये ऐसा हमने सुना है ८ इस हेतुसे जो विष्णु भगवान् को अल्पही कालमें प्रसन्न करना चाहताहै वह बाहुओंसे समुद्रको पैरकर पार होनेकी इच्छा करता है ९ इसलिये मैं थोड़ेही समय में उस विष्णु को प्रसन्न होने के लिये यथार्थविधि से इस कुण्डधार के पूजनकी इच्छा करताहूं १० इसके पीछे उस ब्राह्मणने सुगन्धित पुष्प, उत्तम धूप, दीप, नैवेद्य और बलि भेंट आदिक से उस कुण्डधार की पूजन किया ११ फिर कुण्डधार थोड़ेही समय में उस ब्राह्मण पर अत्यन्त प्रसन्न होकर और उसके उपकार में प्रवृत्तचित्त होकर शान्तवाणीसे

यह वचन बोला १२ कि श्रेष्ठपुरुषों ने ब्राह्मणके मारने-वाले मदिरा पीनेवाले चौरकर्मी और व्रतभङ्गवाले इनका तो प्रायश्चित्त कहाहै परन्तु कृतघ्नी पुरुषका प्रायश्चित्त नहीं कहाहै १३ कृतघ्नी पुरुष का कीर्तन, दर्शन, स्पर्शन, भाषण और स्मरणभी नहीं करनाचाहिये क्योंकि कृतघ्नी पुरुष चाण्डालके समान होताहै १४ वह कुण्डधार ऐसा कहकर देवताओं की सभा में प्राप्त होकर उन देवताओं को साष्टाङ्गदण्डवत् करता भया १५ फिर वहां देवताओं के कहनेसे बड़े तेजवाला मणिभद्र यह वचन बोला कि हे कुण्डधार! तुम किस बात की इच्छा करतेहो १६ कुण्डधार ने कहा कि, हे देवतालोगो! जो आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो एक उत्तम ब्राह्मण मेरा भक्त है सो आप देवताओं से कियेहुये उसके अनुग्रहको मैं चाहता हूं १७ भीष्मजी बोले कि, उसके वचनको सुनकर देवताओंके ही कहनेसे फिर मणिभद्र उसकेही योग्य वचन बोला १८ अर्थात् मणिभद्र ने कहा हे कुण्डधार! उठ खड़ा हो २ तेरा कल्याण हो तू उसके लिये जितना धन चा-हता है उतनाही उसको देते हैं १९ भीष्मजी कहते हैं कि, वह कुण्डधार उस मनुष्य के धन को अध्रुव अर्थात् अस्थिर जानके उस ब्राह्मण की अत्यन्त दुर्लभाबुद्धि को धर्म में परायण होना मांगता हुआ २० अर्थात् कुण्ड-धार ने कहा कि बड़े धन की राशि और पृथ्वी का राज्य इन दोनोंको भी मैं अपने भक्त के लिये नहीं मांगता परन्तु यह मांगताहूं कि, यह ब्राह्मण दृढ़धर्मका जानने-वाला होजाय २१ विद्या, तप, धन, शूरता, कुलीनता,

आरोग्यता, राज्य, स्वर्ग और मोक्ष यह सब धर्मही से प्राप्त होतेहैं २२ इस कारण बुद्धिमान् पुरुष लोभ, क्रोध, स्नेह, कुटिलता, कामना और भयसे भी कभी धर्म को नहीं त्यागे २३ जो धर्मको त्यागकर लोभसे धन की इच्छा करता है वह सुवर्ण की राशिको त्यागकर धूलिके ढेर के प्राप्त करने की इच्छा करता है २४ देवता, मुनि, दिव्य सर्प, गन्धर्व और यक्ष यह सब धर्मकेही धारण करनेवालेको पूजते हैं और धनकी इच्छा करनेवालेको और कामना की इच्छा करनेवाले को नहीं पूजते हैं२५ धर्मात्मा पुरुष द्रव्य से हीन होजाने पर भी स्वर्ग को जाताहै और द्रव्यवान् धर्महीन पुरुष नरक में प्राप्त होता है २६ उस विशेषप्राप्त होनेवाले धनसे क्या लाभ है जो दूसरोंसे नष्ट होजाता है किन्तु वह धर्मही श्रेष्ठहै जो मरेहुये मनुष्यके भी पीछे गमन करता है २७ इस हेतुसे वह ब्राह्मण सदा धर्म में होकर उस धर्म सेही उत्तमसिद्धिको प्राप्त होगा यह मेरा अनुग्रहहै २८ मणिभद्र बोला जब धर्मका फल राज्य और अनेक प्रकार के सुख होयँ तो वह पुरुष क्लेश से रहित होकर उन्हीं फलों को भोगे २९ भीष्मजी बोले कि; उस मणिभद्र से धन के लेने को बारम्बार भी कहागया परन्तु उसने धर्मही के लिये प्रार्थना करी तब सब देवता प्रसन्न होगये ३० मणिभद्र बोला हे कुण्डधार! तुझपर और उस तेरे भक्त ब्राह्मण पर सब देवता प्रसन्न हुये वह धर्मात्मा होगा और धर्मही से सिद्धिको पावेगा ३१ उस दुर्लभ वर को पाकर कुण्डधार प्रसन्न हुआ और उसकी आत्मा के

मोक्ष के उपाय को चिन्तवन करताभया ३२ फिर चिन्त-वन करते हुयेही उस ब्राह्मण को बुला कर धर्म की चिन्ता में स्थित होके पुराने वस्त्रोंको ग्रहणकर उस ब्राह्मणही के पास उनको फाड़ताभया ३३ तब वह द्विजोत्तम समीप में स्थितहुये उन पुराने वस्त्रों को देख परम सुखी होकर यह वचन बोला ३४ मेरे सुकृत को यही जानताहै दूसरा कोई नहीं जानता सत्य है इसने मेरे ऊपर अनुग्रह करनेके लिये यह चिन्तवन कियाहै ३५ इसीसे महादुःखदायी पापवाली इस धन की इच्छा को नष्ट करके मैं सुन्दर धर्मके सेवनके लिये वन में जाऊंगा ३६ जो पुरुष धर्म का अनादर करके द्रव्य के निमित्त क्लेश पाता है वह कल्पवृक्ष को त्यागकर वराटिका अर्थात् कौड़ी की ओर भागता है ३७ विद्वान्लोग ऐसा जानतेहुये भी दैवसे मोहित होकर क्लेश पाते हैं और जिसने पूर्व में धर्म किया है वह इस संसार में द्रव्य को पाता है ३८ और जिसने इस धर्म को प्रथम नहीं किया है वह द्रव्य की संपत्ति को कभी नहीं पाता है यह द्रव्य का न मिलना दैवका ही रचाहुआ है तो द्रव्य के हेतु परिश्रम करना वृथा है ३९ धन के परिश्रम में और वन के जाने में तुल्य ही क्लेश है इस हेतु से तपोवनमें ही जाना श्रेष्ठ और निर्दोष है इससे जब दैव का अत्यन्त कोप होकर सब यत्न और पुरुषार्थ व्यर्थ होजायँ तब दरिद्री पण्डितजन को वनके सिवाय अन्य कहां सुख है इस वास्ते उग्र तप करके उसी प्रकार आत्मा का साधन करूंगा ४०।४१ जिससे कि फिर कभी भी द्रव्य की

दरिद्रता को प्राप्त न होऊं त्रिलोकी में मनुष्य जिस स्वल्पसुख की प्रार्थना करते हैं वह सब तप करनेसे सिद्ध होजाता है परन्तु तप अत्यन्त दुर्लभ है क्योंकि तपहीसे देवता स्वर्ग में देवत्वभाव को प्राप्त हुये और ऋषि, मुनि परमसिद्धि को प्राप्त हुये ४२।४४ भीष्मजी बोले ऐसे कहकर वह द्विज पुराने वस्त्रों को ग्रहण कर वन में जाकर बड़े सुन्दर महादुष्कर तप को तपने लगा ४५ प्रथम तो फलोंका आहार करता रहा फिर पत्तोंका भोजन किया तदनन्तर पत्तों को भी त्यागके बहुत काल तक वायु का भक्षण किया ४६ वन में वन के फलों का आहार करतेहुये उसको बड़ा धर्म प्राप्त हुआ और कुण्डधार की प्रसन्नता से उसकी बुद्धि तत्त्वोंकी पहँचानने वाली होगई ४७ फिर उसने किसी समय ऐसा चिन्तवन किया कि जो कदाचित् मुझ पर प्रसन्न होकर कुण्डधार मुझे धन राज्यादि के भोगने का वर देगा तो दुःखका भोगनेवाला मैं कैसे जीऊंगा ४८ इसके अनन्तर बड़ा बुद्धिमान् वह कुण्डधार उसकी कृतज्ञता को जान के उसको देख बड़ा प्रसन्न होकर उसकी पूजा करता भया और राजाओं की महादुस्सह गति को दिखावता भया ४९।५० और कहने लगा हे विप्र! जिसके निमित्त तू पहले प्रार्थना करता था उस राजाओं की गतिको देख कि इससे अधिक कोई तीक्ष्ण और भारी कष्ट नहीं है ५१ अर्थात् उस कुण्डधार ने हज़ारों राजाओं को महा अपावन नरक में डूबा हुआ अपनी दिव्यदृष्टि से उस ब्राह्मण को दूर ही से दिखाया ५२

फिर कुण्डधार ने कहा कि हे विप्रर्षे! जो तुम मेरी पूजा करके ऐसीही गति को प्राप्त होते तो क्या अनुग्रह होता ५३ इसको तू बारम्बार देख यह जगत् आत्मा के न जाननेवालों सेही आवृत होरहा है और उनलोगों का स्वर्गद्वार भी सब ओरसे रुकरहा है ५४ जो यह सब संसार धर्ममेंही तत्पर होजाय तो स्वर्गही सदैव रहे और पृथ्वी शून्य होजाय ५५ इसके पीछे वह ब्राह्मण काम, क्रोध, लोभ, भय, मद, निद्रा, कुटिलता और आलस्य इन सबोंसे युक्त देहधारियों को देखता भया ५६ देवताओं ने भी इन्हीं काम क्रोधादिकों के द्वारा मनुष्यों के भय से स्वर्गादिक लोक रोक रक्खेहैं इसीसे प्राणियों के स्वर्ग होनेमें देवता विघ्न कियाकरते हैं ५७ भीष्मजी बोले तब वह ब्राह्मण कुण्डधार को साष्टाङ्ग दण्डवत् करनेलगा और बड़ी प्रसन्नता से कहने लगा कि, आपने मेरा बड़ा अनुग्रह किया ५८ भक्तों पै अनुग्रह करनेवाले स्वामीजन अपने भक्तों के लिये उन संपत्तियों को प्राप्त कर देते हैं जिनको कि वह भक्त अपने मनसे भी नहीं विचारते हैं ५९ और द्रव्य के लोभयुक्त हुये मैंने जो आपके गुणों में अवगुण कहा है उसको आप मेरी परमप्रीति जानके क्षमा करनेको योग्य हैं ६० यह सुनकर कुण्डधार ने कहा कि मैंने तेरे सब अपराध क्षमा किये ऐसा कहकर उस द्विजोत्तम से भुजाओं के द्वारा मिलकर वह वहीं अन्तर्धान होगया ६१ फिर उसकी और देवताओंकी प्रसन्नता से वह धर्म ज्ञान और तपों को प्राप्त होकर मट्टी, कङ्कड़, पत्थर इन सब

को समान जानता हुआ राग द्वेषादि से रहित ध्यान में परायण होके थोड़ेही काल में विष्णुलोक को प्राप्त होगया ६२। ६३ हे राजन्! जो तैंने मुझ से पूछा वह सब मैंने कहा कि मनुष्य धर्मसे ही द्रव्यों समेत सब कामनाओं को प्राप्त होताहै और परमगति को पाताहै ६४ हे भारत! वह ब्राह्मण धर्म के द्वारा परम गति को और अपूर्वसिद्धि को पाकर सुखपूर्वक सब लोकों में बिचरताहुआ उत्तमगति को प्राप्तभया ६५ हे महाराज! इस हेतु से धन से धर्मकोही अति उत्तम जान क्योंकि धर्म सेही द्रव्य मोक्ष और विष्णुलोक की भी प्राप्ति हो जाती है ६६ जो मनुष्य प्रातःकाल उठ कर इस पवित्र इतिहास को सुनाता है वह धर्म का भ-जनेवाला होकर मोक्ष को प्राप्त होता है ६७ समुद्र के जल के मध्य में सोवते हुये जिसकी नाभि से सहस्र पत्रवाला कमल उत्पन्न हुआ जिसमें सुवर्ण की पंख-ड़ियों से गौर कान्तिवाले ब्रह्मा उत्पन्न हुये वह प्रभु ब्रह्माजी तुम्हारी रक्षा करें वह और जलशायी भगवान् ब्रह्मा की रक्षा करें और ब्रह्मा विष्णु यह दोनों तुम्हारी रक्षा करें॥ ६८॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायांकुण्डधारोपाख्यानं नामचतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

पन्द्रहवा अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि; हे पितामह! अनेक आरम्भों की चेष्टा करता हुआ भी यह पुरुष जो धन को

नहीं पावे तो तृष्णा से युक्त हुआ पुरुष किस काम को करके सुखको प्राप्तकरे १ भीष्मजी बोले हे भारत! जिस पुरुष का सबमें समान भाव अनायास अर्थात् विना परिश्रम किये होय और सत्यवचन दुःख से रहितता और शास्त्र के जानने की इच्छा भी होय वह मनुष्य सदैव सुखी रहता है २ वृद्धलोग शान्ति के लिये इन पांचों नियमों को कहा करते हैं और स्वर्ग मोक्ष भी उत्तम सुखवाले हैं ३ जिसके आधीन यह पांचों पद हैं उसको यह सब चराचर लोक ही उत्तम हैं और जिसकी विष्णु भगवान् में स्थिर बुद्धि है उसको विष्णु का लोक प्राप्त होता है यहां एक प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिसमें कि दुःखों से रहित मङ्की ब्राह्मण के गीत कहे हैं ४। ५ वह मङ्की बारम्बार धन की इच्छा करता हुआ धनकी चेष्टा से रहित होगया फिर कुछ धन प्राप्त करके बड़ी तरुण अवस्थावाले दो बछड़ों को मोल लिया ६ फिर अपने वशीभूत कियेहुये वह दोनों बछड़े एक स्थान पर गलजोट हुये और बैठे हुये ऊंट को मध्य में करके अर्थात् ऊंट के दोनों ओर से एकबार ही भागे ७ फिर वह ऊंट शीघ्रही उठखड़ा हुआ तब वह दोनों बछड़े उस ऊंट की दोनों ओर को लटकते भये और वह ऊंट बड़े वेगसे ऐसे चलताभया जैसे कि हाथकी ताली से काक शीघ्रता से उड़ता है ८ तब अत्यन्त बलवाले उष्ट्रसे वह दोनों बछड़े मरनेलगे फिर मरतेहुये उन दोनों बछड़ों को वह मङ्की ब्राह्मण देखके यह वचन बोला ९ प्रतिदिन उद्योग करनेवाले बड़े

बुद्धिमान् चतुर पुरुषको भी भाग्य में लिखे हुये विना कहीं भी धन की प्राप्ति नहीं होसक्ती है १० नित्य पुरुषार्थ में युक्त होनेवाला और युक्त व्यवहार में स्थित होनेवाला भी मरजाता है इस दैवके कियेहुये विध्वंस को देखो ११ एक प्रकार से चिन्तवन कियेहुये प्रयोजन दूसरेही प्रकार से होजातेहैं इसमें भी दैवकाही प्रभाव है १२ जो सज्जन इन द्रव्यादिक धनों को त्याग देतेहैं वह दुष्कर कर्म को व्यतीत करदेतेहैं और हम इन बुरे कर्मोंके भी त्यागने को समर्थ नहीं हैं १३ मेरे कियेहुये उद्योग निष्फल होजाते हैं यह मेरी ऐसी रचना महाक्लेशकारी है १४ और भाग्य के विना बलवान् पुरुषको भी धनकी प्राप्ति नहीं होसक्ती है और भाग्य से संयुक्त बालक, स्त्री, वृद्ध और रोगी आदिकोंको भी धन की प्राप्ति होती है १५ बालक, स्त्री, वृद्ध और रोगी इन सबका ऐश्वर्य होजाने में क्या पुरुषार्थ है यह संसार अज्ञान से क्लेश पाता है और पुण्यरूपी ज्ञान से सब कुछ प्राप्त होता है १६ जब कि मनुष्य इस संसार में बलवीर्य और पुरुषार्थ से भी अलभ्य लाभ नहीं करसक्ता है वहां क्लेश क्या करना चाहिये १७ द्रव्य के लिये जिन २ कर्मों को बड़े कृपण दरिद्री के समान करता है उन कर्मों को जो धर्म के ही निमित्त करे तो काहे को दुःख होय १८ अर्थ द्रव्यों के इकट्ठे करने में दुःख है द्रव्यों की रक्षा में दुःख है उनके नाश में दुःख है और खर्च करने में भी दुःख है ऐसे कष्ट के आश्रय होनेवाले द्रव्यों को धिक्कार है १९ एक पुरुष तो

द्रव्यों का पति है दूसरा सब द्रव्यों की इच्छा से रहित है उन दोनों में उस द्रव्यों के पति से वह द्रव्यों की इच्छा से रहित होनेवाला पुरुष सुखी है २० इस कारण धन के संकल्प को त्यागकर जो कुछ लाभ होजाय उसी में प्रसन्न रहना चाहिये और मैं अब द्रव्य के लोभ से फिर आत्मा को क्लेश न दूंगा २१ मैं इस प्रकार से अपने मन को समाधान करके उत्तमधर्म को करूंगा कि जिससे ऐसे क्लेश के भजनेवाले जन्म को फिर नहीं प्राप्त होजाऊं २२ अहो पिता के घर से वन में चलेजानेवाले संगों से मुक्त होनेवाले शुकदेवजी ने सब प्रकार से कहा है कि जो पुरुष सब कामनाओं की इच्छा करे और जो इन सबकी इच्छा भी न करे इन दोनों में सब कामनाओं का त्यागनेवाला विशेष और उत्तम है २३। २४ जो पुरुष अपने सुख के पूर्ण करनेके लिये कामनाओं को नहीं त्यागता है वह कामनाओं के आश्रयभूत मनुष्य कामना से हीन होकर नष्ट होजाता है २५ जो तृष्णा और कामनाओं से रहित होनेवालों को सुख है उससे अन्य त्रिलोकी में दूसरा सुख नहीं है २६ इस भावितात्मा महर्षि शुकदेवजीके तत्त्वमत को जानके सब दोषों के मूलकारणरूपी काम को मैं सबप्रकार से त्यागूंगा २७ संसार में यह काम ही बन्धन है दूसरा बन्धन नहीं है जो काम के बन्धन से छुटा हुआहै वह फिर नहीं जन्म लेता है २८ हे काम! मैं तेरे मूलको जानताहूं निश्चय करके तू संकल्प से उत्पन्न होताहै सो मैं किसी बात का संकल्पही न करूंगा तब निर्मूल होकर तू नहीं रहैगा २९ तू सुलभ

और दुर्लभ इन दोनों को नहीं जानता है तू पाताल के समान कभी पूर्ण न होनेवाले के समान होकर मुझको सदैव क्लेश देता है ३० तेरे विजय करने से सब कुछ विजय होसक्ता है ऐसा बुद्धिमान् लोग कहते हैं इस हेतु से हे आत्मा के दुर्जय शत्रु! मैं तुझको जीतूंगा ३१ यह मैंने बहुत काल से जाना है कि, आशासे रहित रहना परमसुख है अब मैं इन तरुण अवस्थावाले बछड़ों के नाश होनेसे संतान से रहित होकर इन्द्रियों को जीतूंगा और आनन्द से शयन करूंगा ३२ अपराधी पर भी क्षमा करूंगा हिंसा करनेवाले की भी हिंसा न करूंगा और द्वेषपूर्वक भी वचन कहेगा उसके द्वेष को क्षमा करके उससे प्रिय वचन बोलूंगा ३३ और सन्तोष, कोमलता, क्षान्ति, तप, सत्य, धारणा, क्षमा और सब जीवों की दया इन सबके मैं आश्रय रहूंगा ३४ संसार में जो कामना का सुख है और जो अन्य महासुख हैं सो यह सब तृष्णा क्षयनाम सुखकी सोलहवीं कला के भी समान नहीं हैं ३५ हे तृष्णे! तू इन दोनों लोकों के सुख की परिपन्थिनी अर्थात् ठगनी है जिन पुरुषों को तू निर्माल्य के समान त्याग देती है वह जन अत्यन्त सुखी हैं ३६ मैं काम, क्रोध, भय, द्रोह, लोभ, मत्सर अर्थात् पराईद्रव्य संपत्ति का नहीं सहना इन्होंको त्याग कर ऐसे इस ब्रह्म में प्रविष्ट होजाऊंगा जैसे कि ग्रीष्म ऋतु में मनुष्य शीतल तड़ाग में प्रविष्ट होजाताहै ३७ मनुष्य त्याग किये विना सुख को नहीं प्राप्त होता है त्यागहीके विना परमपदको भी नहीं प्राप्त होताहै न कभी

निर्भय होकर सोता है परन्तु सब का त्याग करने से परम सुखी होता है ३८ जबतक यह ज्ञान और ध्यान हृदय में नष्ट नहीं होरहाहै और हृदयमेंही अज्ञान की ग्रन्थियों का विस्तार तभीतक मन को आनन्द नहींहो सक्ता है ३९ सब कामनाओं को त्यागके मनको हृदयमें प्रवेश करता हुआ मैं उस परम ब्रह्मको प्राप्तहूंगा जिस की कि इच्छा मुमुक्षुजन किया करते हैं ४० आत्मा के संगहीं उत्पन्न होनेवाले अति उग्रशत्रु काम को जीत के उसी परम ब्रह्म को प्राप्त होजाऊंगा जो कि सदैव सुख में स्थित है ४१ भीष्मजी बोले कि; इस प्रकार उन तरुण बछड़ों के नाश होने में वह मङ्की ब्राह्मण मोक्षमार्ग में स्थित होकर सब कामनाओं को त्याग परमब्रह्म को प्राप्त होता भया ४२ जो पुरुष हृदय में स्थित होनेवाले सब कामों को और इच्छा को त्याग देता है वह निस्सन्देह मोक्ष को प्राप्त होता है ४३ और जैसे चारों ओर से पूर्ण होते हुये अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्रको जल प्राप्त होतेहैं उसी प्रकार ऐसे पुरुषों को भी सब काम प्राप्त होते हैं और वह पुरुष समुद्र के समान शान्ति को प्राप्त होकर अन्यकामों की इच्छा भी नहीं करता है और कामकी इच्छा करनेवाला कभी शान्ति को नहीं प्राप्त होता है ४४ विगत होगई हैं द्रव्यों की संगति जिसकी ऐसा वह मङ्की ब्राह्मण अत्यन्त दुःख से संचित किये हुये तरुण बछड़ों के नाश को चिन्तवन करके विषयरूपी इच्छाओं से निस्पृह होकर इस धर्म को चलावता भया ४५ फिर अपने

धर्म में बुद्धि के साधन को संचितकर पूर्वजन्म के उत्तम धर्मों के द्वारा श्रेष्ठ धर्म कर्मों को करके विष्णु के परम पद को प्राप्त होगया अहो महात्मा पुरुषों को क्या दुर्लभ है ॥ ४६ ॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायांमङ्किगीतंनाम
पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

सोलहवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि; हे परन्तप, पितामह ! व्रतों में कौनसा व्रत धर्मों में कौनसा धर्म और ज्ञान योगों में कौनसा ज्ञान श्रेष्ठ है ? यह आप मुझे समझाइये १ भीष्मजी बोले-जो बुद्धि दूसरे हज़ारों वर्षों में सतो-गुण से संयुक्त होती है उस बुद्धि करके मनुष्य जब अपने धर्म में स्थित होते हैं तब ब्रह्म को प्राप्त होते हैं २ हमारे पूर्वजों का भी पूर्वज नहुष नाम राजा जितेन्द्रिय और शास्त्रज्ञ होकर भी दान्तबोध्य ऋषि से पूछता था ऐसा हम सुनते हैं ३ युधिष्ठिर ने कहा कि; हे तात ! उस बड़े राजा ने कौनसी बात को पूछा और ऋषि ने क्या २ कहा और वह राजा विरक्त ज्ञान को कैसे प्राप्त हुआ यह सब आप वर्णन कीजिये ४ भीष्म जी बोले कि; दान्तबोध्य ऋषि से जैसे राजा नहुष ने पूछा है उसका इतिहास अब मैं तेरे आगे वर्णन करता हूं ५ नहुष ने पूछा कि; हे तपोधन ! आप किस बुद्धि को प्राप्त होकर मुक्तहुये के समान लोक में बिचरते हो और सब कामनाओं की इच्छा से रहित हो वह सब

मुझ से कृपा करके कहिये ६ बोध्य ऋषि ने कहा कि; पिङ्गला वेश्या, पक्षी, चील्ह, सर्प, भ्रमर, इषुकार अर्थात् बाणों का बनानेवाला और कुमारी कन्या ये छः मेरे गुरु हैं ७ संकेतस्थान में पिङ्गला वेश्या जब पति की आशा से रहित हुई तब बड़े कष्ट को प्राप्त हुई फिर अपनी बुद्धि को शान्त करके ८ यह वचन कहनेलगी कि; आशा[1] परम दुःख है और निराशा परम सुख है अब आशा का निरादर करके पिङ्गला वेश्या सुखसे सोवती है ९ और मांस को लियेहुये एक चील्ह को दूसरी निर्मांसवाली चील्ह ने मारा परन्तु जब उसने मांस को गेरदिया तब वह सुखको प्राप्त हुई १० गृह का आरम्भ करना दुःख के निमित्त है कभी सुख के लिये नहीं है इसी हेतुसे सर्प अन्य के बनाये हुये बिलमें प्रवेश करके सुख को प्राप्त होता है ११ और जैसे सब पुष्पों के सार रस को भौंरा ग्रहण करलेता है वैसेही बुद्धिमान् जन बड़े २ शास्त्रों को ग्रहण करके उनके सारांश को ग्रहण करलेता है १२ कोई बाण का बनानेवाला मनुष्य बाणों के ही बनाने में प्रवृत्त चित्त होनेसे समीप में जातेहुये राजा को नहीं जानता भया १३ बहुतसे लोग तो नित्य कलह करतेहैं और दोमनुष्यों की अच्छेप्रकारसे वार्त्तालाप होती है इस हेतु से सदैव ऐसे अकेलाही विचरना चाहिये जैसे कि कुमारी कन्या का कङ्कण होता है १४ इस रीति से इन सब की चेष्टा के अनुसार समाहित होकर ठहरता हुआ मैं सब कामनाओं को त्याग

१ "आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्" (इति भागवते)॥

के मुक्तहुये के समान बिचरता हूं १५ भीष्मजी बोले कि; वह ब्राह्मण उस राजा से इस प्रकार की बातें कह-कर अपने आश्रमको चलागया और राजा भी अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने पुर में प्रवेश करताभया १६ हे राजन् ! तुमभी पुरुषार्थ के साधन को प्राप्त होजाओ क्योंकि सब मनुष्य अपने बड़े और गुरुजनों के किये हुये कर्मोंके देखने में युक्त होते हैं जैसे कि बोध्यऋषि उक्त प्रकार से सुखपूर्वक बिचरता हुआ सनातन ब्रह्म-पद को प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायांबोध्यनहुषसंवादोनाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सत्रहवां अध्याय ॥

वैशंपायन बोले कि; शरशय्या पर प्राप्त कुरुवंश के वृद्ध पितामह भीष्मजी को धर्मात्मा युधिष्ठिर साष्टाङ्ग प्रणाम करके फिर यह पूछता भया १ हे तात ! सब लाभों में कौनसा लाभ उत्तम है इस मेरे सन्देह को आप अच्छी रीति से वर्णन करके समझाइये २ भीष्म जी बोले कि; बुद्धिलाभ के सिवाय इस संसार में दूसरा कोई लाभ नहीं है क्योंकि बुद्धिमान् पुरुष इसलोक और परलोक दोनों में सुख को प्राप्त होता है ३ राजा बलि अपने ऐश्वर्य नष्ट होने पीछे बुद्धि से ही जन्म मर-णादि से निवृत्त हुआ और प्रह्लाद व मङ्की आदिकमुनि भी बुद्धिहीसे निवृत्तको प्राप्त होते भये इस हेतुसे बुद्धि से बढ़कर कोई नहीं है ४ यहां एक प्राचीन इतिहास को

कहताहूं जिसमें कि इन्द्र और कश्यप ब्राह्मण का संवाद है ५ कोई वैश्य धनके गर्व से मार्ग में आते हुये कश्यप नाम ब्राह्मण को रथ से नीचे गिरावताभया ६ तब वह ब्राह्मण सिसकताहुआ दुःखसे पीड़ित सब वस्तुओं को त्याग कर यह वचन बोला कि; मैं अब मरूंगा क्योंकि धन हीन होकर मेरे जीवन से क्या प्रयोजन है ७ फिर मृत्यु का संकल्प करनेवाले, दीनमनवाले उस कश्यप ब्राह्मण को शृगाल के रूप को धारण करके इन्द्र नें बोध कराया ८ अर्थात् शृगाल ने कहा कि, जो तेरा चित्त अपने भी हितके लिये प्रतिकूल है तो दूसरे के प्रतिकूल होनेसे तू क्यों संताप मानता है ९ और जो मन से तू अपने लिये प्रतिकूल वस्तुओं की इच्छा नहीं करता है तो अन्यों के प्रतिकूल से अपने मन को निवृत्त कर १० निश्चय करके जिसने जैसा पूर्व में किया है वह उसीको यहां भोगता है हे अज्ञ ! तू अपने किये हुयेही दुःख को प्राप्त होकर अन्य के किये हुये से क्या पीड़ित होता है ११ बारम्बार दुःखों को करके वृथा पीड़ित होकर क्यों संताप को प्राप्त होता है हे मूढ़ ! सब दुःखों की औषध धर्महै उसको तू क्यों नहीं करताहै १२ और जो धर्म करने को समर्थ नहींहै वह मुझ सरीके जीव शोच करते हैं हे विप्र ! तूतो धर्म की क्रिया में समर्थ है तो किसलिये मोह को प्राप्त होरहाहै १३ हे ब्रह्मन् ! मनुष्य की योनि अनेक प्रकार के असंख्य पुण्यों से प्राप्त होतीहै और मनुष्यों में भी ब्राह्मण और उन में भी पण्डित होना महादुर्लभ है १४ सो तुम

उस उत्तम दुर्लभ विद्वत्ता को प्राप्त होकर अपने को निर्धन कैसे कहते हो और सबवस्तुओंसे विरक्त होके मरने की इच्छा क्यों करतेहो १५ नीचे २ को देखते हुये किसकी उपमा नहीं होसक्ती है और ऊपर २ देखने से सबही दरिद्री हैं १६ हे ब्राह्मण! धन की प्रार्थना विषयी लोग करते हैं और निश्चय बुद्धिवाले महज्जन धन और विषय दोनों को त्याग देतेहैं १७ दुःखों की धारण करनेवाली धन की इच्छा को श्रेष्ठ पुरुष निन्दा करते हैं जो संतोषयुक्त होकर अपने धर्म में स्थित होता है वह स्वर्ग में अत्यन्त आनन्द को पाता है १८ हे ब्रह्मन्! पुरुष धन को अथवा धन पुरुष को इन दोनों में से एक को दूसरा अवश्य त्यागता है इस हेतु से धन की इच्छा से कौनसा लाभ है १९ असंतोषी जन धनी पुरुषों की और धन की इच्छा करते हैं और जिनके कि संतोष से शोक नष्ट होगये हैं उनको धन से और धन के देने वालों से क्या प्रयोजन है २० धन से चित्त के हटाने वाले और शान्त मन वालों को जो सुख है वह सुख इधर उधर दौड़ने वाले धन के लोभी पुरुषों को कहां होसक्ता है २१ जो समुद्र की मर्यादावाली गौ अश्वादि जीवों से युक्त इस सम्पूर्ण पृथ्वी को भी प्राप्त होजाता है तब भी धन की इच्छा करने वाला पुरुष धन से तृप्त नहीं होता है सो ऐसे धन के लाभ में क्या सुख है २२ यह मेरा मित्र है यह मेरा सुन्दर पुत्र है और यह मेरी माता है ऐसे कहते हुये पुरुष इन सबको त्याग कर धर्मराज

के बड़े भयकारी उग्र मन्दिर में प्राप्त होते हैं २३ धन के विना धर्म होजाता है परन्तु धर्म के विना धन नहीं होता इस कारण धर्म के आधीन होनेवाले धन की इच्छा को त्याग २४ धन में जो इच्छा है सो बड़ा भारी दुःख है और धन के प्राप्त होने में उससे भी अधिक दुःख है और द्रव्यों में स्नेह से युक्त होने वाला पुरुष द्रव्यों के वियोग में अत्यन्त ही दुःखी होता है २५ धनके इकट्ठे करने में समर्थ पुरुष सुख को नहीं प्राप्त होता है इसलिये द्रव्योंके सब प्रकार के संचय केवल मन को मोहकेही बढ़ाने वाले हैं २६ राजा जल अग्नि चोर और स्वजन सम्बन्धीलोग इन सबसे धनवान् पुरुष को सदैव ऐसा भय रहताहै जैसा कि प्राणधारियोंको मृत्युसे भय होता है २७ जैसे जल में मत्स्यों का मांस भक्षण पृथ्वीपर पशुओं का और आकाश में पक्षियों का मांस भक्षण होताहै वैसेही धनवान् पुरुष का सबजगह भक्षण किया जाता है २८ दरिद्री पुरुष धन की इच्छा करता है धनवान् राज्य की राजा सब पृथ्वीपति होनेकी और पृथ्वीपति भी चक्रवर्ती होनेकी इच्छा करता है २९ और चक्रवर्ती इन्द्रपद लेनेकी इच्छा करता है इन्द्रपद से ब्रह्मलोक की इच्छा और उससेभी अधिक बारम्बार इच्छा करता है ३० इस प्रकार करके तृष्णा का अन्त नहीं है प्रथम कोई तृष्णा से निवृत्त नहीं हुआ है इन सब हेतुओंसे इस दुष्ट अन्तवाली दुष्कर धन की इच्छारूपी तृष्णा को त्याग ३१ सुन्दर २ बहुत से अनेक प्रकारके

धनों से इच्छा ऐसे शान्त नहीं होतीहै जैसे कि समिध् के काष्ठ से अग्नि नहीं शान्त होती है ३२ जैसे स्वप्न में प्राप्तहुये लाभ क्षणमात्रकेही सुख देनेवाले होते हैं हे ब्राह्मण ! इसी प्रकार मनुष्यों की भी धनसंपत्ति होती है ३३ धन की संपत्ति वायु से कम्पायमान जल की तरङ्गों के समान क्षणभर में नष्ट होनेवालीहै उस धन में विष की सुगन्धिवाले वृक्षों की छाया में वैठनेके सदृश कौन प्राप्त होवे ३४ बुद्धिमान् जन कृपणता दूसरेकी संपत्ति का न सहना, दम्भ, क्रोध, तृष्णा, भय, मद इन सबको देहधारी मनुष्यों के धन से उत्पन्न होनेवाले दुःख वताते हैं ३५ सो इस प्रकार के दुःखवाले और पण्डितों से निन्दित ऐसे धनके लिये तुम अपने प्राण त्यागनेको कैसे समर्थ होतेहो ३६ पण्डितजन नीच जाति महापापी पुरुषको भी अपने प्राणत्यागने की निन्दा करते हैं और ब्रह्मवादी पुरुष को तो क्या कह सक्ते हैं ३७ हे दुर्बुद्धे ! सुख दुःखों की प्रबोध करनेवाली अज्ञानरूपी निद्रा में तू वहुतकाल से सोताहै सो अब जागकर अपना वोध कर ३८ हे ब्रह्मन् ! जो ब्राह्मणपने को प्राप्त होकर पृथ्वी पर आकर अनेकतपों के द्वारा संसार से अपनी आत्मा का उद्धार नहीं करता है वह ठगा हुआ है ३९ और इस संसार में उन्हीं की कृतार्थता है जिनके कि ईश्वर ने हाथ वनाये हैं हाथों वालेसेही हमारीभी वैसेही इच्छा है जैसी कि आपकी धन के निमित्त है ४० हे ब्रह्मन् ! हाथों के नहीं होनेसे हम कांटों को नहीं निकाल सक्ते और देह को पीड़ादेने

वाले जीवों के भी निषेध करने को असमर्थ हैं ४१ हे द्विज! ऐसे विना हाथ के भी होने पर हम अपने प्राणों के त्यागने की इच्छा नहीं करते इससे अधिक पापयुक्त दूसरी कोई योनि नहीं है इस हेतु से मैं शृगालयोनि, क्रिमियोनि, मूसायोनि, सर्प योनि और मेंडक आदिक अनेक पापयोनियों में नहीं होना चाहताहूं ४२। ४३ हे कश्यप! अन्धा, बहिरा, टेढ़ा, अनाथ, रोगी और नीच इन सब बातों से तू रहित होकर बड़ा धन्य है ४४ सो इसी परमलाभ होने से तू प्रसन्न होनेको योग्य है क्योंकि तू सब वर्णों में भी उत्तम ब्राह्मणवर्ण है ४५ हे ब्रह्मन्! जो मैं कहताहूं उसको तू सुनताहै और श्रद्धासे धारण करताहै तो अपने धर्म के लिये युक्त होकर आत्मा के त्यागने को योग्य नहीं है ४६ धर्म के आचरण करने वाले पुरुष की वृत्ति जो लोप को प्राप्त होजाय तो शिलोञ्छ वृत्ति करनेमें क्या दोष है? शाकों के ही भोजन करो क्योंकि शिलोञ्छवृत्ति से जीवनेवाले पुरुष का जो धर्म नष्ट नहीं होताहै वही उसका धनाढ्यपना मानना चाहिये इसके सिवाय कोई भी धर्म में चित्तवाला मनुष्य नहीं है ४७। ४८ और स्वाध्याय, अग्निसंस्कार, तप, दम, आस्तिकता और किसी के गुणों में अवगुण नहीं बताना क्षमा करना इन सबका पालन कर ४९ असत्य वचन, हिंसा, असंतोष, अकोमलता, नास्तिकपना, अभिमान, ईर्षा और विषयादिक इन सबको अच्छे प्रकार से त्याग ५० जे विषयादिक में आसक्त पुरुष हैं उनको

धनही अभिमत है और विषय से निवृत्त इच्छावाले पण्डितजनों को धन से कुछ प्रयोजन नहीं है ५१ विषयात्मा पुरुष विषयों के त्यागने को नहीं समर्थ होसक्ते हैं इस हेतुसे उनके भी संग को त्याग क्योंकि अन्धे पुरुष से तिमिरक अर्थात् थोड़ाभी देखनेवाला श्रेष्ठ है ५२ और जो संग नहीं करता है उसको निश्चय करके कुछ भी काम नहीं उत्पन्न होताहै और दर्शन, स्पर्शन, ध्यान और श्रवणही से काम उत्पन्न होता है ५३ और तू वारुणी मदिरा का और पक्षियों के अण्डों का क्यों नहीं स्मरण करता ? इन दोनों से अधिक कोई भोजन नहीं होता ५४ क्योंकि जो कुछ भक्ष्य भोज्य पदार्थ तुझसे पृथक् वर्त्तमान हैं और उनका प्रथम कभी भोजन नहीं करनेसे तू कभी उनको स्मरण नहीं करता अर्थात् वह पदार्थ तेरे स्मरण में कभी नहीं आसक्ते हैं ५५ दर्शन न करना न सूंघना न ध्यान करना और न श्रवण करना इन नियमों से पुरुष बड़ेकल्याण को प्राप्त होता है ५६ और यह पुरुष जैसे २ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इनसे वैराग्य अर्थात् त्याग को प्राप्त होता है वैसेही वैसे शान्ति को भी प्राप्त होता है ५७ और जिस २ से निवृत्त होता है उसी २ से छुटजाता है सब जगह की निवृत्तता से परमसुख को प्राप्त होता है ५८ इस हेतु से तू विष से दग्ध हुये दुस्त्यज विषयों को त्यागकर इन्द्रियों के समूह को ऐसे हृदयमें रोक जैसे कि पिंजरे में पक्षियों को रोकते हैं ५९ इन्द्रियों के रोकने से वड़ा तृप्त होकर लोकमें विस्तृत हुये आत्माको

और लोक को अपने आत्माही में देखता है ६० इस प्रकार अपनी बुद्धि को निश्चल ब्रह्म में रोककर वर्तमान होजा ६१ फिर शीघ्रही मोक्ष को पावेगा और ऐसे शान्त होगा जैसे कि इन्धनसे रहित अग्नि होजाती है ६२ और जो तू अद्वैत परमात्मा में प्राप्त होनेको समर्थ नहीं है तो साकार भगवान् को आत्मा की रुचिके अनुसार प्राप्त हो ६३ जो पुरुष जगत् की योनि सब लोकों के महेश्वर नारायण को मनसे चिन्तवन करते हैं उनको भी किसी प्रकारका भय नहीं रहताहै ६४ भीष्म जी बोले कि; वह ब्राह्मण इस सब वृत्तान्त को सुन के उस शृगाल से बड़ा विस्मित होकर यह वचन बोला हे महामते ! तुम विष्णु इन्द्र इन में से कौन देव हो ६५ शृगाल बोला मैं इन्द्र हूं तेरे अनुग्रह के लिये यहां प्राप्त हुआ हूं सो तू लोभ को त्यागके उठ खड़ा हो और अतिउत्तम धर्म का आचरण कर ६६ भीष्मजी बोले कि, वह इन्द्र इस प्रकार से उस ब्राह्मण को शिक्षा देकर अपने स्वर्ग को चलेगये और वह कश्यप ब्राह्मण उस के कहनेको यथार्थरीति से धारण करके मुक्ति को प्राप्त हुआ ६७ इस कारण से सब लाभों से बुद्धि का लाभ उत्तम कहा है बुद्धिमान् पुरुष इसलोक और परलोक दोनों में सुखको प्राप्त होता है ६८ दृष्टि से दीखनेवाले इस जगत् को प्रज्ञामूल अर्थात् बुद्धि की जड़वाला देखकर फिर दोनों लोकों की सिद्धिके निमित्त बुद्धिको विशेष करके धारण कर ६९ सनातन निर्गुण निरञ्जन अर्थात् निर्लेप और त्रिभुवन के कर्मसाक्षी राजाओं में

उत्तम लोकों के नाथ ऐसे जनार्दन भगवान् जी जरा, जन्म, मरण, व्यसन और भय के भी नाशकरनेवाले हैं उनको हम नमस्कार करते हैं ७० जो पुरुष प्रति दिन इस इन्द्र और कश्यप के संवाद को सुनेगा वह इन्द्र के स्थान के समान उत्तम स्थान को प्राप्त होकर देवताओं समेत आनन्द करेगा ॥ ७१ ॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायामिन्द्रकश्यपसंवादोनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अठारहवां अध्याय ॥

युधिष्ठिरबोले; हे पितामह ! इस संसार में सबजीवों का भयकारी काल व्यतीत हुआजाता है इसमें अपने परमकल्याण के लिये क्या करना उचित है ? यह मुझे समझाइये १ भीष्मजी बोले हे युधिष्ठिर ! सबजीवों में दया इन्द्रियों का रोकना सर्वत्र समबुद्धि रखनी यही परम कल्याण कहाता है २ यहां उस प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिसमें पिता और पुत्र का संवाद है उस को हे युधिष्ठिर ! तुम मन लगाकर सुनो ३ किसी ब्राह्मण का मेधावीनाम पुत्र था वह बुद्धिमान् मेधावी पुत्र स्वाध्याय पूजनादि करने वाले अपने पितासे बोला ४ कि हे पिता ! शुभकी इच्छा करने वाला धीर पुरुष कौनसा काम करे क्योंकि मनुष्यों की आयु बड़ी शीघ्रता से क्षीण होती चली जाती है सो आप कृपा करके उस परम धर्म को बताओ जिस को कि मैं करके सिद्धि को पाऊं ५ पिता बोला हे पुत्र ! प्रथम

ब्रह्मचर्य से वेदों को पढ़ फिर पितरों के पवित्र करने के निमित्त पुत्रों की इच्छा कर इसके पीछे अग्नियों का पूजनकर ध्यानपूर्वक विधिसे यज्ञों का पूजन करता हुआ वन में प्रवेश करेगा तो मुनि होजायगा ६ पुत्र बोला हे पिता! मृत्यु से हत जराव्याधि से ग्रसित ऐसे इस लोक में क्या तुम स्वस्थ के समान कहरहेहो ७ सब उपायों करके मरनेके योग्य पुरुष की प्रतिक्रिया अर्थात् कुछ उपाय नहीं है सो मैं जाल में फँसे हुये के समान बहुत कालतक कैसे देखूंगा ८ रात्रि के व्यतीत होने से आयु अति अल्प होती है वहां अल्पजल में मत्स्य के समान कौनपुरुष धारणा को प्राप्त होताहै ९ क्योंकि हे तात! देहधारियों की आयु का दीर्घत्व नहीं है सूर्य के रथ के वेग से क्षण २ में आयु क्षीण होती है १० यह शरीर भी क्षण २ के प्रतिक्षीण होता हुआ ऐसे लब्धहै जैसे कि जल में स्थित हुआ कच्चा घड़ा बिखराजाता है ११ पीपलके चलायमान पत्तेके अग्रभागके समान नीले जल के समान अस्थिर इस जीवन में जिसकी आशा स्थिर है उसके समान कोई मूर्ख नहीं है १२ काल सदैव जन्मेही हुये को ढूंढ़ताहै और देहधारियों को जरा अवस्था ढूंढ़ती है इन दोनोंसे संयुक्त हुये स्थावर और जङ्गमजीव हैं १३ कौन शरीरधारी जीव संमोहित जगत् को देखकर लोक में प्राप्त हुई द्रव्यों में विश्वास करता है १४ दूरवर्ती विनाशको भी भावी अर्थात् होतव्यता के समीपही जानो यही जो कालहै वह प्रथम अनागत था अर्थात् नहीं आया था यह जानना चाहिये १५

सब जीवमात्रों के समीपही यह मृत्यु प्रतिदिन ऐसे प्राप्त रहती है जैसे कि मारने के योग्य बध्यपुरुष के पद २ पर मृत्यु प्राप्त होती है १६ उठ उठकर बोधकरना चाहिये कि बड़ाभारी भय उपस्थितहै मरण व्याधि दुःख इनमें से कौनसा होगा १७ किसीकोभी मैं इसलोक में ऐसा नहीं देखताहूं जो जन्म लेकर नहीं मरेगा ऐसा ज्ञान से बोध करके इस जीव को कैसे स्वस्थ होके स्थित होना चाहिये १८ कल्याण की प्राप्ति में व्याधि को और नियम को देखनाही चाहिये जब नियोग शास्त्र हो तभी कल्याण का आचरण करे १९ इससे हे पिता! निश्चय करके बालकही को धर्म का आचरण करना चाहिये क्योंकि जीवना ऐसे अनित्य और भयकारी है जैसे कि पकेहुये फलों को प्रतिदिन गिरनेका भय रहता है २० युवाअवस्था की अपेक्षा से बाल्यावस्था है और वृद्धा-वस्था की अपेक्षा से युवा अथवा तरुण है तो मृत्यु की गोद में बैठाहुआ वृद्धपुरुष किसकी अपेक्षा करताहै २१ इससे उचित है कि उस अवस्था में पाप को दूर करता हुआ अपनी आत्मा की पालना करे जैसे कि वर्षाऋतु में जीर्णकाष्ठ रक्खा हुआ भी गलजाता है वैसेही वृद्धा-वस्था में भी यह पुरुष जीर्ण होजाता है २२ जैसे कि चलते हुये नदियों के स्रोत बन्द नहीं होते वैसेही रात्रि दिन भी मनुष्यों की आयु को नित्य २ ग्रहण करते हुये भी निवृत्त नहीं होते २३ जैसे कि दिन, रात्रि, महीने, क्षण, काष्ठा, कला इत्यादि समय के अंशों से काल निवृत्त होता है और क़र्ज़ा देने के पीछे

निवृत्त होता है २४ जैसे कठिन स्थूल द्रव्य जीर्णता से भिन्न २ होकर नष्ट होजाती है तैसेही काल के वश में प्राप्त हुये मनुष्य भी नष्ट होजाते हैं २५ विवशहुये सब देहधारीजीव काल के वशीभूत होते हैं और विषय में आसक्तहुये पुरुष शान्ति को नहीं प्राप्त होते हैं २६ जिस रात्रि के व्यतीत होनेमें जीव कुछभी शुभ कर्म का आचरण नहीं करता है उसीदिन को बुद्धिमान् लोग हननहुये के समान जानते हैं २७ और भार्या ऐश्वर्य पुत्र प्यारे बन्धु और मित्र इन सबमें मेरा मेरा कहतेहुये पुरुष को मृत्यु प्राप्त होजाती है २८ मृत्यु रोग जरा और शोक इन सबसे क्षण क्षण में ग्रसित होताहुआ यह पुरुष अपनेको अजर अमर की समान जानताहुआ निर्भय होकर कैसे स्थिर रहता है २९ और मैंने अभी देखाथा हाय वह कैसे मरगया ऐसे मृत्यु से हनन कियेहुये पुरुषों का प्रलाप प्रतिदिन सुनाजाता है ३० और कौन जानताहै कि कब किसका काल होगा इस हेतुसे तरुणही अवस्था में जीवन को अनित्य जानकर धर्म में तत्पर होना चाहिये ३१ मरण के अन्ततकही जीवन है और वृद्धावस्था के अन्त तक ही रूप और यौवन है और विनाश के अन्ततक ही संपत्ति है ऐसे संसार में कौन पुरुष रमण की इच्छाको करे ३२ और जिसकी मृत्यु के संग मित्रता है अथवा जो अजर अमर है उसीको ऐसा आपका सा कहना उचित है और वही यह भी कह सक्ता है कि कलके दिन मेरा यह काम होगा ३३ यह मेरे कल का कार्य है

अबका नहीं ऐसा कहना इस मरणजन्मा को अयुक्त है कलके दिन यह अवश्य होगा उस समय तुम न होगे कलके दिन में किसके यहां क्या होगा इन वस्तुओं को कोईभी नहीं जानसक्ता है इस हेतु से बुद्धिमान् पुरुष कलके करनेके योग्य कार्यों को आजही करडाले ३४।३५ कलके दिन के कार्य को अब करे और मध्याह्न के पीछे के काम को पूर्वाह्न में करे यह किया है वा नहीं किया है इसको मृत्यु नहीं देखती है ३६ यह किया है यह करना है इसको नहीं किया है अथवा सब पूरा नहीं है ऐसी बुद्धिसे युक्त हुये पुरुषको दैव अपने वश में करलेता है ३७ बड़े मोहमें प्रविष्ट पुत्र स्त्री आदिकों के वास्ते उद्यत हुआ यह पुरुष करनेके लायक को अन्यथा करके इन पुत्रादिकों की पुष्टि करताहै ३८ और पुत्र पशु मित्रादिकों में आसक्तचित्तवाले मनुष्य को यह मृत्यु ऐसे ग्रहण करके खाजाती है जैसे कि वन में व्याघ्रादि जीव अन्य पशुओं को ग्रहण करलेते हैं ३९ जो कदाचित् यह मनुष्य मस्तक में स्थित होने वाली इस मृत्यु को देखे तो इसको भोजनकी भी इच्छा नहीं रहे और अकार्य का तो करना है ही नहीं ४० अनेक प्रकार की स्नेह फांसियों में आसक्त मनवाले मनुष्य अकृतार्थ होकर ऐसे नष्ट होजाते हैं जैसे कि बालू और रेत का बना हुआ पुल शीघ्र नष्ट होजाता है ४१ जिसका अन्त नहीं है ऐसे काल को सौ वर्ष कितनी बात है और सौ ही वर्ष की आयु वाला जो पुरुष है वह स्वस्थ होकर कैसे स्थिर रहता

है ४२ दश वर्ष के सोलह वर्ष के और बीस तीस वर्ष वाले यह सब मनुष्य सौ वर्षसे ऊपर स्थित नहीं रहते हैं और संपत्ति स्वप्न के समान प्रकाशवाली है यौवन पुष्प के तुल्य है और आयु बिजली के समान चञ्चल है इस हेतुसे इस मृत्यु से किसको धीरज होय जरा मरणादि अवस्थायुक्त चलायमान और मृत्यु के वश में होनेवाले इस शरीर से मैं क्या करूंगा ४३। ४५ और तृण वायु और नदी इनके समान वेगवाले स्वप्नके समान प्रकाश वाली आयु के और यौवन के भोगने में कौनसा बुद्धिमान् पुरुष विश्वास करसक्ता है और मृत्यु से मारा हुआ अनाथ के समान दुःखों को पाता हुआ इस जगत् को देखके भोग आयु और यौवन इत्यादिकों में कौन विश्वास करे ४६। ४७ और मरणरूपी आवर्तों से युक्त संसाररूप निराश्रय समूह में यह जगत् अपने कर्मों करके भ्रमता हुआ स्थित होकर वर्तमान है ४८ मैं ऐसा करूंगा और ऐसाही होगा इस प्रकार का जो संकल्प करता है वह मृत्यु को नहीं देखता है ४९ और मैं एक हूं मेरा कोई नहीं मैं किसी का नहीं हूं और जिसका मैं हूं उसको मैं नहीं देखता हुआ अपने को भी नहीं देखता हूं ५० जीव अकेला ही पैदा होता है अकेला ही नष्ट होजाताहै एकही सुकृत को भोगता है और एकही दुष्कृत कोभी भोगता है ५१ मृतक शरीर को काष्ठ मृत्तिका रोड़ा और पत्थरके समान पृथ्वी में त्याग कर बान्धवलोग विमुख होकर चलेआते हैं और धर्म उसके पीछेही साथ में चलाजाता है ५२ इस संसार-

रूपी वनमें विचरनेवाले बड़े बलवान् मृत्युरूप सिंह के भय से भयभीत उसके वृद्धावस्थारूप नादों को सुनता हुआ पुरुष निर्भय होकर कैसे स्थित होसक्ता है ५३ और हे तात! पुत्र, भृत्य, स्त्री, पशु और अन्य द्रव्यादिकों से युक्त होकर तेरे कितने दिन कुशल से व्यतीत होंगे ५४ सो जबतक इतने रोगों से ग्रसित नहीं होते हो और तुमको वृद्धावस्था नहीं प्राप्त होती है और जबतक आयु क्षीण नहीं होतीहै तबतक अपना कल्याण करो ५५ पुत्र, स्त्री, कुटुम्ब इन्होंमें आसक्त हुये पुरुष ऐसे नष्ट होजाते हैं जैसे जीर्णहोनेवाले वन के हाथी सरोवर की कीच में फँसकर उसी में घुस जाते हैं ५६ देखो लोहे काष्ठ आदि की फांसी से बँधाहुआ मनुष्य छूटभीजाता है परन्तु पुत्र, स्त्री और कुटुम्बादिरूपी फांसी में बँधाहुआ पुरुष नहीं छूटताहै ५७ हे पिता! आपको पुत्र दारादिकोंमें ऐसी बुद्धि नहीं करनी चाहिये कि यह अनाथ होकर मेरे बिना कैसे जीवेंगे ५८ मैथुन करनेसे उदर में प्राप्तहुये अचेतनवीर्यके गर्भस्थित जीवतेहुयेबिन्दु को किस यत्न से देखता है ५९ जहां अन्न पान और अन्य २ भक्ष्य पदार्थभी सब जीर्ण होजाते हैं उस उदर में यह गर्भ अन्न के समान जीर्ण नहीं होता है ६० जो इसको गर्भ में गिराता है और गर्भही में बढ़ाता है वही उसका कर्म दुःख सुख के उत्पादन करनेमें युक्त है ६१ यह जीव आप मृत्तिका का पिण्डरूप है पराये आधीन है अपनी भी रक्षा करनेको समर्थ नहीं है तो अन्यकी रक्षा क्या करसक्ता है ६२ यह जीव अपने

किये कर्मों से जन्मलेता है अपनेही कर्मों से बढ़ताहै और अपनेही कियेहुये कर्मों से सुख दुःखादि को भोग कर मृत्यु को प्राप्त होता है ६३ और मैं कहां से आया कहांको जाऊंगा मैं कौन हूं किस लिये यहां आयाहूं कौन मेरा बन्धु है और किसका मैं हूं इस प्रकार से आत्मा का चिन्तवन करो ६४ तेरा न कोई बन्धु है न तू किसीका बन्धु है मार्ग में इकट्ठे हुओं के समान स्त्री, पुत्र, बन्धु और प्रियजनों का मिलाप है ६५ पहले कोई अन्यही स्वजन हुये अब दूसरे स्वजन हैं और देहके अन्त होनेके पीछे अन्य होंगे उससेभी पीछे २ अन्य २ ही होतेचलेजायँगे ६६ इस प्रकार नाशवान् होते हुये इसलोक में कौन किसका स्वजन है और कौन किसका अन्यजन है यह केवल मोह और अज्ञान हीहै ६७ मोह से उत्पन्न हुई पुत्र, स्त्रीरूप फांसियों से और कर्मरूप तन्तुओंसे जैसे कि मियानसे खड्ग ढकाहुआ होताहै उसी प्रकार मोहरूपी जाल से आच्छादित होकर यह पुरुष आत्मा का बोध नहीं करताहै ६८ कालरूप बड़े अग्नि में जलते हुये इसलोकमें दग्धहुये गृह के समान कौनसा बुद्धिमान् पुरुष धारणा को प्राप्त होसक्ता है ६९ हे पिता! धन, बान्धव, मित्र, पुत्र, पौत्र और सुहृज्जन इन सबसे तेरा क्या प्रयोजन है मरणधर्मा होकर तुम अपने आत्मा का चिन्तवन करो और तेरे पिता पितामहादिक कहांगये और अब पिता कहां है यह विचार ७० । ७१ अपने कर्मरूप फलोंसे व्याप्त विधिरूप ब्रह्मा से रचेहुये ऐसे जीव समूहों को सब ओरसे काल

खींचता है ७२ और हा तात! हा कान्त! ऐसे विलाप करता हुआ महादुःखित यह जन जैसे कि मेंडकको सर्प ग्रसलेता है इसी प्रकार मृत्यु से ग्रसाजाता है ७३ पण्डित, मूर्ख, बलवान्, दुर्बल, दरिद्री और ऐश्वर्यवान् इनसबों में मृत्यु की तुल्यता है अर्थात् बराबर है ७४ जरा अवस्था और मृत्यु यह दो भेड़ियाओं के समान जीवों के भक्षण करनेवाले हैं यह दोनों हिंसक बलवान् दुर्बल बड़े और छोटे आदि सबकोही भक्षण करनेवाले हैं ७५ कोई पुरुष इस पृथ्वीको समुद्र पर्यन्तभी जीत कर इन जरावस्था और मृत्युको नहीं रोकसक्का है ७६ मृत्यु को कोईभी नहीं जीतसक्का क्योंकि ऐसी धारणा वाला कौनसा पुरुष है जो शुक्ल कृष्ण पक्षों के व्यत्यय के समान अर्थात् शुक्लपक्ष के स्थान में कृष्णपक्ष का होना और कृष्णके स्थानमें शुक्लपक्षका होना करसके ७७ यह मृत्यु जन्मेहुये पुरुष को ऐसी शीघ्रता से भस्म करतीहै कि एक पलभर को भी नहीं टालसक्की अठारह निमिषों की १ कला और ३० कलाओं की एक काष्ठा होती है ७८ और ३० काष्ठाओं का एक १ मुहूर्त ३० मुहूर्तों का एक १ अहोरात्र होता है इसप्रकार यह निमेषादिकाल मनुष्यों को शीघ्रही प्राप्त होनेवाला कहा है ७९ हे द्विजश्रेष्ठ! जैसे कि नदी का वेग छोटी नौका को डुबो देता है तैसे ही यह वेगवान् काल भी आयु को हरता है तुम्हारी अवस्था गमन करती हुई एकनिमेषमात्रभी नहीं ठहरती है ८० इस हेतु से अनित्य देहों में जो नित्य पदार्थ है उसीका आचरण

करो और इस बिजली के समान चञ्चल अनित्य संसार में जो पुरुष रमण करतेहैं उनको मैं नमस्कार करता हूं क्योंकि इस से अधिक और कैसा हठ होसक्ता है अब इससे विशेष तुमको क्या मानना है मैं बारम्बार कहता हूं ८१। ८२ जो कुछ कि तुम इस स्थान में देखते हो यह सब अनित्य है इसी हेतु से मैं सबभावों में अनित्यता देखकर सब आरम्भों को त्याग आत्मामेंही योग का जाननेवाला होजाऊंगा और आत्मज्ञान को पढ़ता हुआ आत्मा करके आत्माही का पूजन करके मैं आत्माही का जाननेवालाहूंगा मुझको संतानादिक नहीं उद्धार करसक्के इस कारण मुझ सरीका मनुष्य हिंसा वाले पशुयज्ञों से पूजन करने की कैसे इच्छा करे जिन का कि अन्त है ऐसे सम्पूर्ण यज्ञों का तो हवनही करना उचित है और हीनयज्ञों करके पूजन करना पिशाच के समान है सो मैं हिंसासे रहित सत्य आत्मावाला होकर काम क्रोध से रहित जितेन्द्रिय और समानचित्तता से देवताओं के समान मृत्यु को जीतूंगा और मन को आसक्त करनेवाला जो कुछ बाहर और भीतर है उस सब को त्यागके मनको सदैव ध्यान में धारण करूंगा समाहित हुये मनको और इन्द्रियों को एकाग्र कर जब तक कि इस शरीर का क्षय न होगा तबतक नियमों में स्थित होके विषयों के सङ्ग से विमुक्त हुये मन को अच्छीरीति से रोकूंगा जब कि उदासीनवृत्ति प्राप्त होजायगी तब मोक्ष की प्राप्ति होगी और काम, क्रोध, भय और तमोगुण इन में आसक्त चित्तवाले, चुगलखोर, कृतघ्नी,

नास्तिक और भिन्नवृत्तिवाले ऐसे मूढ़पुरुष उस खुलेहुये भी मोक्ष के द्वार को नहीं देखसक्केहैं ८३। ६१ और हज़ार अश्वमेधयज्ञ और सौ वाजपेययज्ञ यह सब भी ज्ञानयज्ञ की सोलहवीं कला को नहीं प्राप्त होते हैं ६२ भीष्मजी बोले वह मोक्ष के धर्मों का जाननेवाला ब्राह्मण पुत्र के इनसब वचनों को सुन के जैसे कि उस पुत्र ने कहा वैसाही करता भया ६३ इस प्रकार उस मेधावी पुत्र से प्रबोधित हुआ वह ब्राह्मण शरीर के अधिष्ठाता भगवान् को चिन्तवन करता हुआ सब प्रयोजनों को त्याग कर स्वर्ग को भी सुखों में इच्छारहित होता भया ६४ और शंख, चक्रों समेत सूर्यमण्डल में स्थित जल में शयन करनेवाले अनन्त अच्युत प्रकाशमानरूप विचित्र भूषणों से उज्ज्वल ऐसे भगवान् को वह ब्राह्मण बुद्धि करके प्राप्त होता भया॥ ६५॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायांपितापुत्रसंवादोनामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

उन्नीसवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि; हे पितामह! प्रथम व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी किस प्रकार से विरक्तभाव को प्राप्त होते भये यह आप मुझसे निश्चयपूर्वक समझाइये १ भीष्मजी बोले पूर्व कियेहुये सुकृतसे निर्भय वर्त्तेहुये अपने पुत्र को वेदव्यासजी ने सम्पूर्ण स्वाध्याय को पढ़ाके यह शिक्षाकरी कि २ हे पुत्र! तू धर्म का सेवनकर और अति तीक्ष्ण शीत, घाम, क्षुधा, तृषा और कोप इन सबको

त्यागकर नित्य जितेन्द्रिय हो ३ धर्म से रहित कर्म चाहे बड़े भारी भी फल का देनेवाला हो उसको भी ज्ञानी मेधावी पुरुष नहीं सेवते क्योंकि वह कर्म हितकारी नहीं है ४ जो मृत्यु होनेके पीछे भी चलताहै ऐसा मित्र एक धर्म ही है और अन्य सबों का बास तो शरीरही के साथ रहता है ५ हे पुत्र! सहायता के लिये पिता माता आदिक कोई स्थित नहीं रहते और पुत्र, स्त्री, ज्ञाति, बन्धुभी सहायताको नहींरहते किन्तु केवल धर्मही स्थित रहता है ६ बुद्धिके मोहसे जो जड़ मनुष्य धर्मकी निन्दा करते हैं उन कुमार्गियोंका धर्म नष्ट होजाता है ७ जो मनुष्य धर्म से विमुख है वह शक्तिमान्‌भी होकर असमर्थ है अर्थात् धनवान्‌भी निर्धन होकर शास्त्रों को सुनने पर भी मूर्ख है ८ जैसे कि धान्योंमें तुषहै और पक्षियों में विना चोंच का है वैसेही धर्महीन भी उन्हीं के समान है ९ धर्मही माता, पिता, बन्धु, मित्र, प्यारा, भ्राता और स्वामी होकर परंतप है १० धर्मही स्वर्ग की सोपान अर्थात् सीढ़ी है और धर्मही स्वर्ग का पहुँचानेवाला है ११ हे विप्र! तू ऋषिधर्म की चिन्ताकर और मनुष्य धर्म की चिन्ता त्यागदे १२ जो पुरुष धर्म को चिन्तवन करताहुआ दैवयोग से मरजाता है वह स्वर्गमेंही प्राप्त होताहै इस धर्म को स्वर्ग काही फल कहते हैं १३ वह धर्म विष्णुरूप और नारायणरूप है जिस धर्म से कि अतुलआत्मावाले विष्णु भगवान् प्रसन्न होजातेहैं १४ और वही परमधर्म सब लोकों में परायण है हे पुत्र! जिस धर्म के द्वारा यह चराचर जगत् धारण कियाजाता

है १५ हे पुत्र ! इस लिये सर्वात्मा करके सदैव धर्म का आचरण कर धर्म से विमुख होकर अति अन्धतमरूप संसार में मत गिरे १६ जो पुरुष संतोष, श्रुत, सत्य, कोमलता और दया इन सब से युक्त है और इन्द्रियों समेत क्रोधको भी जीतेहुयेहै उस महात्मा की उपासना करके पूछ १७ और धर्म में निपुण इन्द्रियों को वश में करनेवाले महात्माओं के मत का धारण करके उग्र मार्ग में प्राप्त हुये मन को शान्त कर १८ यह मन ही सब जीवों के शुभाशुभ कर्मों को संचित करता है सो अशुभ कर्मों से मनको हटाकर शुभकर्मों को धारण कर १९ और काम, क्रोध, लोभ, भय, शोक, दम्भ, मोह, मद, निद्रा, मत्सरता, आलस्य और नास्तिकपन इन सबको त्याग २० और हे परंतप ! सत्य कोमलता चोरी न करना अक्रूरता ब्रह्मचर्य अहिंसा और क्षमा को धारण करके इन सबकी पालनाकर २१ इस स्वर्ग के सोपानरूपी मनुष्य शरीर को प्राप्त होके आत्मा को ऐसे प्रकार से साधनकर जिससे कि इस प्रकार फिर नहीं भ्रमण करना पड़े २२ क्रोध, लोभ, निद्रा और आलस्य इन में और विषयादिकों में तत्पर होने वाला ब्राह्मण कल्याण से भ्रष्ट होजाता है २३ विषयात्मक पुरुष जैसे २ विषयों को सेवन करते हैं वैसेही वैसे उन विषयों में अकुशलतारूप दुःख उत्पन्न होते हैं २४ इन मन के हरनेवाले विषयों से जिनका चित्त नित्य हराजाता है वह मूढ़ पुरुष तिर्यक सर्पादियोनियों में दुःखों कोप्राप्तहोते हैं २५ विषयोंमें आसक्त होनेवाला

पुरुष कल्याण को नहीं प्राप्त होता है इस हेतु से हे पुत्र ! तू सर्वात्मा करके सब विषयों को विष के समान त्याग करदे २६ और अन्य सैकड़ों जन्मों से विषयों में आसक्त होनेवाली मनुष्यों की बुद्धिभी विषयों से ऐसे निवृत्त होजाती है जैसे कि सस्यादि की खेती के दुःखों से वृद्धबैल छूटजाता है २७ बड़ी बलिष्ठ इन्द्रियों के विषयों की आशक्ति को निवारण करके शेषरहे हुये बल से प्राणों की यात्रा का पालनकर २८ यह ब्राह्मण का देह भोग के निमित्त नहीं उत्पन्न होता है किन्तु इस संसार के बड़े २ क्लेशों के सहने को पैदा होकर अन्त में मृत्यु को पाकर अनन्त सुखों के निमित्त है २९ तुम यत्न करके प्रशस्त और उत्तम कर्मों का सेवन करो और सब निन्दित कर्मों को त्याग दो यही परम धर्म है ३० ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थ और भिक्षुक इन सब आश्रमों में यथोक्त कर्म करने से परमगति को प्राप्त होते हैं ३१ सरल चित्त तपस्वी संतोषयुक्त सत्यवक्ता जितेन्द्रिय दान्त और दयावान् ऐसा ब्राह्मण दुःख नहीं पाता है ३२ हे पुत्र ! यह मैंने धर्म का बड़ामार्ग तुझको दिखाया है इसीमार्ग में अप्रमत्त होकर विचर और अन्य मार्ग करके मत गमनकर ३३ जो पुरुष नरकरूप इसी स्थान में नरकरूपी व्याधिकी चिकित्सा नहीं करता है वह रोगग्रस्त पुरुष औषधरहित देश में जाकर क्या करसक्ता है ३४ कठोरता, अनृत, हिंसा, परायेद्रव्य और स्त्री का संग, चुगली, संसारीवार्त्ता, पापबुद्धि इन सब बातों को त्याग ३५ जो पुरुष धर्म को नहीं साधता

है और कर्म अर्थों का आश्रित है ऐसे परलोक के विरोधी पुरुष से बुद्धिमान् लोगों को वचन से भी नहीं बोलना उचित है ३६ हे पुत्र ! तू परलोक के हित का चिन्तवन सदैव उठकर कर और अपने कर्मों के भी बिपाक का इसी संसार में विचार कर ३७ सदैव मद रहित पण्डितजन को धर्म करना योग्य है क्योंकि जब अकस्मात्ही मरण होजायगा तो धर्म करने को असमर्थ होगा ३८ मैं ऊपर को भुजा उठाकर कहता हूं परन्तु मेरे वचन को कोई नहीं सुनता है कि धर्म से द्रव्य और कामना भी प्राप्त होते हैं ऐसे धर्म का किस कारण से सेवन नहीं किया जाता है ३९ जो मूढ़बुद्धि पुरुष धर्म को पूर्वजन्म में नहीं करता है वह मृत्यु को प्राप्त होकर ऐसे पछताता है जैसे कि निर्द्रव्य होकर मार्ग में चलता हुआ पुरुष पछताता है ४० हे पुत्र ! उस ग्राम, नगर, तीर्थ तथा पर्वतपर भी निवास न करना चाहिये जहां कि धर्म में तत्पर मनुष्य नहीं हैं ४१ मृत्यु का कुछ नियम नहीं है इसलिये तत्काल ही अपना कल्याण करना चाहिये कार्यों के विना कियेहुयेही मृत्यु मनुष्य को नष्ट करदेती है ४२ जरा अवस्था व्याधि और मृत्यु इन सब को जानता हुआ कौन सा बुद्धिमान् पुरुष स्वस्थ होकर सुख को भोगे वा हास्य को करे ४३ हे पुत्र ! यह संसार जन्म, मृत्यु, जरावस्था, व्याधि और अनेक प्रकार की पीड़ा इन सबसे उपद्रव को प्राप्त होरहा है ऐसे इस अत्यन्त असार संसार को त्याग ४४ यह ज्ञाति और बान्धवादिक तो चिता के धूम निकलने के

पीछेही निवृत्त होजाते हैं इससे हे पुत्र! तू उसी सुकृत कर्म को कर जिसके कि साथ तुझको यहां से परलोक में जाना है ४५ प्राणियों का जीवना अति अल्प है उसमें भी आधा निद्रा हरलेती उसमेंसे भी आधी को बाल्यावस्था, शोक, वृद्धावस्था और रोग यह सब निष्फल करते जाते हैं ४६ जो जन जन्मके लिये मरतेहैं और मरनेके निमित्त जन्म लेतेहैं और धर्म और मोक्ष के निमित्त नहीं हैं ऐसे अज्ञ पुरुष तृणों के तुल्य हैं ४७ हे पुत्र! अपने तुल्य जातिवाले तुल्यअवस्था और तुल्यही रूपवाले मनुष्यको भी तू जिस मृत्यु से हरा हुआ देखता है वह मृत्यु तेरी भी रक्षाकरनेवाली नहीं है तेरा हृदय लोह के समान कठोर है इकट्ठे हुये सौ १०० पुरुषों में भी सौ १०० वर्ष की आयुवाला कोई नहीं मिलता है यह सौ १०० वर्ष की आयु तो पुरुषों की आशामात्रही है उत्तम आयु तो ६० ही वर्ष की है ४८ जल के झाग की समान उपमा वाले देह में पक्षी के तुल्य स्थित हुये जीवों में प्रियजनों का बास अनित्य है सो हे पुत्र! तू कैसे सोवता है ४९ तू अहित प्रयोजनों में अपना हित मानता है और अनित्य में नित्य मानता है और अनर्थ में अर्थ को मानता हुआ अपने प्रयोजन का बोध नहीं करता है ५० पुत्र, स्त्री, कुटुम्ब और द्रव्यादिकों के संचय यह सब परलोक के विषय में अनित्य हैं और सुकृत दुष्कृतही सत्य हैं ५१ यह अजररूप सूर्य जीवों को सुख दुःखादि से जीर्ण करता हुआ अस्त होजाता है और

बारम्बार उदय होता है ५२ सो हे पुत्र! तृष्णारूपी
छेनी से भिन्न किये हुये विषयरूपी घृत से सींचेहुये
प्रीति, द्वेषरूपी अग्नि में पके हुये ऐसे मनुष्य को यह
मृत्यु भक्षण ही करलेती है ५३ और मृत्यु से छेदन
कियेहुये आयु के बहुत से दिनों के खण्ड अर्थात् टु-
कड़े तेरे आगे गिरते हैं सो क्यों नहीं देखता है ५४
हे पुत्र! तू बहुत कृत्यों में उद्वेग से रहित है और
जागने की जगह भय के स्थान में सोवता है सो खेद
की बात है तेरा हनन हुआ जाता है ५५ जहां विश्राम
नहीं किसी प्रकार का आश्रय नहीं कोई मार्ग नहीं
और न कोई देश है ऐसे अन्धतम दुर्गम मार्ग को अ-
केला कैसे जाता है ५६ सत्यरूप आधार तपरूप तैल
दयारूप बत्ती और क्षमारूपी अग्नि की शिखावाले दी-
पक को इस अन्धकाररूपी संसार में धारण करना चा-
हिये ५७ और जो सब कुछ त्यागकर गमन करनेके
योग्य है ऐसे संसार में जाकर फांसियों से बँधेहुये मृगके
समान कैसे धारणा को प्राप्त होसक्ता है ५८ यह मृत्यु
जरावस्थारोग और अन्य २ अनेक प्रकारके दुःख यह
सब तेरे शरीर में युक्तहुयेहैं तबभी तू स्वस्थ के समान
कैसे स्थित है ५९ जो मृत्युस्थित होनेवालेको तथा श-
यन करनेवालेकोभी प्राप्त होती है वह जल से निकाले
हुये मत्स्य के समान निवृत्त होनेवाले को कैसे प्राप्त
होती है ६० जरावस्था से दिखायेहुये मार्गवाले प्रचण्ड
व्याधिरूपी सेनावाली और अरिष्टरूपी शस्त्रवाली ऐसी
आवती हुई मृत्यु को क्यों नहीं देखताहै ६१ तेरे जाते

हुये तेरे पीछे दूसरा कोई भी न जायगा किन्तु अपने शुभाशुभ कर्मों को साथ लेकर तुझ अकेलेहीको जाना होगा ६२ यह पुरुष अपने शुभाशुभ कर्मों को ग्रहण करके अन्यत्रही चलाजाता है और इसके मित्रसम्बन्धी और बान्धवलोग किसी दूसरे स्थानको जाते हैं ६३ इस मनुष्य के पीछे मित्र, बन्धु आदि सम्बन्धियों में से कोई भी नहीं प्राप्त होता है और बड़े २ यत्नपूर्वक उपायों से रचेहुये यह पुत्र स्त्री आदि कभी नहीं प्राप्त होते हैं और अपने कर्मफलों के भोग करनेवाले मनुष्यों के प्राण उसी क्षण में सैकड़ों अपने प्यारे मित्रादिकों को त्यागकर चले जाते हैं ६४ तेरे हज़ारों माता पिता व्यतीत होचुके और पुत्र स्त्री आदिक भी सैकड़ों व्यतीत होगये तू किसका है और वह किसके हैं उनको तुझसे कुछ प्रयोजन नहीं न तेरा उनसे कोई प्रयोजन है सब अपनेही कर्मों से जन्मेहुयेहैं इससे तू सब से रहित होकर अकेला जायगा ६५। ६६ इसको वर्षा ऋतु में इसको ग्रीष्म वा हेमन्तऋतु में करूंगा ऐसे विचार करता हुआ मूढ़पुरुष विघ्नों को नहीं देखता हुआ भी नष्ट होजाता है और सुनता हुआ भी बोध नहीं करता है तू बुद्धिमान् होकर भी इन सब इन्द्रियों करके ठगा जाता है ६७। ६८ महाजाल करके खिंचे हुये और स्थल में निकालेहुये ऐसे मत्स्यों के समान मोहजाल से खिंचेहुये दुःखित जीवों को भी देख ६९ और गृह में जो स्त्री आदि का प्रसंग है वह बांधनेवाली रस्सी है उस रस्सी को सुकृतीपुरुष ही छेदन करके

गमन करता है और दुष्कृतीलोग इसको छेदन नहीं कर सकते हैं ७० अहिंसा, सत्य, संतोष, क्षमा और कोमलत्ता इनसमेत तपोमयी नौका पर सवार होकर यत्न से इस संसाररूपी सागर से उतर ७१ विशेष करिके गमन करते हुये पुरुषों को क्या स्थित होना है उनको तो बड़ा मथन करनेवाला दारुण भय होता है सो तू मेरे समान तप का आचरण कर ७२ पुत्र, स्त्री, बान्धव, सम्पत्ति और प्रियजन यह सब संकट में प्राप्त हुये अकेले मनुष्य के पीछे गमन नहीं करते हैं ७३ जो शुभाशुभ अपनाही किया हुआ कर्महै वही उस अकेले गमन करने वाले के साथ प्राप्त होता है ७४ वहां परलोक में अनेक कर्म करके परस्पर विभाग नहीं कियाजाता है अर्थात् जैसा जिसका शुभाशुभ कर्म किया हुआ होता है वही वह अकेला भोगता है ७५ और जब तूही आगे और तूही पीछे अर्थात् कोई तेरे संग न होगा तब गमन करनेवाले तेरे शरीर और आत्मा से अन्योंको क्या प्रयोजन है ७६ जबतक कि उत्तमजनका पातक पाक को नहीं प्राप्त होताहै उससे पूर्वही विना पकाहुआ पातक अर्थात् पाप शीघ्र ही नष्ट होजाता है ७७ जब सोलह वर्ष व्यतीत होलेतेहैं तव पच्चीस वर्षका युवाहै तबही धर्म का संचयकर उस धर्म से तप की वृद्धि होती है ७८ यह जराअवस्था शरीर को जीर्ण करती है और रूप रङ्ग और बल इन सबका नाशकरनेवाली है सो तू सुकृतरूपी धन का संचयकर ७९ जिस धनको राजा तथा चौरादि से भी डर नहीं और जिससे जन्म, मरण छुट

जाताहै उस धर्म को इकट्ठाकर ८० हे पुत्र ! मैं तेरेलिये बारम्बार उसीको कहताहूं कि जीवन अनित्य है धर्म को आदरपूर्वक कर ८१ धर्म के समान कोई बन्धु मित्र लाभ और कोई गति भी नहीं है ८२ जो पुरुष मृत्युको आगे देखताहुआ भी धर्म का आचरण नहीं करता है उसका जन्म ऐसा निरर्थक है जैसे कि बकरी के गले में स्तन निरर्थक होतेहैं ८३ अन्यकार्यों में विशेष करके आवृतहुये पुरुष को भी धर्म का संचय ऐसे करनाचाहिये जैसे कि मध्य के स्तम्भ में बँधाहुआ भी बैल भ्रमता हुआ एक जगह बास करता है ८४ धर्म करने के विना धर्म करने में एक दिन भी उल्लङ्घन होजाय तब भी उसको चोरों से लुटेहुये के समान बहुत सा संताप है ८५ विशेष करके क्षीण पापवाले नित्य धर्म में तत्परवाले मनुष्यों के ज्ञान उत्पन्न होता है फिर उसी ज्ञान से उसको मोक्ष प्राप्त होता है ८६ जो पुरुष मन वाणी और कर्म से धर्म में रत होकर समतापूर्वक फलों की इच्छा नहीं करता है वह मोक्ष को प्राप्त होता है ८७ श्रीशुकदेवजी बोले; हे पिता ! मैंने अनेक प्रकार के धर्म और प्राणियों की अनित्यता को भी सुना है भगवन् ! अब आप मोक्ष के तत्त्वार्थ कहने को योग्य हो ८८ व्यासजी बोले, ब्रह्मविद्या, तप, इन्द्रियों का निरोध और सब वस्तुओं का त्याग इन सब बातों के विना मनुष्य कभी किसी स्थान पर भी मोक्ष को नहीं प्राप्त होसक्ता है ८९ यह तप और ब्रह्मविद्या दोनों इस प्रकार से कल्याणकारी हैं कि तप से तो पाप

नाश होता है और ब्रह्मविद्या से मोक्ष को प्राप्त होता है ६० जैसे कि अन्नसे युक्त मधुवस्तु और मधुवस्तु से युक्त अन्न स्वादिष्ठ और उपकारी होता है उसी प्रकार तप और ब्रह्मविद्या मिलकर बड़ी उत्तम औषध है ६१ जिसका जीवन धर्म के निमित्त धर्म ज्ञान के निमित्त और ज्ञान तथा ध्यान योग के निमित्त है वह शीघ्र ही मोक्ष होजाता है ६२ सब मनोरथों का त्याग सब सुख दुःखादिकों का सहना और सब जीवों में समानभाव होना यही मोक्ष की उत्तम विधि है ६३ और इन्द्रियों समेत मन को पिण्ड के समान अपने हृदय में एकाग्र करके जो नित्य अकेला रहता है वह परब्रह्म को प्राप्त होता है ६४ पद्मासन बैठने से और नासिका के अग्रभाग के देखने कोही योग नहीं कहते किन्तु इन्द्रियों के समूहों के रोकने ही को योग कहते हैं ६५ और मन वाणी कर्मों करके आलस्य को दूर कर जो सब लोकों के ईश्वर वासुदेव भगवान् को भजता है वह मोक्ष को प्राप्त होता है ६६ यही परमज्ञान तप और परमयोग है और यही परमसाधन है ६७ और जब इसको योगप्रयुक्त होता है और सब वस्तुओं का भाव अभावता को प्राप्त होजाता है तभी यह योग में स्थित है और अन्य सब बातें उस योगकी प्राप्ति के साधन हैं ६८ सदैव इसी समाधानमें मन को धारण कर और दूसरे अनेक मतों को विचारना न चाहिये क्योंकि विशेष मत विघ्न के करनेवाले हैं ६९ भीष्मजी बोले कि; शुकदेवजी वेदव्यासजी के इन वचनों को

सुनकर बड़े प्रसन्न हुये और अपने पिता को त्याग मोक्ष में तत्पर होकर तपोवनमें गमन करते भये और आत्मा को सब विषयों से निवृत्त कर समानचित्त हो ध्यानयोग में तत्पर होते भये १००।१०१ और विष्णु के चरणारविन्दों को और मुनियों में उत्तम अपने पिता को प्रणाम कर इन्द्रियादिक चित्त की वृत्तियों को प्रसन्न करतेहुये पुरुषार्थ की इच्छा करनेवाले महात्मा शुकदेवजी गमन करते भये १०२ हे राजन्, युधिष्ठिर! इस हेतुसे इस शुकानुशासन अर्थात् शुकदेवजी से व्यासजी की कही हुई इस शिक्षा को जानके सदैव योग में युक्त होजा तब तुझको अवश्य मोक्ष प्राप्त होगी १०३ जो इस वेदव्यास की कही हुई कथा को सुनेगा वह सब पापों से छुट कर विष्णु के लोक को प्राप्त होगा॥ १०४॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायांशुकानुशासनंनामै-
कोनविंशतितमोऽध्यायः॥ १९॥

बीसवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि; हे तात! यह देना योग्य है वह देना योग्य है और राजालोगों को बहुत ही देना चाहिये यह जो वेदकी प्रेरणाहै इन सबमें विशेष करके क्या देना उत्तम है १ भीष्मजी बोले सब दानों में पृथ्वी का दान उत्तम कहा है यह दान परिडतजनों को देना सबपापों का हरनेवाला है २ निश्चय करके सब दान पृथ्वीपर ही होते हैं इसीसे बड़े २ परिडत महात्माओं ने इसी पृथ्वीके दान देनेवालेको सर्वस्व देनेवाला कहाहै ३ हे महीपाल!

पृथ्वी के दान देनेमें सुवर्ण चाँदी और अनेकप्रकार के सब धान्यादिकों का भी दान होजाताहै ४ इसके विशेष इस पृथ्वी के दान में तड़ाग फल पुष्पयुक्त सब वृक्ष पशु और सबप्रकार के रसों का भी दान होजाता है ५ और जो कोई धान्ययुक्त अर्थात् खेती से युक्त हुई पृथ्वी का दान देते हैं उनके लोक तबतक नष्ट नहीं होतेहैं जबतक कि यह पृथ्वी स्थित रहेगी ६ और पृथ्वी के दान देनेसे मनुष्य को जैसे फल प्राप्त होतेहैं वैसे फल बहुत सी दक्षिणावाले अग्निष्टोमादि यज्ञों से भी नहीं प्राप्त होसक्ते हैं ७ तपस्वी यज्ञ करनेवाले सत्यवक्ता बहुश्रुत पण्डितजन और गुरु देवता यह सब पृथ्वी के दान देनेवालेको विपरीत उल्लङ्घन नहीं करतेहैं ८ यहां पूर्व कहीहुई कथा को पूर्व के जाननेवाले कीर्तन करतेहैं और जिसको सुनके परशुरामजी ने कश्यपजी को पृथ्वी का दान दिया है ९ पृथ्वी का वचन है कि मेरे दिये विना पुरुष मुझको नहीं प्राप्त करसक्ताहै और मेरा दान देने से इसलोक तथा परलोक में मुझको प्राप्त होता है इसी हेतु से मनुष्य मेरा दान दिया करतेहैं १० वही पुरुष उत्तम कुलीन विद्वान् पुण्यात्मा और इन्द्रियोंका जीतनेवालाहै जो पृथ्वी का दान देताहै ११ पृथ्वीके दान करनेवाले को मृत्युके किङ्करों का संताप और अत्यन्त दारुण वरुण की फाँसी यह सब नहीं प्राप्त होते हैं १२ ब्राह्मण के अर्थ सब कामनाओं की देनेवाली पृथ्वी का दान करके स्वर्ग में तबतक सब कामनाओं को प्राप्त होता है जबतक कि यह पृथ्वी वर्तमान है १३ और

वेदपाठी दरिद्री बहुत कुटुम्बवाले और संतापों से युक्त ऐसे ब्राह्मण को पृथ्वी का दान देनेसे मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त होजाता है १४ हे युधिष्ठिर! वेद-पाठी सुन्दर शील स्वभावयुक्त और वैष्णव ऐसे ब्राह्मण को जो पृथ्वी का दान देता है वह अक्षयफल को प्राप्त होता है १५ यहां एक प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिस में बृहस्पतिजी और महात्मा इन्द्र का संवाद है १६ इन्द्र बोला हे भगवन्! किस दान करके मनुष्य स्वर्ग में सुख को प्राप्त होताहै ऐसे अक्षय फलवाले दान को आप मुझसे वर्णन कीजिये १७ बृहस्पतिजी बोले पृथ्वी के दान के समान अन्य कोई उत्तम दान नहीं है इसीको मेरे पूछनेसे मुझसे ब्रह्माजीने भी वर्णन कियाहै १८ खेती से युक्तवाली पृथ्वी के दान देनेसे आगे पीछेकी पांच २ पीढ़ियों समेत वह पुरुष अपने से युक्त ग्यारह मनुष्यों को उद्धार करता है १९ हे सुरश्रेष्ठ! जो पुरुष इक्षुसमेत तथा यव गेहूं से युक्त हरित तृणोंवाली पृथ्वी का दान देता है वह स्वर्गसे नहीं गिरता है २० हे इन्द्र! शय्या, सिंहासन, छत्र, उत्तम अश्व और महाउत्तम स्त्री यह सब भूमिदान के फलसे ही प्राप्त होतेहैं २१ जैसे प्रति-दिन चन्द्रमा की वृद्धि होतीहै वैसाही पृथ्वी के दान से उत्पन्न हुआ पुण्य खेती के पीछे बढ़ता है २२ और आजीविका के लोभसे खिंचाहुआ पुरुष जो पाप करता है वह सब पाप भूमिदान से खेती के उत्पन्न होने से नष्ट होजाता है २३ भ्रूणहत्या ब्रह्महत्या और गौकी हत्या करनेवाला तथा पिता का मारनेवाला और गुरुशय्या

पर प्राप्त होनेवाला पुरुष भी सर्वगुणसंपन्न पृथ्वी के दान करनेसे सब पापों से छुट जाताहै २४ द्रव्यके विना दुःखों से युक्त बहुत से भृत्यों समेत वेदपाठी और अग्निहोत्री ऐसे ब्राह्मण के अर्थ आजीविका करनेवाली पृथ्वीके दान देनेसे मनुष्य बड़े २ सुखों को प्राप्त होता है २५ जो पुरुष बड़ा भारी भी पाप करके ब्राह्मण को पृथ्वी का दान करता है वह भी सब पापों को ऐसे त्याग देता है जैसे कि जीर्ण हुई अपनी कांचिली को सर्प त्याग देता है २६ और हे महाबाहो ! जिसके हृदय में परम ज्ञानरूप वासुदेव विष्णु भगवान् विराजमान हैं ऐसे ब्राह्मण को अवश्य सब फल पुष्पों से युक्त पृथ्वी का दान देना चाहिये २७ इसके सिवाय सबसे श्रेष्ठ पृथ्वी के दान देने का दूसरा कोई पात्र नहीं है यह मेरा मत है और धर्म के जाननेवाले परम ऋषिलोग भी ऐसे ब्राह्मण से अन्य ब्राह्मण के दान का अल्प फल वर्णन करते हैं २८ वेदपाठी अपनी वृत्ति में युक्त अग्निहोत्री और दृढ़व्रत ऐसे ब्राह्मणको पृथ्वी का दान देकर वह मनुष्य धर्मराज की पीड़ा को नहीं पाता है २९ जो अनेक संयुक्त कर्मों के करनेवाले पापचित्त राजा हैं वह भी पृथ्वी का दान देकर शीघ्र ही सब पापों से छुटजाते हैं ३० पृथ्वी के समान कोई दान नहीं दान के समान कोई खज़ाना नहीं सत्य के समान कोई धर्म नहीं और असत्य के समान कोई पाप नहीं है ३१ भीष्मजी बोले कि वह इन्द्र भूमिदान के इस प्रकार के फलों को सुन कर द्रव्यसे युक्त करी हुई सम्पूर्ण पृथ्वी को बृहस्पतिजी

के अर्थ देता भया ३२ हे राजेन्द्र! इस हेतुसे तू भी अपने बलसे संचित कीहुई भूमि को स्वाध्यायवृत्ति से युक्त होनेवाले ब्राह्मणों के अर्थ प्रतिदिन दे ३३ युधिष्ठिर बोले, हे कुरुवंश में शार्दूल! मैंने भूमिदान के सब गुणों को सुना हे पितामह! अब पृथ्वी के हरलेनेमें जे दोष हैं उनको भी वर्णन कीजिये ३४ भीष्मजी बोले पृथ्वी का देनेवाला पुरुष साठहज़ार वर्षतक स्वर्ग में रहता है और उसका हरनेवाला तथा देकर फिर उलटी लेलेने वाला पुरुष उसके विपरीत उतनेही वर्ष पर्यन्त नरक को भोगता है ३५ ब्राह्मण को दान देकर फिर उसके हरलेनेवाले पुरुष जलरहित विन्ध्याचलके तटों पै और शुष्क नदी के तीरों पै बास करनेवाले काले सर्प होते हैं ३६ हे वसुधाधिप! वेदपाठी दरिद्री बहुत से भृत्यों वाले ऐसे ब्राह्मण से पृथ्वी नहीं हरनी चाहिये ३७ क्योंकि उन दुखितहुये दीनजनों के अश्रुपात होते हैं और अपने क्षेत्र के हरे जानेसे वह महादुःखी आशासे रहित होजाते हैं इस हेतु से हरनेवालेका सब कुल दग्ध होजाताहै ३८ शास्त्रों में बड़े २ पापों का भी प्रायश्चित्त देखा है परन्तु ब्राह्मण को दान देकर फिर हरलेनेवाले का प्रायश्चित्त भी नहीं देखा ३९ अपनी दी हुई तथा अन्य की दी हुई पृथ्वी को जो हरलेताहै वह साठ हज़ार वर्षतक विष्ठा का कृमि होताहै ४० हे राजन्! यह पृथ्वी प्रथम दिलीप और नहुषराजा की होती भई फिर ययाति, अम्बरीष, मांधाता और भरत इन राजाओं की हुई इनके सिवाय अनेक राजालोगों की होकर अब तुम्ह

को प्राप्त हुई है ४१।४२ और तेरे पीछे तुझसे भी अन्य को प्राप्त होगी हे महाराज! ऐसा भी निश्चय जानतेहुये राजालोग मदोंसे मोहित होकर ब्राह्मणों को नहीं देते हैं और अन्योंकी भी दीहुई को हरलेते हैं ४३ हे युधिष्ठिर! प्रथम ब्राह्मणोंकी दी हुई पृथ्वीकी यत्नपूर्वक रक्षा कर हे बुद्धिमताम्बर! पालना करना दान से भी उत्तम है ४४ सगर आदिक बहुत से राजाओं ने पृथ्वी का दान दिया है जब जब जिस जिसकी पृथ्वी हुई है तब तब उसीका पुण्य हुआ है ४५ हे महाराज! जो तू आत्मा की अचलगति की इच्छा रखता है तो तुझे ब्राह्मणों की पृथ्वी कभी न हरनीचाहिये ४६ और जब दैवयोग से किसी सीमा में विवाद होजाय तब सीमा के सूक्ष्म देखने से पृथ्वी देनेही योग्य है हरनी कभी न चाहिये क्योंकि इससे अधिक दूसरा पाप नहीं है ४७ हे कुरुश्रेष्ठ! दान देनेसे स्वर्ग प्राप्त होता है और हरलेने से अवश्य बड़ा पाप होताहै इस हेतु से किसी की भी सीमा न हरनी चाहिये क्योंकि इससे अधिक दूसरा पाप नहीं है ४८ इस पृथ्वीदान की स्तुति को जो श्राद्धसमय में सुनता और सुनवाता है वह अन्नदान पितरों को अक्षयगुणा होकर प्राप्त होता है ॥ ४९ ॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायांभूमिदानंनाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

इक्कीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि; हे पितामह! गौओं के दान का

भी बड़ा भारी पुण्य महात्मा ऋषिलोग वर्णन करते हैं हे महाप्राज्ञ! उसको भी आप विस्तारपूर्वक मुझे समझाइये १ भीष्मजी बोले, गौ के दान से उत्तम दूसरा दान नहीं है यह मेरा मत है क्योंकि न्यायपूर्वक प्राप्त की हुई गौ सम्पूर्ण कुलको तारदेतीहै २ पूर्वमें बृहस्पति जी का कथन है कि गौ का दूध अमृतरूप है इस हेतु से जो गौ का दान देता है वह मोक्ष को प्राप्त होताहै ३ अपने वर्ण के समान बछड़ेवाली गुणों से युक्त कपिला गौ को सुवर्णशृङ्गी करके विधिपूर्वक जो ब्राह्मणको देता है वह स्वर्ग को प्राप्त होता है ४ जबतक कि गौ अर्ध-प्रसूता अर्थात् आधीब्याई होती है तबतक वह पृथ्वी कहाती है सो जो पुरुष वैसी अर्धप्रसूता गौ का दान देताहै उसने मानों पृथ्वीका ही दान कियाहुआ जानो ५ और दश गौओंवाला पुरुष एक गौको दे सौवाला दश गौ दे हज़ारगोवाला सौ गौ दे इन सबका समान ही पुण्य फलहै ६ युधिष्ठिर बोले कि; हे पितामह! कौन से लक्षणोंवाली गौका दान देवे और कौनसी गौ वर्जित है और कैसे पुरुष को देना चाहिये और कैसेको न देना चाहिये ७ भीष्मजी बोले तरुण रूपवान् सुशीला दूधवाली न्याय से प्राप्त हुई और बछिया बछड़े समेत हो ऐसी गौ ब्राह्मण को देनी चाहिये ८ और वृद्धा रोग-युक्त हीनअङ्गवाली बन्ध्या दुष्टा और मृतवत्सा अर्थात् जिसके बछिया बछड़े मरजाते होयँ कहीं दूर वर्तमान हो और अन्यायसे प्राप्त हुई होय ऐसी गौ कभी ९ न देनी चाहिये दुखिया बहुत भृत्योंवाला वेदपाठी

अग्निहोत्री अतिथेय और जितेन्द्रिय ऐसे ब्राह्मण के अर्थ गुणों से भरी हुई गौको देना चाहिये १० और अकुलीन मूर्ख लोभी निन्दक और जो देव पितरों के अर्थ हव्यकव्य से भी रहित हो ऐसे ब्राह्मण को गौ कभी न देनी चाहिये ११ जहां सुवर्ण के महल रत्नों से उज्ज्वल शय्या और सुन्दर २ अप्सरा विराजती हैं ऐसे स्थान में गौ के देनेवाले पुरुष प्राप्त होते हैं १२ और गौ का देनेवाला पुरुष सनातन ब्रह्मलोक में प्राप्त होताहै और सूर्य के समान वर्णवाले दिव्य प्रकाशमान विमान में स्थित होता है फिर विमान में ही बैठेहुये को सुन्दर रूपवाली श्रेष्ठकुचोंसे और भूषणोंसे शोभित सैकड़ों सुन्दर स्त्रियां रमण करती हैं १३।१४ और हरिणाक्षी सुन्दररूपवाली स्त्रियों के नूपुर और आभूषणों के शब्दों समेत वंशी वीणादि बाजे और नाना प्रकार के इतिहासों से वह सोता हुआ पुरुष जगाया जाकर आनन्द को प्राप्त होता है १५ यहां एक प्राचीन इतिहास को कहते हैं जिसमें कि उद्दालकऋषि और नासिकेत इन दोनों का संवाद है १६ उद्दालकमुनि अपने नासिकेत पुत्र को दीक्षा देके यह वचन कहते भये कि हे पुत्र ! तू मेरी सेवाकर १७ तब वह नासिकेत उनकी आज्ञा को अङ्गीकार करके वेद के अध्ययन में तत्पर होगया और देवताओं के समान देवताओंकेही कल्प तक उस मुनि की सेवा करता भया १८ फिर वह उद्दालकमुनि उस नियम को समाप्त करनेके पीछे स्वाध्याय में प्रवृत्त हुआ उस समय किसी दूसरे कार्यमें लगे हुये अपने पुत्र के समीप में जाकर

स्पर्श करके यह वचन बोला १६ हे पुत्र! मैं जलके स-
मीप इन्धन, कुशा, पुष्प और कलश इन सब वस्तुओं
को भूल आया हूं सो तू उनके लेनेके लिये शीघ्रही नदी
के तीर पर जा २० इसके पीछे उस नासिकेत ने वहां
जाके नदी के वेग से डूबीहुई उन सब वस्तुओं को न
प्राप्त करके वहां से लौटकर अपने पिता से कहा कि मैंने
वहां कोई वस्तु भी नहीं पाई २१ तब क्षुधा तृषासे युक्त
और क्रोध से मूर्च्छित होकर वह उद्दालकमुनि अपने
पुत्र को यह शाप देताभया कि तू अभी जाकर धर्मराजको
देख २२ तब तो पिता के वाणीरूप वज्रसे हत हुआ वह
नासिकेत अञ्जली बाँध बड़ी प्रसन्नता से कुछ वचन क-
हता हुआ प्राणों से रहित होकर पृथ्वी में गिरपड़ा २३
इसके पीछे उस पड़ेहुये पुत्र को देखकर वह मुनि शोक
से महामूर्च्छित होके यह वचन बोला कि; हाय मैंने क्या
किया ऐसा कहके और उससे मिलाप करके रोने लगा २४
उस बातको सुन सब तपोवन के निवासी मुनिलोग वहां
आये और अल्पदुःखवाले उस मुनि को निवारण कर
के स्थित होते भये २५ फिर पिता के अश्रुपात होते ही
वह महाभाग नासिकेत उठकर खड़ा होगया और सब
प्रकार से भीजा हुआ स्वप्न देखकर जागे हुयेके समान
उस पुत्र को देखकर यह पूछता हुआ कि; हे पुत्र! तैंने
वहां जाकर जो कुछ देखा है वह सब हमारे आगे वर्णन
कर २६। २७ नासिकेत बोला हे पिता! जब मैं वहां
पहुँचा तब वह यमराज देवता मुझसे कहने लगे कि; हे
महर्षे! तुम मरे नहीं हो क्योंकि तेरे महातपस्वी पिता

ने कुपित होकर केवल यही वचन कहा था कि तू यम-
राज को देख २८ इसके पीछे मैंने कहा कि मैं तत्त्व में
निष्ठबुद्धिवाले उस धर्मात्मा महर्षि के वचन को पूरा क-
रनेके लिये यहां तुम्हारे समीप में आकर प्राप्त हुआ हूं
सो यहां मुझको क्या कर्तव्य है तब वह धर्मराज बोले
कि; हे सौम्य! तैंने मुझको देखलिया अब तू जल्दी
चलाजा क्योंकि तेरा पिता शोच करताहै हे पुत्र! इसके
असत्य करनेको कोई भी समर्थ नहीं है हे महर्षे! अब
लौटकर जाओ २९। ३० और जो तू कहै वह मैं तेरा
प्रिय करूं प्रिय अतिथि के वाञ्छित वर को मांग तब
मैं भी आनन्दयुक्त होकर उस धर्मराजसे कहने लगा ३१
कि हे भगवन्! जो आप मेरे ऊपर प्रसन्न हुये हैं तो
मुझको गोदान करनेवालों के स्थानों को दिखाओ फिर
वह धर्मराज मुझको अपने विमान में बैठाकर अत्यन्त
अद्भुतलोकों को दिखावता भया ३२ वहां मैं वैडूर्यमणि
और सूर्यकीसी कान्तिवाले हज़ारों ऐसे विमानों को
देखता भया ३३ जो दिव्य रत्नों से विचित्र अप्स-
राओं के समूहों से सेवित सम कामनाओं की समृद्धि
वाले और इच्छापूर्वक चलनेवाले स्थिररूप वर्तमान
थे ३४ और शहद, दूध, घृत, दधि की बहानेवाली
नदियां और भक्ष्यभोज्यादि पदार्थों के हज़ारों पर्वत
इन सबको देखकर मैं बड़ा आश्चर्ययुक्त होकर धर्मराज
से यह वचन बोला कि, यह दूध, दही, शहद और घृत
की नदी सदैव प्रतिदिन प्राप्त रहती हैं और किसके
लिये हैं ३५। ३६ तब धर्मराजजी ने कहा कि जो गौ

के रसों के देनेवाले साधुजन हैं उनके लिये भोगने को यह नदियां हैं गौके दान करनेवाले मनुष्यों के यह शोक संतापसे रहित अचललोक हैं और उन्हींके लिये यह दिव्य नदियां भी हैं ३७ ऐसे धर्मराज के वचन को सुन कर मैं फिर बोला कि गौ को नहीं देनेवाला पुरुष गोदान करनेवालों के लोकों को कैसे प्राप्त होय ३८ यमराज बोले गौओं के अलाभ में जो पुरुष यथार्थ विधि से तिलधेनु अर्थात् तिलों की धेनु बनाके दान करता है वह निस्संशय सब कामनाओं को प्राप्त होजाता है ३९ गौ से ही दुर्गम स्थानों से तरता हुआ देवताओं की नदी पर आनन्द करता है और सब कामनाओं की प्राप्त करनेवाली दिव्य नदियों पर भी विहार करता है ४० और जो तिलोंके भी अभाव में जल की धेनुको यथार्थ रीति से देता है वह भी निस्सन्देह सब कामनाओं को प्राप्त होता है ४१ जो मनुष्य यथार्थविधि से घृतधेनु तिलधेनु और जलकी धेनु को ब्राह्मणके अर्थ दान देता है वह स्वर्गसे नहीं गिरताहै ४२ और जितेन्द्रिय शान्त और वैष्णव ऐसे ब्राह्मण को यथार्थविधि से दान देके मनुष्य विष्णुके लोक में प्राप्त होता है ४३ जो धर्मात्मा पुरुष पिता और पितामहादिकों की घृतधेनु से रक्षा करता है वह अपनी इक्कीस पीढ़ियों की रक्षा करता है ४४ इस रीति से सब पुण्यफलों को धर्मराज मुझको दिखाकर बारम्बार कहताभया कि; हे तात! तू दान करने में प्रवृत्त हो और विशेष करके गौ और रसों का दान दे ४५ जो पुरुष श्रेष्ठ गुणवाली स्वर्णशृङ्गी सवत्सा

कांस्यपात्र की दोहनी समेत गौ का दान देता है वह जितने उस गौ के शरीर पर रोम हैं उतने ही वर्षों तक स्वर्ग में सुख भोगता है ४६ और वशीभूत भारवाहक बलवान् तरुण अवस्थायुक्त और वीर्यसंयुक्त कुटुम्ब भर की आजीविका करनेवाले बैल को जो मनुष्य दान करता है वह पुरुष दश गोदान देनेवालों के लोकों को प्राप्त होता है ४७ हे तात! इस प्रकारसे धर्मराज के वचनों को सुनकर मैं शिरसे उनको प्रणाम करताहुआ और उनकी आज्ञा लेकर तुम्हारे चरणों में फिर प्राप्त हुआहूं ४८ यह आपका शाप भी मेरे अनुग्रह केही लिये है इसी अनुग्रह से मैंने वहां जाकर धर्मराज का दर्शन किया और वहां गौओंके दान की पुष्टिको देखकर मैं निस्सन्देह गौकाही दान दूंगा ४९ भगवान् की प्रसन्नता के लिये और वैष्णवलोकोंकी प्राप्ति होनेके निमित्त वैष्णव ब्राह्मणोंकोही गौका दान देना चाहिये हे विद्वन्! इस प्रकार से नासिकेत के पूछने से धर्मराज ने मनुष्यों के इस पुण्यफलका वर्णन किया ५० भीष्मजी बोले सब मुनि लोग उस सब वृत्तान्त को सुनकर आश्चर्यको प्राप्त होतेभये और गौओं के माहात्म्य की स्तुति करते हुये अपने २ स्थानों को गये ५१ हे कौन्तेय! गौओं के इस उत्तम माहात्म्य को सुनके तुमको भी गौओं की प्रदक्षिणा करनी चाहिये और गौएँ भी देनी चाहिये ५२ शीलवान् सवत्सा कांसे की दोहनी और सुवर्ण के सींग इन सबसे युक्त गौओं को भगवान् के भक्त ब्राह्मणों को देकर मनुष्य

मोक्षरूप पवित्र लोकों को प्राप्त होते हैं ॥ ५३ ॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायांगोदानन्नाम
एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

बाईसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि; हे पितामह! जो सब दानों में महा-उत्तम बड़े फलवाला दान तात्कालिक प्रीतिका करनेवाला है उसको मुझे समझाइये १ भीष्मजी बोले कि; हे युधिष्ठिर! यही प्रश्न मैंने नारदजी से भी पूछाथा उन्होंने जैसा कि मुझसे कहाहै वह मैं तुझे सुनाताहूं तू चित्त लगाकर सुन २ अर्थात् नारदजी ने कहा कि हे नरेश्वर! अन्नदान से बड़ा कोई दूसरा दान नहीं है यह सम्पूर्ण चराचर जगत् अन्नही से धारण किया जाता है ३ अन्न प्राणियोंका प्राण है ऐसा बृहस्पतिजीने कहा है हे राजन्! इसी हेतुसे पण्डितजनों ने अन्नदान देनेवाले पुरुषको सर्वस्वदान अर्थात् सब वस्तुओंका देनेवाला वर्णन किया है ४ धनवान् अथवा नीतिज्ञ पुरुष जो इस संसार में अन्नका देनेवाला है वह मरनेके पीछे दूसरे जन्म में आयुष्मान् बलवान् और सुखी होता है जो पुरुष समाहित चित्त से अतिथि अभ्यागतों के निमित्त नित्य दान देता है वह ब्रह्मलोक में प्राप्त होताहै यह पराशर मुनि ने कहा है ५।६ अन्न के समान अन्य दान नहीं है इसी कारण से साधुजन विशेष करके अन्नदान के देनेकी इच्छा करते हैं ७ जो पुरुष अत्यन्त पाप करके पीछेसे अन्न का दान देता है वह सब पापों से

विमुक्त होकर स्वर्गलोक में प्राप्त होताहै ८ जैसे खेती करनेवाले पुरुष सुन्दर वर्षा होनेकी आशा करते हैं उसी प्रकार पितरलोग भी यही आशा किया करते हैं कि हमारे पुत्र पौत्रादि में से कोई तो अन्नदान देवेगा ९ और जो पुरुष अच्छेप्रकार से सिद्धान्न को अपूर्वी अपरचित और शान्त ऐसे अभ्यागत के अर्थ अन्नदान करता है वह उत्तम गति को प्राप्त होता है १० और अभ्यागत से गोत्र आचरण स्वाध्याय और शास्त्रों के श्रवणादिकों को नहीं पूछे किन्तु ब्राह्मण से याचना किया हुआ पुरुष विनाही विचार किये अन्न को देदे ११ दुष्ट वृत्तान्तवाला अथवा उत्तम वृत्तान्तवाला मूर्ख तथा पण्डित कैसाही होय जो विश्वेदेव के पूजन के अन्त में आवे उसको स्वर्गमें प्राप्त करनेवाला अतिथि जाने १२ अपरचित वा परचितमित्र को और सुहृद् वा शीलयुक्त ब्राह्मण को नित्यही भोजन करवावे १३ और जो चारों वेदों में से कुछ पढ़ाभी न हो सर्वान्न भोजन करनेवाला सब वस्तुओं का बेंचनेवाला ऐसा भी ब्राह्मण होय परन्तु गायत्रीमात्रही जाननेवाला हो ऐसा भी ब्राह्मण उत्तम है १४ सब जीवों के हृदय में ईश्वर स्थित रहता है इस कारण अभ्यागत में भी यही भाव करे कि ईश्वर ही यहां आया है १५ चरण दाबना, शिर मलना, दान मान करना, पूजनपूर्वक मधुरवचन कहना इन सब बातों से उस अभ्यागत ब्राह्मण को पूजना चाहिये १६ और

१—ॐकारं पितृरूपेण गायत्रीमातरं तथा। पितरौ यो न जानाति स विप्रस्त्वन्यरेतजः ॥ १ ॥

अच्छेप्रकार से श्रद्धायुक्त होकर ब्राह्मण के लिये अन्न का देनेवाला पुरुष स्वर्ग में निवास करता है और देवताओं से भी अत्यन्त पूजित होता है १७ और प्राप्त होनेवाले वैष्णव ब्राह्मण को विष्णु भगवान् प्रसन्न होंय ऐसा वचन कहकर सुन्दर मिष्टान्न का भोजन करवावे १८ क्योंकि क्षुधा से युक्त हुआ पुरुष अच्छीरीति से किसी को नहीं जानताहै और बारम्बार क्षुधाग्नि से जलता है और अन्धता, बधिरता, मूर्खता और नपुंसकता यह सब बातें भी उसमें होजाती हैं १९ और शान्तरूप वैष्णव तो विष्णुही के भाव में निष्ठा रखनेवाले ब्राह्मणों को विष्णु भगवान् प्रसन्न होंय ऐसा कहकर भोजन करवावे २० मुक्ति की इच्छा रखनेवाला पुरुष ब्राह्मण को सुन्दर घृत मिष्टादि के सिद्धान्न को दही के समेत भोजन करवावे २१ जो अल्पबुद्धि पुरुष कथा को सुनकर भी ब्राह्मणों को अन्न का दान नहीं देताहै वह सर्पादिक योनियों में प्राप्त होकर घोर नरक में पड़ता है २२ जो गृहस्थी पुरुष अभ्यागतों से प्रेम रखता है और संतोष में युक्त होकर जितेन्द्रिय है और तप स्वाध्याय में अनुरक्त है उसको स्वर्ग दूर नहीं है २३ भीष्मजी बोले कि इस प्रकार नारदजीके वचनों को सुनकर मैं अन्नदान को करतारहा उसी अन्नदान के प्रभाव से त्रिलोकी के ऐश्वर्य को प्राप्त होताभया २४ हे राजेन्द्र, युधिष्ठिर! इस हेतुसे तू अपने अन्नदान को कर हे मनुष्येन्द्र! निश्चय करके अन्न के दान देनेसे प्राणोंका भी दान हो जाता है २५ प्राणों के दानसे उत्तम दूसरा कोई दान

नहींहै मैंने लोमशऋषि से भी इसकी प्रशंसा सुनी है २६ हे पुरुषों में सिंहरूप! पूर्वसमय में राजा शिविने कपोत के निमित्त अपने प्राणों का दान देके जो कुछ प्राप्त किया है उसी गति को परलोक में अन्न का देनेवाला भी पाता है २७ जो पुरुष श्रद्धायुक्त होकर अतिथि अभ्यागतों को अन्न देताहै वह देवताओं सेभी दुर्लभ परम स्थान को प्राप्त होताहै २८ हे युधिष्ठिर! अन्न प्राणरूप है इस लिये तूभी अन्न का दानकर २९ जो पुरुष घृत से सिद्ध कियेहुये दधि से युक्त और दूध से शोभितहुये अन्न को उत्तम ब्राह्मण के अर्थ वर्ष दिनतक दान देता है वह फिर इस लोक में लौटकर नहीं आता है अर्थात् सब स्वर्गादिक लोक उसको खुले हुये रहते हैं ३० और स्नानपूर्वक चन्दनादि लगायेहुये आभूषणोंसे शोभित हुये भी पुरुष को अन्नके विना सुख और संतोष नहीं होते हैं ३१ भीष्मजी बोले कि यहां एक प्राचीन इतिहास को कहताहूं जिसमें कि किसी भिक्षुक का और बहुल का संवाद है ३२ कोई भिक्षुक प्रयागजीमें संन्यास धारण कर बहुत कालतक अन्न को त्यागके व्रत को धारण करताभया और एक बटुनाम शिष्य उसकी सेवा करता था ३३ सो क्षुधा से दुखित हुये उस अपने गुरु मुनि से यह बात पूछता भया कि हे मुने! क्षुधारूपी व्याधि की वेदना मेरे आगे वर्णन कीजिये ३४ भिक्षुक बोला खड्ग, शक्ति, तोमर और बाण इन सबसे भेदन करने में जो पीड़ा होती है उसको भी इस क्षुधा ने जीता है अर्थात् इन शस्त्रों के घातसे भी अधिक पीड़ा होतीहै ३५

श्वास, कास, क्षयीरोग, परिश्रम, ज्वर और मृगी आदिकरोग इन सब से उत्पन्न हुई व्याधि तो सहनकरके जीतीभी जाती हैं परन्तु क्षुधा इन सबसे दुर्जया है ३६ सुवर्ण व रत्नादिकों से विचित्राङ्गवाले मुकुटधारी कुण्डलों को पहरेहुये भी क्षुधा से पीड़ित होनेवाला पुरुष ऐसे शोभित नहीं होता है जैसे कि आभूषणों से भी अलंकृत प्रेत नहीं शोभित होता है ३७। ३८ जैसे कि पृथ्वी में प्राप्त हुआ जल सूर्य की किरणों से सूखजाता है वैसेही शरीर में स्थितहुये धातु जठराग्नि करके शोषित होजाते हैं ३६। ४० और पूर्व, पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तर दिशाको भी क्षुधा से युक्त हुआ पुरुष नहीं जान सक्ता है और बारम्बार क्षुधा की अग्नि से भस्म होता है ४१ मूकता, बधिरता, पंगुता, शौच का भ्रंश और अमर्यादा इन सब उपाधियों को क्षुधा उत्पन्न करदेती है ४२ क्षुधा से पीड़ितहुये पुरुष पिता, माता, पुत्र, भार्या, दौहित्र, भ्राता और बन्धुओं के समूह इन सबकी हिंसा करडालते हैं ४३ और अच्छीरीति से पिता गुरु और देवतादिकों का भी पूजन नहीं करता है और क्षुधा से कृशित मनुष्य अपने कार्य करने को भी समर्थ नहीं हो सक्ता है ४४ हे वटो! क्षुधा से ऐसे २ प्रकार के दुःख उत्पन्न होते हैं और हे पुत्र! तृप्तहुये पुरुष के यह सब बातें विपरीत होजाती हैं ४५ वटु बोला हे तात! क्षुधा की जो वेदना है वह आपने मुझसे वर्णन करी मैं इस के सिवाय अन्न के भी माहात्म्य को आपसे सुनना चाहता हूं ४६ भिक्षुक बोला संसार में अन्न से विशेष न

हुआ न होगा न अब कोई है सब जगत् अन्नकेही मूल्य वाला है और अन्नमें ही स्थित है ४७ पितृ, देव, दैत्य, यक्ष, राक्षस, किन्नर, मनुष्य और पिशाच यह सब अन्न के ही आश्रय हैं ४८ इस हेतु से सबप्रकार से अन्न के दान का करना अवश्य चाहिये अन्न को देनेवाला पुरुष प्रसन्नता को प्राप्त होताहै और अचल परमगति को पाता है ४९ और कन्यादान, वृषोत्सर्ग, तीर्थसेवा और देवपूजन यह सब अन्नदान की सोलहवीं कला के भी समान नहीं हैं ५० हाथी घोड़े और रथ इन सब के समूह अथवा मणि, रत्न, पृथ्वी यह सबभी अन्नदान की सोलहवीं कला के योग्य नहीं हैं ५१ अन्नमेंही प्राण, बल, तेज, धृति और स्मृति यह सब और अन्नसेही बीज की उत्पत्ति होकर अन्नसेही सब कुछ धारण होता है ५२ । ५३ और पुण्डरीक अश्वमेध षोडशिकयज्ञ अग्निष्टोमयज्ञ और त्रिरात्रिकयज्ञ यह सब और इनके विशेष जितने यज्ञादिक हैं वह सब और सुन्दर विस्तार वाले राजाओंके भी यज्ञ अन्नही से प्रवृत्त होते हैं ५४ और पर्वत, वन, द्वीप और समुद्र इन सबों समेत जो सम्पूर्ण पृथ्वी का दान है वह भी उसीके समान है जो प्रतिदिन अन्न का दान देताहै हे वत्स ! यह तुझे मैंने बहुत थोड़ा थोड़ा ही सुनाया है ५५ हे द्विज ! इस हेतुसे जो आप भक्षण करताहै वही क्षुधा से पीड़ितहुये अन्य मनुष्यों को भी देना चाहिये ५६ भीष्मजी बोले हे कौन्तेय ! वह वटु उस भिक्षुक के उपदेश करके क्षुधा से पीड़ित जनों के अर्थ सदैव अन्न देताभया सो इस हेतु से

हे युधिष्ठिर ! तू भी सदैव अन्न का देनेवाला हो ५७ अन्न के दान देनेसे ब्रह्महत्यादिक पाप भी नष्ट होजाते हैं और ज्ञाति बन्धुओंके भी बध का पाप नाश होजाता है और जो पुरुष रक्षा के धर्म से आजीविका करते हैं उन का तो क्याही कहना है ५८ अन्न को अश्वमेधयज्ञ के समान करके दक्षिणा समेत ब्राह्मणों के अर्थ दे और हे महाराज ! विशेष करके क्षुधा से व्याकुल होनेवालों को तो अवश्यही दे ५९ जिसने कि दक्षिणासमेत यज्ञों का पूजन किया है उसने मानों सब दान दिये हैं और अन्न के दान करनेसे सब देवता नित्य तृप्त होते हैं ६० जो पुरुष क्षुधावाले पुरुषों को अन्न देता है वह सब तीर्थों में स्नान कियेहुये के समान है और व्रती वा पण्डित हो-कर सबका पूजन करनेवाला है ६१ और जो पुरुष श्रद्धापूर्वक अन्न का दान करता है वह ब्रह्मा के लोक में ब्रह्मा केही संग आनन्द करता है ६२ जो पुरुष श्रद्धा समेत श्राद्धकाल में इस अन्नदान के माहात्म्य को सु-नेगा उसके देवता ऋषि और पितरलोग सब तृप्त होजायँगे ॥ ६३ ॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायामन्नदानंनाम

द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

तेईसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि; हे पितामह ! बड़े २ ऋषिलोग तिलों को अत्यन्त पवित्र कहते हैं सो उन तिलों के दान में जो फल है वह आप मुझसे वर्णन कीजिये १ भीष्मजी

बोले हे युधिष्ठिर! सब दानों में तिलों का दान उत्तम कहा है यह दान सब पापों का हरनेवाला होकर बड़ा पवित्र है और स्वर्ग का देनेवाला है २ यहां एक प्राचीन इतिहास को कहताहूं जिसमें कि महात्मा धर्मराज और ब्राह्मण का संवाद है ३ हे युधिष्ठिर! मध्यदेशवर्ती गङ्गा यमुना के मध्य में यामुन पर्वत के नीचे एक ब्राह्मणों का बड़ा ग्राम है ४ वहां पर्णशालनाम बहुत से जल समिध् और कुशाओं से युक्त एक ब्राह्मण बसता था और बहुत से विद्वान् ब्राह्मण भी वहां बसते थे ५ इसके अनन्तर धर्मराज काले और पिङ्गलवर्ण युक्त लालनेत्रों समेत ऊर्ध्वरोमवाले काक के समान जङ्घा, नेत्र और कानवाले ऐसे अपने दूत से कहताभया कि तुम ब्राह्मणों के ग्राम में जाओ वहां अगस्त्य गोत्र में उत्पन्न होनेवाला शर्मिलनाम एक ब्राह्मण है उसको ले आओ६।७ और उसके ही समीप उसीके गोत्रमें उत्पन्न होनेवाले दूसरेको न लाना क्योंकि वहां तुल्यरूप तुल्य नाम गुणवाला एक अन्यभी है ८ यह सुनकर वह धर्मराज का दूत वहां जाकर उलटाही करताभया अर्थात् जिसको कि धर्मराज ने निषेध कर दिया था उसीको वह अज्ञानता से लेआया ९ उस आयेहुये द्विजको धर्मराज देखकर उसकी पूजा करके यह वचन बोला कि इनको लेजाओ और दूसरे को लाना चाहिये १० यह सुनकर आकाशमार्गसे अत्यन्त दुःखी होकर वह ब्राह्मण धर्मराज से बोला कि, जो मेरा शेष काल बाक़ी रहाहै उस समय तक मैं इसी स्थान में रहूंगा ११ धर्मराज ने

कहा कि काल के व्यतीत होजाने विना मैं यहां किसी को भी नहीं बुलाताहूं और जो पुरुष कुछभी धर्म को त्याग देता है उसके लोकोंको भी मैं जानताहूं १२ हे द्विजसत्तम! तुम अभी अपने घर में जाओ इसके सिवाय जैसा आपको कर्तव्य है उसको कहो १३ तेरा कौनसा प्रिय करूं ब्राह्मण बोला हे धर्मराज! जिस बड़े कर्म को करके उत्तम फल होता है उसको मुझसे कहो क्योंकि तुम्हीं धर्माधर्म के निश्चय में लोकों के प्रमाण हो १४ धर्मराज बोले कि यम यम सुनकर मनुष्य वृथा कांपा करता है जिसने अपने आत्मा को वश में किया है उसीको यम कहते हैं १५ अक्रूरता, क्षमा, सत्य, अहिंसा, दम, कोमलता, दया, प्रसाद, माधुर्य और संतोष यह दश यम अर्थात् योगाङ्ग के संयम और नियम हैं १६ शौच, इज्या अर्थात् पूजन करना, दान, स्वाध्याय, इन्द्रियोंका निग्रह, व्रत, उपवास, मौन और स्नान यह दश तो नियम हैं १७ इन यम और नियमों करके जो पुरुष आत्मा का संयम करता है हे ब्रह्मन्! वह मुझको देखे विनाही ब्रह्मलोक में प्राप्त होता है १८ अब तुम अन्य२ गुप्त धर्मोंको भी मुझसे सुनो कि तिल भी निस्सन्देह अत्यन्त पवित्र हैं यह तिल प्रथम कश्यप महर्षि के शरीरों से उत्पन्न हुये हैं इसीसे दिव्यभाव को प्राप्त होकर दान देनेमें उत्तम कहे हैं १९। २० तिल भक्षण करने के योग्य हैं विधिपूर्वक हवन करने के योग्य हैं और इस संसार में कल्याण की कामनावाले पुरुषों को ब्राह्मणों के अर्थ तिलों को दान देना चाहिये २१

हे द्विजोत्तम, महामते! माघ महीने के कृष्णपक्ष में गो-
वर से चौखूंटा मण्डल बनाकर उस पर नवीन वस्त्रों को
और काले मृगचर्म को बिछावे उस बिछे हुये वस्त्रपर
एक द्रोण अर्थात् १२॥ सेर तिलों को स्थापित करे
उस पर अष्टदलकमल बनावे परन्तु उस कमल की
डण्डीकी बहुत उत्तम शोभा बनावे और उसी डण्डी
में १२॥ माशे सुवर्ण को स्थापित करे २२। २४ और
इन्द्रनीलमणि महानीलमणि और मोती आदिकों से
शक्ति के अनुसार गन्धाक्षत पुष्पादि करके उस पद्म का
आराधन करे २५ और ६४ तोले तेल ६४ तोले घृत
सवातीनसेर दही इन सबको भी उसके समीप स्थापित
करे और १६ पात्रों को भी स्थापित करे २६ इस प्रकार
से उस पद्मकमल का आराधन करके उस सुन्दर तिल
द्रोण का आराधन करे और हे राजा! प्रथम एकदिन
दो दिन तथा तीन दिन तक तिलोंहीं का आहार करे
अथवा उपवास व्रत करे इस रीति से वासुदेव भगवान्
को स्मरण करता हुआ यह वचन कहे २७। २८ कि
हिरण्यगर्भ अर्थात् सब विराट्रूप अमृतरूप भूतगर्भ
और विश्वेश ऐसे भगवान् को मैं नमस्कार करता हूं
और कमल की डण्डी में स्थित सब शक्तियों से युक्त
ऐसे भगवान् को हाथ जोड़के बारम्बार नमस्कारकर बड़े
जितेन्द्रिय शान्तचित्त प्रसन्नात्मा वेदज्ञ रागद्वेषरहित
और वैष्णव इत्यादि सबगुणों से युक्त ब्राह्मण के अर्थ
यथायोग्य शास्त्र की विधि से वह तिलों में बनाया हुआ
पद्म बड़े विधान से देना चाहिये और माधव देव प्रसन्न

हो ऐसा स्मरण भी करतारहै २६। ३४ अर्थात् बड़ी पवित्रतापूर्वक उस तिलों से बनायेहुये पद्म को दे दे और हे हिरण्यगर्भ, देव, पद्मनाभ, जनार्द्दन, हे हिरण्याक्ष, गुणों के धारण करनेवाले, सर्वदेव, महेश्वर! धनधान्य की सम्वृद्धि से युक्त सब दुःखों से रहित पुत्रपौत्रादि संयुक्त और दासदासियों समेत ऐसा मुझको करो और हे परमउदार, भगवन्! मुझको अपना भक्त चिन्तवन करो ३५। ३७ वासुदेव सनातनदेवेश भगवान् को इस प्रकार प्रसन्नकर सम्पूर्ण संपत्ति की सम्वृद्धि के निमित्त उस तिलों से बनाये पद्म को ब्राह्मण के अर्थ देवे ३८ जो पुरुष सावधानी से इस प्रकार से तिलमय पद्म को देता है वह सब जीवों समेत नरक को नहीं देखता है ३६ वह पवित्रात्मावाला पुरुष धर्मात्मा है पिता पितामह और प्रपितामह इन सबको जबतक संसार है तबतक पवित्र करता है ४० धर्म की वाञ्छावाला पुरुष धर्म को धन की इच्छावाला धन को और मोक्ष की इच्छा करनेवाला मोक्षको भी निस्सन्देह प्राप्त होता है ४१ ब्राह्मण का मारनेवाला पिता का मारनेवाला गुरुशय्या पर प्राप्त होनेवाला और सब प्रकारके पापों में रत पुरुष भी निस्सन्देह सब पापों से छूटजाता है ४२ पितर लोग वंशके बढ़ानेवाले पुत्र की इच्छा करते हैं और इस कीभी परमइच्छा करतेहैं कि हमारे वंश में होकर कोई तो तिलपद्म को करेगा ४३ और जो कोई राजा धन का पति होकर अनेक प्रकार की सम्वृद्धिवाला है और जीवों पर धर्म करनेवाला है वह राजा जो विधिपूर्वक वस्त्र,

आभूषण, बाहन, सुवर्ण, ग्राम और क्षेत्रादिकों से आराधन कर ब्राह्मण का पूजन करताहै उसको जो फल मिलता है वही फल तिलों के पद्मदान देनेवाले को भी होता है ४४। ४५ इन दोनोंमें निस्सन्देह समान फल है इसमें विचार न करना चाहिये और जो धर्मात्मा पुरुष ब्राह्मण के निमित्त श्रद्धासमेत तिलपद्मदान देताहै इसके फल का अन्त नहीं है इसकी महिमा को मनुष्य सैकड़ों वर्ष तक भी कहनेको समर्थ नहीं है ४६। ४७ हे द्विजो-त्तम ! जो शक्ति के अनुसार तिलों का दान देता है वह उसी तिलदान से निस्सन्देह सब कामनाओं को प्राप्त होता है ४८ काली मृगछाला में तिलों को स्था-पित कर घृत, मधु, मिष्टान्न और सुवर्ण इन सब समेत जो तिलों का दान ब्राह्मण को देता है वह सब पापों से छूट जाता है और सर्वात्मा करके सदैव जलदान करना चाहिये ग्राम में नगर में अथवा जलरहित मार्ग में जो पुरुष रमणीक प्रपा अर्थात् प्याऊ को बनवाता है वह उस उत्तमगति को प्राप्त होता है जो इसलोक परलोक दोनों में परम दुर्लभ है ४९। ५१ इस हेतुसे बा-वड़ी कुए और तालाब इनको बनवावे और जीवों के हित की इच्छा करनेवाले को बहुत सुन्दर पवित्र प्याऊ अवश्य बनवानी योग्य है ५२ जो पुरुष सम्पूर्ण प्रकार के शुद्धान्न को पात्र में स्थापितकर दही घृत समेत दूध के संयोगसे विधिपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन करवाकर सुवर्ण का दान देवे और सुन्दर शीतलजल का पान करावे वह भी परम उत्तमगति को प्राप्त होजाता है ५३। ५४

और शीत, वायु, घाम इनसे रक्षा करनेके निमित्त जो पुरुष ब्राह्मण को छत्रदान करता है वह सब व्याधियों से रहित होकर बड़ी लक्ष्मियों समेत पुत्रों को प्राप्त होता है ५५ और किसीका उपकार करके उसके घरको भी आच्छादित करादेता है अथवा विवाह करा देता है वह दयावान् पुरुष नानाभूषण जाली झरोखे आदि अनेकरत्नों से विचित्र विमान में स्थित होकर इन्द्रलोक में प्राप्त होता है और अप्सराओंके गणों से सेवित होताहै ५६। ५७ और जो घाम से जलतेहुये पुरुष को चर्ममयी उपानत् अर्थात् जूता पहराता है उस को ग्रीष्मऋतु में होनेवाला किसी प्रकार काभी दाह नहीं होताहै ५८ और हे विप्रेन्द्र! वह पुरुष उत्तम घोड़े से युक्त सुवर्ण रत्नों से अलंकृत सवारी को प्राप्त होता है ५९ जो पुरुष तापने के लिये ब्राह्मणों को काष्ठ देता है वहभी सब प्रयोजन सिद्ध करके तेजस्वी होताहै ६० जो पुरुष हेमन्त तथा शिशिरऋतु में पवित्र अग्नि सब जनों के तापने को देता है वह पवित्र गतिको प्राप्त होता है ६१ जो चन्दन, अगुरु और धूप इनको ब्राह्मणों के अर्थ देता है अथवा ताम्बूल कर्पूरादिक देता है वह स्वर्ग में प्राप्त होताहै ६२ और तिल, सुवर्ण, जल, दीपक और अन्य प्रतिग्रहदानादिक यह सब पुण्यकारी दान स्वर्ग की इच्छाकरनेवाले श्रेष्ठजनों के सुन्दर स्थापित कियेहुये धन हैं ६३ और संसार में जो कुछ ईप्सित वस्तु अथवा अन्य २ प्रिय हैं वह सब हित की इच्छा करनेवाले जन को ब्राह्मणों के अर्थ देना चाहिये ६४

भीष्मजी बोले कि वह ब्राह्मण धर्मराज के ऐसे वचनों को सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और अपने घर को आया अर्थात् धर्मराज के दूतों ने घर में पहुँचादिया इसके पीछे वह ब्राह्मण धर्मराज के कहेहुये वचनों के अनुसार सब करता भया ६५ हे राजेन्द्र ! इस हेतुसे तूभी तिल-दान करने में प्रवृत्त हो इन तिलोंकेही दान से स्वर्ग मोक्ष पर्यन्त सब कुछ प्राप्त होजाता है ६६ हे राजन् ! वासुदेव भगवान् का उद्देश करके यत्नसे वैष्णव ब्राह्मणों को सब दान दे ६७ इस तिलदान के सम्यक् हितवाले माहात्म्य को तथा उसके इस फल को और धर्मराज के वचन को सुन कर और साधुजनों का माना हुआ मान के वह ब्राह्मण अपने बन्धुओं समेत तिलोंकेही दान से फिर स्वर्ग को प्राप्त होता भया ॥ ६८ ॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायांतिलप्रदानमाहात्म्यं नामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चौबीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि; हे पितामह ! जो मनुष्य किसी दूसरे की गौको हरकर फिर ब्राह्मण के अर्थ देताहै तिसके भी दान का जो फल है उसको भी मुझसे कहो १ भीष्म जी बोले, हे राजन् ! जो मनुष्य किसीकी गौको हर कर दूसरे ब्राह्मण को दान करता है उसका पुण्य फल कुछभी नहीं है किन्तु नरकमें उलटा आप पड़ताहै २ यहां एक प्राचीन इतिहास को कहताहूं जिसमें कि वासुदेव का और महात्मा नृग राजाका संवाद है ३ हे राजन् !

यह माधव भगवान् पूर्व में द्वारकापुरी में सिद्ध साध्य देवता और पुण्यकर्मी मनुष्यों समेत बसते थे ४ और उसी देश में एक बड़ाभारी कूप था वह कूप तृण बेल और वृक्षादिकों से ढका हुआ किसी समय सबको जानपड़ा ५ वह प्राचीन पाषाणादिकों का बना हुआ बड़े पाताल के समान दुर्भर था उस कूप में स्थित होनेवाले एक कृकलास किरलकीट को उस कुएपर जानेवाले लोगों ने देखा ६ तब तो बहुतसे लोगों ने उसके निकालने को अनेक यत्न किये तबभी न निकला फिर उस पर्वताकार कीट में अनेक चर्ममयी रस्सियां बांध कर बड़े परिश्रम से उसे निकालनेलगे परन्तु उसको ऊपर निकालने को समर्थ नहीं हुये ७ तब सब जाकर श्रीकृष्णजी से निवेदन करनेगये यह सुनकर वहां देवकीनन्दन भगवान् आवते भये ८ और वह सुरेश्वर भगवान् उस किरलकीट का उद्धार करते भये अर्थात् उनके निकालने से वह कीट बड़ी सुगमता से निकल आया इसके अनन्तर उस वासुदेव भगवान् करके निकालेहुये कीट से जब पूछा तब वह कीट उन वासुदेव भगवान् से हाथ जोड़कर अपने हजारों यज्ञ करनेवाले पूर्व आत्मा का वर्णन करनेलगा ९। १० उसके सब वृत्तान्त को सुन कर माधव भगवान् बोले कि; तैंने शुभ कर्मही किये हैं पाप कोई नहीं किया है तो ऐसी दुर्गति को कैसे प्राप्त होगया हे राजन्! इस सब वृत्तान्त को मेरे आगे वर्णन कर ११ प्रथम तैंने लाखों किरोड़ों असंख्य शुभकर्मों को किया है ऐसा हमने सुना है सो उन महाशुभ यज्ञा-

दिक कर्मों के फल कहांगये १२ राजा नृग बोला हे माधवजी! एक ब्राह्मण की भूली भटकी हुई गौ मेरी गौओं के बीचमें आमिली थी उस अन्य ब्राह्मण की विना जानीहुई गौको मैंने एक अन्य ब्राह्मण को दान कर दीन्हीं थी १३ फिर वह ब्राह्मण मेरे घरसे दान कराकर अपने घर को गौ लेकर जाता था कि दैवयोग से उस पूर्व गौ-वाले ब्राह्मण ने अपनी गौको पहिंचान लिया और उससे बोला कि, यह तो मेरी गौहै १४ तू कहां लियेजाता है उस ने कहा कि, मैं अभी राजा के घर से दान करवाकर लाया हूं तब वह दोनों विवाद करते हुये मेरे समीप आये और मुझसे बोले कि, आप देनेवाले हैं या हरनेवाले हैं १५ फिर मैं उस एक गौ के बदले में उस पूर्व गौवाले ब्राह्मण को हज़ार गौ देनी कहीं तबभी उसने यही कहा कि मैं राजा का प्रतिग्रह नहीं लूंगा केवल अपनी वही गौ लूंगा इसके बदले हज़ार गौ न लूंगा १६ तब मैंने उस वर्तमान में दान लेनेवाले ब्राह्मण से कहा कि, तुम्हीं इसके बदले हज़ार गौ लेकर उसकी गौ उसको देदो उसने भी नहीं मानकर यही उत्तर दिया कि यही मेरी धेनु धन्य है बहुत दूधवाली तरुणी और रूपसंयुक्त है सो मुझ को इसका देना उचित नहीं है ऐसा कह कहकर वह दोनों अपने २ घरों को चलेगये १७।१८ अर्थात् इस रीति से आपसमें विवाद करतेहुये वह दोनों स्पर्द्धायुक्त ब्राह्मण मेरी निन्दा करतेहुये अपने २ घरों को चलेगये २० फिर काल से अपने कर्मों के द्वारा प्रेरणा कियाहुआ मैं परलोक में धर्मराजके समीप पहुँचा २१ तब भगवान् धर्मराज ने

मेरा पूजन करके मुझसे कहा कि; हे राजन्! तेरे पुण्योंकी संख्या का अन्त नहीं है २२ जितने इस पृथ्वी पर धूलि के कण हैं और स्वर्ग में तारागणहैं अथवा जितनी बर्षा की धाराहैं उतनी गौएं आपने दीन्हीं हैं २३ परन्तु तुम से भी अज्ञानता करके एक पाप बनगया है सो चाहो प्रथम पापफल को भोगो अथवा पीछे से भोग लेना जैसी आपकी इच्छा होय सोही करो २४ हे राजेन्द्र! चाहे देवता हो वा मनुष्य हो कोई क्यों न हो सबको यहां शुभाशुभ कर्मों का फल अवश्य भोगना होता है २५ और जो कोई ऋषियों के वचन के अनुसार अपने पाप के प्रायश्चित्तको उसी मृत्युलोक में करदेता है उसका पाप उसीलोक में नाश को प्राप्त होजाता है २६ आपका पुण्य अक्षय है उसका क्षय करनेवाला कोईभी नहीं है हे नृप! इस हेतु से तुम चाहे पाप को प्रथम भोगो वा धर्म भोगने के पीछे भोगलेना २७ मैंने कहा हे प्रभो! मैं प्रथम पाप को भोगूंगा इसके पीछे शुभ फलोंको भोगूंगा क्योंकि मेरा शुभ फल क्षणमात्र के लिये क्षीण होताहै २८ इस हेतुसे मैं सज्जन पुरुषोंसे निन्दित किये हुये पापको प्रथमही भोगूंगा इस प्रकार से धर्म-राज से कहताही कहता मैं स्वर्ग से पृथ्वीतल में गिर-पड़ा २९ तब मैं अपने गिरने के समय में धर्म के कहेहुये इस वचन को सुनता भया कि पाप के अन्त में तेरा उ-द्धार करनेवाला वासुदेव भगवान् होगा ३० इसके पीछे अन्धेकूप में पड़ाहुआ मैं अपने आत्माको देखता भया और उस तिर्यक्योनि अर्थात् किरलकीट की योनि में भी

मुझको सब स्मृति बनी रही है ३१ और उस प्रकार क शाप को नहीं जानतेहुये मैंने बहुतसेभी दान किये परन्तु एकही दानके विपरीत करने से हे विभो! मुझको आप पतित जानो ३२ हे देवदेव, जगत्पते, दामोदर, हृषीकेश, पद्मनाभ, जनार्दन, नारायण, सहस्राक्ष! सबलोकों में परायण आपने मुझको इस नरकयोनि से उद्धार किया है आपका मैं अनुचर दास हूं अब मैं आपकी कृपा से स्वर्ग को जाताहूं ३३।३४ भीष्मजी बोले इसके पीछे वह त्रिलोकी के नाथ श्रीकृष्णजी से आज्ञा ले और उनको साष्टाङ्ग नमस्कार कर विमान में आरूढ़ देवरूप होकर स्वर्ग में प्राप्त हुआ ३५ जब उस विमानमें बैठकर राजा नृग स्वर्ग को चलागया तब देवताओं के भी देवता जगत्पति वासुदेव भगवान् ऐसे कहनेलगे ३६ कि किसी पुरुष को ब्राह्मण का द्रव्य कभी न हरना चाहिये ब्राह्मण का हरा हुआ द्रव्य उस हर लेनेवाले को ऐसे नाश कर देता है जैसे कि इस राजा नृग को ब्राह्मणकी विपरीत दीहुई गौ ने हनन किया अर्थात् हजारों वर्ष कीटयोनि में डालरक्खा ३७ जो पुरुष सौ १०० गौओं का दान करता है और एक को हरलेता है ३८ उसका वह एक भी गौ का हरना सौ १०० गौओं के दान को हर लेता है ब्राह्मण के अंश के द्रव्य से पुष्टहुये बलवान् वाहनादिक भी ऐसे बिलायमान होजाते हैं जैसे कि शरद्ऋतु में मेघ लुप्त होजाते हैं ३९ जलानेवाला प्रज्वलित अग्नि भी जल से शान्त होजाता है परन्तु ब्राह्मण के ब्रह्मस्वरूपी अग्नि के शान्त करने का कोई भी उपाय नहीं है४०

हठ करके ब्राह्मण के द्रव्य का भोगना सातवें कुल तकको दग्ध करदेताहै और जो पुरुष बल करके ब्राह्मण के द्रव्य को भोगते हैं उनके दश २ अगले पिछले कुल दग्ध होजातेहैं ४१ और ब्राह्मण के द्रव्य का हरनेवाला पुरुष साठहज़ार आठसौ६०८०० वर्षतक विष्ठा का कीड़ा होता है ४२ मनुष्य चाहे किसी उपाय करके पत्थर लोहे को जला सक्ता है परन्तु ब्राह्मण के द्रव्य जलाने का कोई उपाय नहीं है ४३ इस संसार में ब्राह्मण के द्रव्य से कठिन और कोई वस्तु नहीं है यह ब्रह्मस्वमन्त्र औषधादि से रहित होकर हलाहल विष के समान है ४४ विष को विष नहीं कहते हैं किन्तु ब्रह्मस्वही महाविष कहाता है क्योंकि विष तो अकेलेही को मारता है और ब्राह्मणका द्रव्य पुत्र पौत्रों समेत सबको दग्ध करदेता है ४५ वन में वृक्षों को जलाताहुआ अग्नि जड़ों को रक्षा करदेता है परन्तु ब्राह्मण का द्रव्यरूप अग्नि मूलसमेत कुल को दग्ध करदेता ४६ इस हेतुसे यह ब्रह्मस्व दावाग्नि के समान दाहवाला होकर विष के समान दुर्जय है इसलिये आत्मा के हित की इच्छा करनेवाले मनुष्य को ब्राह्मण का द्रव्य कभी न हरना चाहिये ४७ भीष्मजी बोले, वह पुण्डरीकाक्ष भुवनेश्वर भगवान् सब भूतों के पवित्र करनेवाले श्रीकृष्णजी ऐसे वचनों को कहकर द्वारकापुरी में गये ४८ हे पार्थश्रेष्ठ! पुरुषों का समागम होना कभीभी निष्फल नहीं होता है इसी से हे राजन्! वह नृग धर्मात्माभी साधु और उत्तम समागम से नरक से विमुक्त होगया ४९ यह श्रेष्ठ पुरुषों का

दर्शन, स्पर्शन, कीर्तन और संभाषण सन्तजनों को तीर्थ के समान पवित्र करनेवालाहै ५० ऐसा जानकर तुमको भी यत्नपूर्वक सन्तजनों की सदा उपासना करनी चाहिये और जो परमगति की इच्छा करते हो तो ब्राह्मण का द्रव्य कभी हरना योग्य नहीं है ५१ धर्म की अच्छे प्रकार से परीक्षा करके अपने ही द्रव्य का दान करे और पराये द्रव्य का दान देना परलोकमें नाशका करनेवाला है और विशेष करके ब्राह्मण के द्रव्य हरनेवाले दुष्टबुद्धि पुरुष की तो अत्यन्तही नष्टगति जानों ॥ ५२ ॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायांनृगाख्यानंनाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पच्चीसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि; हे पितामह! श्रेष्ठ पुरुषों के साथ बास करनेमें कौनसे गुण कहेहैं वह मुझ से वर्णन कीजिये १ भीष्मजी बोले, हे युधिष्ठिर! इस स्थानपर मैं उस प्राचीन इतिहास को तुझे सुनाता हूं जिसमें कि राजा नहुष और च्यवनऋषि का संवाद है २ हे भारत! भार्गववंश में उत्पन्न होनेवाले बड़े तपस्वी च्यवनऋषि किसी समय काम, क्रोध, राग, द्वेष, द्रोह, मद और ईर्षा इन सब को त्यागकर गङ्गा यमुना के मिलाप के मध्यजल के भीतर प्रवेश करके अपने व्रत को आरम्भ करते भये ३।४ वहां उन योग में बैठेहुये ऋषि को गङ्गा यमुना में प्राप्त होनेवाली अन्यनदियांभी पीड़ा नहीं देती भईं किन्तु उनके उत्साह को और भी बढ़ा-

वती भईं ५ वहां इनको योग में बैठे हुये बहुतसा काल व्यतीत होताभया और परम ध्यान योग करके स्तम्भरूप होकर स्थित होतेभये ६ कुछ दिन पीछे मत्स्यजीवी धीवरलोग मत्स्यादिक पकड़ने के अर्थ वहां आकर प्राप्त हुये और उस स्थानपर जल में जाल को बिछाकर जल से वहां के सब मत्स्यादिकों को खैंचने लगे ७ और बड़े बल करके उन निषादों ने उन्हीं मत्स्यादिकों के साथ उन भृगुनन्दन च्यवनजी को भी जल से बाहर खींचकर निकाला ८ उन बड़े उग्रतपस्वी तेजस्वी शरीरवाले च्यवनजी को निकला हुआ देखकर वह मत्स्यजीवी निषाद बड़े भयभीत होगये और महापीड़ित होकर शिरों से प्रणाम करते हुये यह वचन बोले ९ महाऋषे! अज्ञान से पाप करनेवाले हमलोगों पर आप कृपा करके क्षमा कीजिये और हे सुन्दरव्रत करनेवाले! हमको आप जो आज्ञा करें वही आपका प्रिय करें १० भीष्मजी बोले कि; वह मुनि बहुत से मत्स्यों के मृत्युरूप बन्धनको देखकर परम दयालुता में प्राप्त होके बड़े दुःखपूर्वक यह वचन बोले अर्थात् च्यवनजी ने कहा कि मैं मत्स्योंकेही संग में मरण वा विक्रय करने के योग्य हूंगा इन्हीं मत्स्यों के संग बास किये हुये मुझको इन दुःखित हुये जीवों से पृथक् त्याग करना योग्य नहीं है ११।१२ इस संसार में अनेक प्रकार के दुःखों से दुःखित हुये जीवों को देखता हुआ भी जो केवल अपनेही हित में युक्त रहता है उससे अधिक क्रूर और कठोरहृदय दूसरा कौनहै १३ अहो अपनेही आत्मा

के हित की इच्छा करनेवाले पुरुषों को अन्य जीवों में दया नहीं होती है और ज्ञानी पुरुषों का भी चित्त केवल अपनेही हित के लिये उद्यत है १४ क्योंकि ज्ञानी जन भी जो केवल अपनेही अर्थ के आश्रय होके ध्यान में स्थित होरहे हैं तब संसार के दुःखों से पीड़ित जीव किसकी शरण में जायँगे १५ अज्ञानरूपी अग्नि से संतप्तहुये जन को जो मनुष्य ज्ञान से शान्त करदेता है उससे अधिक पूजने के योग्य कौन है १६ ज्ञानीलोग संसार के अधर्म में डूबते हुये पुरुषों को निवारण करते हैं इस हेतु से भय तथा लोभ के द्वारा मूर्खजन को अपने स्वाधीन करके बोध करवाना चाहिये १७ ऐसा दृढ़ और अचल कौनसा उपाय है जिससे कि मैं दुःखित जीवों के अन्तःकरण में प्रवेश करके उनके दुःखों को सदैव भोगनेवाला होजाऊं १८ अहो इन मत्स्यादिकों में कोई फड़कता कोई लोटता है और कोई बलवान् वा बड़े शरीरवाले भी सूर्य की किरणों करके पीड़ित होरहे हैं १९ और अन्धे, बहिरे, कुबड़े, लँगड़े, लूले, अनाथ और रोगी इन पुरुषों को भी देख कर जिसको दया नहीं आती है वह मूढ़बुद्धि जन शोच करने के योग्य है २० प्राण के सन्देह में व्याप्त और भय से विह्वल हुये जीवों को जो पुरुष सामर्थ्यवान् होनेपर भी रक्षित नहीं करता है वह पाप की गति को प्राप्त होताहै २१ और जो पीड़ित हुये पुरुषों की पीड़ा को नाश करताहै वह ऐसे बड़ेभारी सुख को प्राप्त होता है जिसके सोलहवीं कला के भी समान स्वर्गमोक्ष का सुख नहीं होसक्ता २२ इस

हेतु से जो मुझको स्वर्ग के विशेष कदाचित् मोक्ष की भी प्राप्ति होजाय तौभी इन दीन मत्स्यों को मैं त्यागने को योग्य नहींहूं २३ और तुम्हारे मूल्य का छेदन अर्थात् मोल का हर्जा कभी नहीं करूंगा मेरा वृत्तान्त तुम राजा से निवेदन करो वह मेरा मूल्य तुमको देगा २४ भीष्मजी बोले कि इस वचन को सुनकर उन निषादों को बड़ा संभ्रम हुआ और राजा नहुष से जाकर उनका सारा वृत्तान्त निवेदन किया २५ तब नहुष भी इस वृत्तान्त के सुनने से बड़े आश्चर्य में युक्त होकर विचार करनेलगा कि, यह जल में निवास करनेवाला अद्भुत आकारवाला कौन पुरुष है ऐसा चिन्तन करता धर्म की आत्मावाला वह राजा धर्मभक्ति में युक्त होगया और किसी बड़े उत्तममुनि की शङ्का करके सेना को उसी स्थानपर छोड़ कुछ स्वल्प सेनासमेत अपने मन्त्री पुरोहितादि से युक्त होकर उस स्थानपर बड़ी शीघ्रता से आया २६।२८ और सूर्य के समान कान्तियुक्त तीक्ष्णव्रती भृगुवंशी ध्यानयोग में तत्पर ऐसे च्यवनमुनि को जानके देवताओं से कुछही न्यून वह राजा नहुष उनका विधिपूर्वक पूजन करके यह वचन बोला हे भगवन्! आपकी जो आज्ञा होय उसको मैं करूं२९।३० च्यवनजी बोले हे राजसत्तम! दुःख की आजीविका करनेवाले यह कैवर्त अर्थात् धीवर बड़े श्रम में युक्त हुये हैं सो इनको मेरा भी मूल्य देदो ३१ तुम्हारे यथार्थ मूल्य देनेसे मैं अपने आत्मा को छुटाऊंगा और तभी इन धीवरों से इच्छापूर्वक छूटूंगा और तुम मेरा मूल्य

न दोगे तो मरजाऊंगा ३२ मैं यथार्थ मूल्यकेही देनेको इन मत्स्यों के धर्म में स्थित होरहा हूं और सब मत्स्यों की रक्षाकोभी करूंगा यही मेरे मन में है ३३ नहुष बोला हे मन्त्रीलोगो ! तुम इन भगवान् च्यवनऋषिजी के मोल लेनेमें इन धीवरों को एक लाख रुपया देदो अथवा भृगुवंश में उत्पन्न होनेवाले भृगुनन्दन च्यवनजी जैसी आज्ञा करें वही तुम करो ३४ च्यवनजी बोले, हे राजन् ! तुमको लक्षही रुपये में मेरा मोल लेना उचित नहीं है तुमको मेरे समान मोल देना योग्य है इसका विचार तुम अपने मन्त्री आदिकों से करो ३५ नहुष बोला हे द्विजोत्तम ! इनको आपके मोलका एक किरोड़ देदूं अथवा जो आप कहें सो देदूं ३६ च्यवनजी बोले किसी को अपनी आत्मा का मूल्य नहीं कहना चाहिये मूल्य कहनेवाला जन उत्तम नहीं कहाता है इस हेतु से मैं न अपना मूल्य कहसक्ता और न स्तुतिकी इच्छा करता हूं ३७ हे राजन् ! लक्षकोट्यादिक मूल्य नहीं कहूंगा ब्राह्मणों के साथ विचार करके तुमको मेरा मूल्य देना चाहिये ३८ नहुष बोला हे मुने ! आधा राज्य वा सम्पूर्ण राज्य इन निषादों को देना योग्य है मैं तो आप का यही मूल्य जानताहूं नहीं तो जैसा आप कहें वह ठीक है च्यवन बोले हे राजन् ! आधे राज्य तथा सम्पूर्ण राज्य के भी योग्य मैं नहीं हूं तुम महर्षियों से विचार करके मेरेही समान मूल्य देदो भीष्मजी कहते हैं कि वह नहुष राजा ऋषिके इस वचन को सुनकर अत्यन्त दुःखित हुआ और बड़े शोक से पीड़ित होकर अपने

मन्त्री पुरोहितादिकोंके संग चिन्तन करताभया ३६।४१
इसके अनन्तर कोई गविजातनामवाला ऋषि वहां
आकर राजा नहुष से यह वचन कहताभया कि तुम भय
मत करो मैं च्यवनमुनि को प्रसन्न करूंगा ४२ नहुष
बोला हे भगवन्! आपही इन महात्मा मुनि के मूल्य
को कहो मुझको और मेरे कुल को आप रक्षित करो४३
क्योंकि अत्यन्त क्रोधयुक्त ब्राह्मण ईश्वरसमेत त्रिलोकी
कोभी भस्म करसक्ता है फिर तपहीन बाहुओंसे बल में
प्रधान ऐसे मुझ सरीखे राजा का भस्म करना क्या बड़ी
बात है ४४ गविजात बोला कि जगत् के राज्य द्विजो-
त्तम निरन्तर बन्धन में स्थितहुये योग्य नहीं हैं और
गौ देवीरूप बड़ीपूज्य है इसलिये इनके मूल्य में गौ
देनीचाहिये ४५ भीष्मजी बोले कि तबतो सब मन्त्री
पुरोहितादि समेत वह राजा इस वचन को सुनकर बड़े
आनन्दमें आकर उस मुनि से बोला ४६ कि हे ब्रह्मर्षे!
आप उठिये आपको गौके मूल्य से मोल लेलियाहै हे
ब्रह्मज्ञों में उत्तम! मैं आपका यही मूल्य मानताहूं ४७
च्यवन बोले हे अनघ, राजर्षे! तैंने मुझको अब तुल्य
मूल्य से लिया है इस हेतुसे अब उठताहूं और मैं इस
पृथ्वी गौके समान परमपवित्र अन्य को नहीं देखता
हूं ४८ गौओं की प्रदक्षिणा करनी चाहिये और प्रति-
दिन उनको प्रणाम करना चाहिये यह गौ ब्रह्माजी ने
देवीरूप नित्यमङ्गल का स्थान रची है ४९ ब्राह्मणों के
अग्निहोत्र स्थान और देवताओं के मन्दिर यह सब
उन गौओं के गोबर से पवित्र होतेहैं तो इनसे अधिक

कौन परम पवित्र है ५० और गोमूत्र, गोमय, दही, दूध, मक्खन यह पांचो गौओं की वस्तु बड़ी पवित्र हैं यही पांचो सब जगत् को पवित्र करती हैं ५१ गो नित्यही मेरे आगे और पीछे वर्तमान होकर सदैव मेरे हृदय में रहो मैं गौओं केही मध्य में बास करताहूं ५२ इस प्रकार जो मनुष्य तीनों काल में जप को जपता हुआ नियम में पवित्र है वह सब पापों से विमुक्त होकर विष्णु-लोक में प्राप्त होता है ५३ और जो पुरुष शीत वायु और घाम इन सबों से दुःखित हुई गौओं की रक्षा क-रता है वह सब दुःखों से विनिर्मुक्त होकर विष्णुलोक में प्राप्त होता है ५४ जो पुरुष अन्यकी गौके लिये ग्रास तृण और अन्नादिकों को सदैव देताहै वह स्वर्गलोकमें प्राप्त होताहै ५५ जो पुरुष नित्य २ गोग्रास देता है उसके सब देवता पूजित होजातेहैं और सब पितर भी तृप्त होकर प्रसन्न होजाते हैं ५६ हे राजन्! यज्ञ के आदि में मध्य में तथा अन्त मेंभी गौ है वह गौएंही देवताओं के अमृतरूपी दूध और घृतों को उत्पादन करती हैं ५७ इस हेतुसे गौका दान करना चाहिये और उनका पूजन भी नित्य करना चाहिये यह जंगम अर्थात् गमन करने वाली गौ स्वर्ग की सोपान अर्थात् सीढ़ी के समान रची हुई है ५८ भीष्मजी बोले वह मत्स्यजीवी निषादभी गौओं के उस माहात्म्य को इस प्रकार का सुनकर उस महात्माऋषि को प्रणामकरके बोले ५९ अर्थात् निषादों ने कहा कि, साधुरूप श्रेष्ठजनों का संभाषण, दर्शन, स्प-र्शन, कीर्त्तन और स्मरण यह सब निश्चय करके पवित्र

है ऐसा हम सुनतेहैं ६० सो तुमने हमारे संग संभाषण तथा दर्शन भी किया हे भगवन्! इस हेतुसे आप प्रसन्न होकर इस गौको ग्रहण करो ६१ च्यवनऋषि बोले मैं इस तुम्हारी गौको ग्रहण करता हूं और हे निषाद लोगो! तुम पापों से विमुक्त होके जल से निकालेहुये इन मत्स्यों समेत स्वर्ग में जाओ ६२ और मैंने जो मन वाणी और काया इन सब करके जो कुछ सुकृत किया है इसके कारण से दुःख से पीड़ित हुये सब जीव भी सुख को प्राप्त होजाओ ६३ भीष्मजी बोले, इसके पीछे इन विजितात्मा महर्षिजी के प्रसाद से और उनके उस वचन से मत्स्यों समेत वह सब निषाद स्वर्ग में प्राप्त होते भये ६४ फिर सम्पूर्ण मत्स्यजीवी निषादों को स्वर्ग में जाताहुआ देखकर भृत्यों समेत वह राजा बड़े आश्चर्य को प्राप्त हुआ ६५ नहुष बोला कल्याण की इच्छावाले पुरुषों को पवित्र जल के समान उपमावाले सन्तजन सेवन करनेचाहिये क्षणमात्र भर भी उन्हों की उपासना का किया हुआ योग निष्फल नहीं है ६६ साधुरूप श्रेष्ठ जनों का दर्शन पवित्र हैं क्योंकि साधुजन तीर्थरूप होते हैं तीर्थ तो अपने किसी समयपर ही फल को देगा और साधुजनों का समागम तो तत्काल ही फलका देनेवाला है ६७ इसके अनन्तर बुद्धिमान् च्यवनऋषि और बड़े तपस्वी गविजातनाम ऋषि यह दोनों बड़े २ इच्छापूर्वक वरों करके राजा को छलते भये ६८ तब वह राजा सुदुर्लभा बुद्धिको धर्म में स्थित होना यही वर मांगता भया तबतो ऐसाही हो ऐसा कहकर वह दोनों ब्राह्मण

उस राजा की प्रशंसा करते भये ६९ अर्थात् कहनेलगे कि; हे राजेन्द्र! तू धन्य है जो तेरी बुद्धि धर्म में स्थित हो रही है पुरुषों की धर्म में बुद्धि होना बड़ी दुर्लभ है और राजाओं की बुद्धि का धर्ममें होना तो अत्यन्तही दुर्लभ है ७० राजाओं को राज्यसे अवश्य मद होजाताहै और मद से निश्चय करके मोह अर्थात् अज्ञान होता है और उस अज्ञान से नरक होताहै इसी हेतु से बुद्धिमान् लोग राज्य की निन्दा करते हैं ७१ और विषय के लोभीजन तो विशेष करके राज्यही की इच्छा करतेहैं परन्तु पण्डित लोग उसी राज्य को नरक के समान जानकर उसकी निन्दा करतेहैं ७२ इसलिये दोनों लोकोंका नाश करने वाला मद नहीं करना चाहिये हे महाराज! जो तुम आत्मा के ध्रुव अर्थात् अचलगति होने की इच्छा करते हो तो चाहे तुमको ७३ दोनों लोकों का नाशकर्ता परमदारुण मद भी होजायगा तौभी हम दोनों के प्रसादसे उस मद से छुटजाओगे क्योंकि जो हमसे धर्म में सुदुर्लभा बुद्धि की प्रार्थना करता है ७४। ७५ भीष्मजी बोले ऐसे कहकर वह दोनों महात्मा अपने २ आश्रमों को चलेगये और राजा नहुष भी वरोंको पाकर उन मन्त्री पुरोहितों को साथ लेके अपने राज्य के पुरमें प्रवेश करताभया ७६ हे राजन्! साधुजनों के समागममें जो २ गुणहैं वह सब तेरे आगे वर्णन किये और गौओं काभी माहात्म्य सुनाया है अब क्या सुननेकी इच्छा करताहै ७७ जगन्नाथ, लक्ष्मीपति, नारायणजी की परम भक्ति को करके उनके चरणकमलों को भज तभी तू परमगति को पावेगा ७८॥

इति श्रीच्यवननहुषसंवादोनाम[illegible]ऽध्यायः ॥ [illegible] ॥

छब्बीसवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले, हे कुरुवंश में शार्दूलरूप ! महान् ऋषिलोग मानस तीर्थों को सराहतेहैं सो उन तीर्थों का वर्णन आप मुझसे कृपा करके यथार्थविधियुक्त वर्णन कीजिये १ भीष्मजी बोले कि; यहां भी एक प्राचीन इतिहास को वर्णन करते हैं जिसमें कि राजा जनक और लोमश ऋषि का संवाद है २ हे राजन् ! किसी समय परम धर्म की आत्मावाला ध्यानयोग में परायण बड़ा तपस्वी और सत्य में संयुक्त ज्ञान से सब पापों को दूर किये हुये सब तीर्थों में बिचरता हुआ एक लोमशनाम ऋषि राजा जनक के स्थानमें प्राप्त होताभया ३।४ उस आये हुये लोमश ऋषि को राजा जनक ने देखकर न्याय-पूर्वक पूजन किया फिर उनको आसनपर बैठाकर आप भी उनके सन्मुख स्थित होता भया ५ इसके पीछे अव-काश को विचार उस तपोनिधि ऋषि को प्रणामकर वह राजा भी उनसे यही पूछताभया जो कि तू मुझसे पूछता है ६ जनक ने कहा हे महाप्राज्ञ ! पण्डितजन इस संसार मेंही मन में होनेवाले तीर्थों को वर्णन करते हैं सो उन तीर्थों को आप विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ७ लोमश बोले हे निष्पाप ! मैं उन मनमें होनेवाले तीर्थों को तुझसे वर्णन करताहूं जिनके कि स्नान करने से म-नुष्य परमगति को प्राप्त होजाता है ८ ज्ञानतीर्थ क्षमा-तीर्थ इन्द्रियों का निग्रह अर्थात् रोकना तीर्थ सब भूतों में दया करना तीर्थ और सत्य सरलपना भी महातीर्थ

है ९ दानतीर्थ है तपतीर्थ है संतोषतीर्थ है ब्रह्मचर्य परमतीर्थ है और अहिंसातीर्थ है १० स्तेय अर्थात् चोरी न करना यह परमतीर्थ है द्रोह न करना तीर्थ है श्रद्धा धैर्य और तप का करना यह भी तीर्थ हैं ११ और जो मन की परम शुद्धि है यह तीर्थों का भी परम तीर्थ है जल में गोता लगानेवाला पुरुष स्नान किया हुआ नहीं कहावता है किन्तु जो पुरुष दया में स्नान कियेहुये है वही स्नान कियाहुआ कहाता है और वही शुद्ध मन-वाला भी कहाता है और मनुष्य शरीर के मल के त्याग करनेसेही निर्मल नहीं होताहै १२। १३ किन्तु मनके मल त्याग करनेसेही मनुष्य अत्यन्त निर्मल कहाता है क्योंकि जलके बासी जीव जलही में जन्म लेते हुये उसी तीर्थ के जलही में मरजाते हैं तबभी वह मन के मल शुद्ध किये विना स्वर्ग में नहीं प्राप्त होतेहैं विषयों में स-दैव स्नेह करना इसीको मन का मैल कहतेहैं और उन विषयों में जो प्रीति नहीं करना है वही मन से निर्मल कहाता है यह दुष्ट मन उत्तम २ तीर्थों के भी स्नान से भीतर से शुद्ध नहीं होताहै १४। १६ जैसे कि मदिरा का पात्र हजारोंबार भी जल के धोनेसे शुद्ध नहीं होता वैसेही यह अशुद्ध चित्त भी है दान, देवपूजन, तप, शौच, तीर्थसेवा और शास्त्रों का सुनना यह सबभी मन के अशुद्ध होनेसे व्यर्थ होजाते हैं और इन्द्रियों के वेगों को रोककर मनुष्य जहां कहीं बसता है उसको उसी स्थान में कुरुक्षेत्र, नैमिषक्षेत्र, पुष्कर और गया आदिक सब तीर्थ प्राप्त हैं इससे जो पुरुष ज्ञानरूप ह्रद के ध्यान-

रूपी जलयुक्त रागद्वेष के भयके दूर करनेवाले मनरूपी तीर्थ में स्नान करता है वह परमगति को प्राप्त होता है अथवा जो पुरुष जगत् के उत्पन्न करनेवाले महेश्वर वासुदेव भगवान् को भजते हैं हे राजसत्तम ! उन पुरुषों से कोई तीर्थ अधिक नहीं है और निर्मल हृदयवाले जो भगवान् के भक्तलोग स्नान करते हैं उसीको सब पापों का नाश करनेवाला अधिक तीर्थ जानों हे नृप ! जहां रागादि दोषों से रहित विष्णुपरायण भक्तजन निवास करते हैं वहांहीं निस्सन्देह विष्णु भगवान् भी निकट होकर बास करतेहैं और जहां पुण्यकर्मी मनुष्य बसतेहैं वह बहुतही अधिक उत्तम क्षेत्र कहाहै १७। २४ और जहां ईश्वर ही में चित्तवाले उसीमें परायण ऐसे विष्णु भगवान् के भक्तजन नहीं बास करतेहैं वहां सुन्दर गन्ध चन्दनादि अनुलेप और सुन्दर पुष्पों करके भी विष्णु भगवान् समीप नहीं रहते २५ इस हेतुसे पापों के दूर करनेवाले वैष्णवलोग ही महाभागवाले हैं वही सम्पूर्ण जनों को पवित्र करने में तीर्थों से भी अधिक हैं २६ विष्णु का भक्त शूद्र होय वा निषाद भिल्ल-जाति होय अथवा चाण्डाल भी होय उसको जो मनुष्य जाति के सामान्यभेद से देखता है वह नरक में प्राप्त होताहै २७। २८ इसलिये विष्णु भगवान् की प्रसन्नता के अर्थ वैष्णवजनों को अवश्य प्रसन्न करे उसीके प्रसन्न करने से भगवान् भी निस्सन्देह प्रसन्न होजाते हैं २९ हे राजन् ! यह मानस तीर्थ का लक्षण तेरे आगे कहा और पृथ्वीपर होनेवाले तीर्थों के भी पुण्य में जो का-

रण है उसको भी सुन ३० पृथ्वी के अद्भुत प्रभाव से जल के प्रताप से और मुनियों के परिग्रह अर्थात् ग्रहण करनेसे तीर्थों के पुण्य का प्रभाव कहा है इस हेतुसे भूमि में और मानसीतीर्थ इन दोनों में जो प्रतिदिन उसी क्रमसे स्नान करता है वह परमगति को प्राप्त होता है ३१। ३२ भीष्मजी बोले कि, वह बड़ा तपस्वी महामुनि इस प्रकार से इस पुण्य को कहकर जैसे आया था वैसेही चलागया फिर बड़ा बुद्धिमान् राजा जनक भी इस पुण्य से अन्यों को महादुर्लभ ऐसी परमसिद्धि को प्राप्त होता भया ३३ और हे भूपति! तीर्थ नहीं फलते वेद नहीं फलते श्रेष्ठक्रिया नहीं फलती किन्तु जब इस मनुष्य का हृदय ही प्रसन्न होकर निर्मल होता है तभी यह सम्पूर्ण भी फलते हैं इसके सिवाय किसी प्रकार से नहीं फलते॥ ३४॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायांमानसीतीर्थयात्रानाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

सत्ताईसवां अध्याय॥

युधिष्ठिर बोले कि; हे पितामह! ब्राह्मण के मारे विना ही जिस कर्म करके मनुष्य ब्रह्महत्यावाला होजाता है उसको आप मुझसे यथार्थता से कहिये १ भीष्मजी बोले हे राजन्! इसी प्रश्न को मैंने भी वेदव्यासजी से पूछा था सो वेदव्यासजी ने जैसा कि मुझसे कहा है वह सब मैं तुझे सुनाताहूं २ जो पुरुष अपने आप बिना मांगे हुये ब्राह्मण को बुलाके मेरे पास नहीं है ऐसा

वचन कहता है वह ब्रह्मघाती कहाता है ३ जो मूढ़जन अधर्म में युक्त होकर ब्राह्मणों में असत्य बोलता है और मर्मभेदी दुःखों को देता है वह ब्रह्मघाती है ४ गुणों से युक्त सुन्दर रूपवाली अपनी कन्या को जो पुरुष अपने समानवाले पुरुष को नहीं देता है उसको ब्रह्मघाती जानों ५ जो पुरुष स्वाध्याय व्रतयुक्त शील स्वभाववाले ब्राह्मण की न्याय से प्राप्त की हुई पृथ्वी को हरलेताहै वह भी ब्रह्मघाती जानों ६ जो पुरुष पिपासायुक्त जल पान करने की इच्छा से आवते हुये गौओं के समूहों को रोक-कर विघ्न करदेता है अर्थात् बिचका देता है वहभी ब्रह्म-घाती है ७ और जो पुरुष पंगु, अन्धे, दीन, व्याधियुक्त, जड़ और मूर्ख इन सबों के सर्वस्व धन को हरलेता है उसको भी ब्रह्मघाती जानों ८ जो पुरुष उत्तम सत्यश्रुति को त्यागकर शास्त्र से रहित अर्थात् मूर्खों के आगे मु-नियों के कियेहुये शास्त्र में दोष बतलाते हैं उनको भी ब्रह्मघाती जानों ९ भोजन की इच्छा करनेवाले और क्षुधा से दुःखित देहवाले ऐसे ब्राह्मणों को विघ्न का आचरण करता है वह ब्रह्मघाती जानों १० जो पुरुष नास्तिक तथा भिन्नमर्यादी होकर देवता ब्राह्मणों का दू-षक है और उनकी निन्दा में तत्पर है उसको ब्रह्मघाती जानों ११ जो पुरुष मोह से जगत्पति सब लोकों के अद्वैत कर्ता ऐसे वासुदेव भगवान् में दोष बतलाता है वह भी ब्रह्मघातीहै १२ जो पुरुष बन २ में तृणोंका आहार करने वाले निरपराधी ऐसे दीन प्राणियों के मरनो की इच्छा करता है उसको ब्रह्मघाती जानों १३ और जो कोई साक्षी

अर्थात् गवाही में पूछा हुआ मनुष्य अज्ञान से तथा लोभ से अथवा भय से प्रश्न को अन्यथा कह देता है उसको भी ब्रह्मघाती जानों १४ जो निन्दक होकर छिद्रों के देखने में तत्पर होकर जीवों का कंपानेवाला और क्रूर है वहभी ब्रह्मघाती है १५ जो मूढ़ पुरुष गौओं के स्थान में ग्राम में और नगरादिकों में अग्नि को लगा देता है उसको भी ब्रह्मघाती जानों १६ जो पुरुष दो स्त्रियों को विवाह करके एकको बैर से त्याग देताहै अर्थात् ऋतुकाल में उस स्त्री से भोग नहीं करता है उस को भी ब्रह्मघाती जानों १७ जो पापी पुरुष पालन पोषण और उत्पन्न करनेवाले अपने माता पिता का पूजन सेवन नहीं करता है उसको ब्रह्मघाती जानों १८ जो हिंसा करनेवाले पुरुष जीवों को विपरीत दुःख देते हैं वह ब्रह्महत्या करे विनाही ब्रह्महत्या को प्राप्त होते हैं १९ जो पुरुष जागते सोवते और स्थित होते हुये अन्य जीवों के हित के लिये कुछ चेष्टा नहीं करता उस के सब कर्म पशु की चेष्टा के समान हैं २० हे पार्थिव! वह उस कर्म से ब्राह्मण के मारे विनाही ब्रह्महत्या को प्राप्त होता है यह सब कर्म मैंने तेरे आगे वर्णन किये अब और क्या सुनना चाहता है २१ युधिष्ठिर बोले हे पितामह! ब्राह्मणों से सुनकर भी जो पुरुष लोभ से मोहित होकर कुछ दान नहीं देते हैं वह मनुष्य मरने के पीछे किस गति को प्राप्त होतेहैं २२ भीष्मजी बोले जो पुरुष ब्राह्मण से सुनकर भी थोड़ा बहुत दान नहीं देता है उसकी सब आशा ऐसे नष्ट होजाती हैं जैसे कि नपुं-

सकद्वृत्तिवाले पुरुष की संतान हत होजाती हैं २३ और जो किसीकी आशा को निष्फल करदेता है उसका जन्म भर का कियाहुआ शुभकर्म नष्ट होजाता है और हे पृथ्वीपति, महाराज! आशा करके क्षुधा से प्राप्त हुआ ब्राह्मण ऐसा कहाता है जैसा कि समिधों से दीप्त हुई अग्नि होती है २४।२५ हे भारत! यहां भी उस पुरातन इतिहास को कहता हूं जिसमें कि शृगाल और बन्दर का संवाद है २६ हे महाराज! एकही नगर में सुनाजाता है कि एक कुल में दो वैश्य होते भये २७ हे परन्तप! वह दोनों इस मनुष्ययोनि में बहुत से भृत्यादिकों से युक्त हुये और मरकर दूसरे जन्म में शृगाल और बन्दर होते भये २८ इस योनिमें भी पासही पास रहे एकदिन वह बन्दर उस शृगाल को मृतक मुर्देके मांस को खाताहुआ देखता भया तब उस शृगाल को श्मशान भूमि में देख अपने पूर्वजन्म की जाति को स्मरण करके यह वचन बोला २९ कि हे शृगाल! तैंने पूर्वजन्म में ऐसा कौनसा दारुण पाप किया था जिस करके तू इस श्मशान में मरे हुये जीवों को भक्षण करता है ३० शृगाल बोला कि; मैंने पूर्वजन्म में ब्राह्मणों से सुनकर भी कुछ दान नहीं दिया था उसी कर्म से मैं इस शृगालयोनि को प्राप्त हुआहूं और मरेहुओं का भक्षण करताहूं ३१ मैंने अपने शृगाल होनेका जैसा कारण था सो सब कह दिया अब तू भी उस कारण को कहदे जिससे कि तू बन्दर होगया है ३२ बन्दर बोला मैंने पूर्वजन्म में लोभ से पराये फलों को चुराया था इस हेतु से उस चोरी के

दोष करके मैं बानर योनि को प्राप्त हुआहूं ३३ भीष्म जी बोले; इस प्रकार वह दोनों परस्पर अपने २ दोषों को कहकर अपने२ स्थानों को चलेगये ३४ जो मनुष्य थोड़ा बहुत भी पराये द्रव्य को हरलेता है वह बारम्बार जन्म लेता हुआ अन्त को सर्पयोनि में प्राप्त होता है ३५ हे पार्थिव! इस हेतुसे निश्चय करके प्राणियों के हित के निमित्त कर्म करना चाहिये और जो परम गति की इच्छा रखता है उसको कभी पराया द्रव्य न हरना चाहिये ॥ ३६ ॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायामहत्याब्रह्महत्यापूर्वकशृगाल-वानरसंवादोनाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७ ॥

अट्ठाईसवां अध्याय ॥

युधिष्ठिर बोले कि; इस संसार में विशेष करके क्रूर प्राणियों के हिंसक मांस में अति इच्छा करनेवाले राक्षसों के समूहों के समान मनुष्य हैं १ वह मनुष्य अनेक प्रकार के मिष्टान्न घृत ईख के रस के पदार्थ और सलौने नाना शाकादिक इत्यादिकोंकी वैसी इच्छा नहीं करते जैसी कि मांस की इच्छा करते हैं २ और ऐसा वर्णन करते हैं कि इस मांस के स्वादु से अधिक किसी पदार्थ में स्वादु नहीं है और बल कान्ति का भी बढ़ानेवाला इससे अधिक कोई पदार्थ नहीं है ३ सो हे पितामह! उस मांस के भक्षण में जो मुनियों ने दोष कहे हैं और उसके बर्जने में जो गुण वर्णन किये हैं उन सबको मेरे आगे वर्णन कीजिये ४ भीष्मजी बोले कि;

हे युधिष्ठिर! जो मूढ़ पुरुष सम्पूर्ण दोषों के करनेवाले अभक्ष्यमांस में गुणों को देखते हैं वह विषयों में अत्यन्त लोभ करनेवाले नर शोचनेके योग्य हैं ५ सम्पूर्ण वस्तुओं के आस्वादन में जो जिह्वा के अग्रभाग का क्षणमात्र संगम होता है और कण्ठ की नाड़ी से व्यतीत हो जाने के पीछे सम्पूर्ण भोजन समान होजाते हैं ६ और स्वादिष्ठ अथवा कटुताआदि से दूषित जो अन्न भोजन कियाजाता है उन सबका विपाक कोष्ठ अर्थात् उदर में जाकर समानही होताहै ७ अज्ञान से मोहित हुये मूर्खजन जिह्वा और भोजन के संयोग से ऐसे नष्ट होजाते हैं जैसे कि जाल फांसशंकु में मछलियां होजाती हैं ८ आयु आरोग्य और तेज इन सबका हेतु मांस नहीं है किन्तु उन सबका हेतु साक्षात् दैवही दिखाई देता है ९ मांस के खानेवाले पुरुष भी रोगग्रसित होकर अत्यन्त दुःखों से दुःखित दीखते हैं और मांस को नहीं खानेवाले लोग नीरोग बलवाले और सुखों से संपन्न दीखते हैं १० परन्तु स्वादु में लालसा करनेवाले विषयादिक भोगों में तत्पर ऐसे क्रूर पुरुष राक्षसोंके समान मांस भक्षण करते हैं ११ जो पुरुष जीवने की इच्छा करनेवाले प्राणियों के मांस को भक्षण करते हैं उनको वह सब जीव भी भक्षण करेंगे यह ब्रह्माजी का सत्य २ वचन है १२ मांस तृण से नहीं उत्पन्न होताहै और काष्ठ पाषाणादि सो भी नहीं उत्पन्न होताहै किन्तु जीवों के मारनेसेही उत्पन्न होता है ऐसा जानकर उसको त्याग देनाही योग्य है १३ और विचार करो कि कांटे से भी

भिदा हुआ अङ्ग अत्यन्त दुःख पाता है तो शस्त्र के घात से कैसा न होगा मांसभक्षण में एक खानेवाले को तो क्षणमात्र का आनन्द है और उस दूसरे जीवका प्राणों से वियोग होताहै अर्थात् मरण होताहै १४ अहो बड़ा ही आश्चर्य है कि मांस भक्षण में अत्यन्त बड़ा दोष प्रत्यक्ष दीखता है क्योंकि निश्चय करके पुरुष का वीर्य और स्त्री का शोणित इन दोनोंके योग से सब योनियों में यह मांस उत्पन्न होता है १५ और जो पुरुष अपने ही समान अन्यप्राणियों के भी दुःख और सुख को देखता है वह परम उत्तम गति को प्राप्त होताहै १६ जो पुरुष अन्यप्राणियों को दुःख देताहै वह मन के भयभीत होनेवाले स्थान में निवास करता है और जहां तहां जन्मों को भी धारण करताहै १७ और प्राणियों की हिंसा करनेवाले भयंकर पुरुष नरकों में पकते हुये दुःखों को भोगते हैं और जीवों के भयकारी सर्पों की भी योनि को पाते हैं १८ और पशु को वृथा मारनेवाला पुरुष जितने पशु के शरीर में रोम होते हैं उतनेही जन्म जन्मोंतक मरण को प्राप्त होता है १९ पशु का मारनेवाला अथवा दूसरे से बध करानेवाला निश्चय करानेवाला और मांस के लेनेदेने आदि व्यवहार का करनेवाला मांस पकानेवाला हरनेवाला स्वादु लेनेवाला और भोजन करनेवाला यह सब पुरुष तुल्यही पाप को प्राप्त होतेहैं और जो पुरुष धन से मोल लेकर पशु को मारता है १ उसके मांस का जो स्वादु लेता है और भोजन करताहै २ और बध करने तथा बन्धन करनेसे

जो पटकता है ३ यह तीन प्रकार का बध है इन तीनों के करनेवाले समानही पापवाले हैं २० । २१ और जो पुरुष दूसरे के मांस से अपने मांस के बढ़ाने की इच्छा करता है वह नरक में पकता है अर्थात् दुःखों को भोगता है ऐसा धर्मात्मा नारद ने कहाहै २२ प्राणियों के बध होनेसे मांस की उत्पत्ति को जानकर सम्पूर्ण प्रकार के मांस भक्षण से निवृत्त होना चाहिये २३ और जो वन में उत्पन्न हुये शाकसे भी भरसक्ता है उस उदर के निमित्त कौन पुरुष अनर्थ को करे २४ हे तात ! पूर्व में जो २ बहुतसे ऋषियों का संवाद हुआ है उन संवादों कोभी बुद्धि के निश्चय से सुन २५ जो पुरुष अपने सुख की इच्छा से प्राणियों की हिंसा करता है व्यासजी कहते हैं कि वह पुरुष वृक्षादि की योनियों में प्राप्त होता है २६ जो मनुष्य मांस मदिरा के भक्षण को त्याग करदेता है उसको निरन्तर तप करना निरन्तर दान देना और निरन्तर पूजन करना इन सब बातों का पुण्य होताहै ऐसा बृहस्पतिजी ने कहाहै २७ जो पुरुष सब जीवमात्रों के मांस को त्याग देताहै वह स्वर्ग को प्राप्त होताहै यह वशिष्ठजी ने कहाहै २८ जो पुरुष मांसभक्षण करके भी फिर मांस को त्याग करदेता है वह स्वर्ग में प्राप्त होता है ऐसा जमदग्निजी ने कहा है २९ और रूप ऐश्वर्य आरोग्य शास्त्र का सुनना और स्वर्ग की प्राप्ति इन सब पदार्थों को मांस का त्यागनेवाला प्राप्त होताहै यह भृगुजीने कहाहै ३० सुवर्णदान गोदान और भूमिदान यह सब दान भी प्राणों के दान के

समान नहीं हैं यह पराशर मुनिजी ने कहाहै ३१ और यही धर्म बुद्धिमान् मार्कण्डेयजी और मनुजीने भी कहा है सो वही अब तेरे आगे वर्णन करताहूं ३२ जो पुरुष कर्म मन और वाणी इन तीनों से जीवों की हिंसा नहीं करता है वह सब जीवों का मित्र है ऐसा स्वायंभुव मनु ने कहाहै ३३ और शाक मूल फल और मुनियों के अन्न पवित्र शामकआदि के भोजनसे भी वह फल नहीं प्राप्त होताहै जो कि मांस के त्यागने से होता है ३४ और जो पुरुष मद्य, मांस और मत्स्य इन सबको जन्मसेही सदैव को त्यागदेते हैं वह मुनि कहाते हैं ३५ जो पुरुष गो मूत्र को पकाकर आहार करता हुआ सैकड़ों वर्ष तक स्थित रहा है और जो किसीके मांस को कभी नहीं भक्षण करताहै इन दोनों में मांस का न खानेवाला ही उत्तम है ३६ जो पुरुष प्राणियों को वध करने और बंधन करने का क्लेश नहीं करता है वह सबके हित की इच्छा करनेवाला पुरुष अत्यन्त सुख को प्राप्त होता है ३७ जो पुरुष देवताओं के दिव्य सौ वर्षतक दारुण तप करताहै और जो मांस को भक्षण नहीं करता है यह दोनों समानही कहेहैं ३८ और हिंसा को नहीं करनेवाला पुरुष जिन २ कार्यों का चिन्तन करता है उन सब कार्यों को प्राप्त होजाता है ३९ जैसे कि हाथी के पैर में सब जीवों के पद अन्तर्गत होजाते हैं उसी प्रकार हे राजन्! अहिंसारूपी धर्म में अन्य सब धर्म समाजाते हैं ४० जो मांस का खानेवाला पुरुष महीने में पन्द्रहदिन कोभी मांस को त्याग देता है वह भी

स्वर्ग की गति को प्राप्त होजाता है और अत्यन्त त्याग देने का तो क्याही कहना है ४१ प्राणियों के हिंसा करनेवाले पुरुष हजारों तिर्यग् अर्थात् सर्पादिक योनियों में जन्म लेकर फिर नीच जातियों में उत्पन्न होते हैं ४२ जो पुरुष सौ २ वर्षों तकप्रति वर्ष अश्वमेध यज्ञों को करताहै और जो मांस का भक्षण नहीं करताहै इन दोनों का समान फल है ४३ मनुष्य मांस के त्यागने से स्वर्ग में देवताओं के समान आनन्द करता है और इच्छापूर्वक चलनेवाले विमानों में देवताओं की सैकड़ों स्त्रियों से सेवित होता है ४४ और ध्यानयोग में तत्पर होनेवाले पुरुष जिस गतिको पाते हैं उसी गतिको सब जीवों की दया में तत्पर होनेवाला भी प्राप्त होजाता है ४५ सब जीवों की आत्मा जगत्पति वासुदेव विष्णु भगवान् हैं इस हेतु से विशेष करके वैष्णवलोगों को तो कभी भी हिंसा न करना चाहिये ४६ जो पुरुष सब प्राणियों में हितरूप धर्म का आचरण करता है उस ब्रह्मरूप ब्राह्मण को देवतालोग भी स्पर्श करतेहैं ४७ सम्पूर्ण वेदों का जानना सम्पूर्णतीर्थों में स्नान करना और सब तीर्थों के पुण्य यह सब फल अहिंसाधर्म के समान नहीं हैं ४८ अहिंसा परमधर्म है अहिंसा परन्तप है अहिंसा परम सत्य है अहिंसा परम सरलता है ४९ अहिंसा परमदान है अहिंसा परमदमन है अहिंसा परमयज्ञ है अहिंसा परमश्रुत है ५० और हिंसा न करनेवाले का अक्षयगुणा तप है और हिंसा से रहित पुरुष सदैव पूजन करता है और हिंसारहित पुरुष सब

जीवों के माता पिता के समान है ५१ बहुत से साधु-जन अपने जीवन को त्याग अपनेही मांस से अन्यों के मांस का पालन करके स्वर्ग को गये हैं ५२ यह जो मैंने अहिंसा का लक्षण कहा है सो ही परम धर्म है जो महात्मा इस धर्म का आचरण करते हैं वह विष्णुलोक में प्राप्त होतेहैं ५३ इस उद्देशको जानकर जो विष्णु भगवान् का आराधन करतेहैं वह निस्संदेह विष्णु के संग सायुज्यमुक्ति को प्राप्त होजाते हैं ५४ यह अहिंसा गुण का थोड़ासा लक्षण तुमसे कहा है और सम्पूर्ण लक्षणों के कहनेको तो सैकड़ों वर्षों में भी कोई समर्थ नहीं है ५५ सब प्राणियों को सुख का प्राप्त करनेवाला यह धर्म का आख्यान बड़ा उत्तम है इसको जो पढ़ेगा वा सुनेगा वह परमगति को प्राप्त होगा ५६ पुरुषार्थ के साधन करने-वालों को मांस का भक्षण कभी न करना चाहिये और पशु की हिंसा करनेवाला पुरुष वृथा परम दुःख को प्राप्त होताहै जीव के दान से बिशेष दूसरा कोई दान नहीं है इस हेतुसे पण्डितजन हिंसासे बहुत दूर रहतेहैं॥५७॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायांमांसभक्षणनिषेधोऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

उन्तीसवां अध्याय॥

जनमेजय बोले कि; हे तपोधन! दशहज़ार हाथी के समान बलवाला अत्यन्त पराक्रमी भीमसेन सर्प के वंश में कैसे पहुँचा उसको आप मुझे समझाइये १ वैशंपायनजी बोले कि; खड्ग बाण और धनुष इन्हों का

धारण करनेवाला भीमसेन किसी समय उस वन में इच्छापूर्वक मृगया अर्थात् शिकार के निमित्त जाता भया २ सो वह भीमसेन शिखर के आकारवाले किसी ग्राहरूप काल के समान अजगर सर्प को देखता भया ३ वहां दैव से प्रेरित कियाहुआ वह सर्प भी भीमसेन को प्राप्त होकर इसको अपने शरीर से वेष्टन करता भया अर्थात् लपेटता भया और अपने बलसे भीमको चेष्टा से रहित करता भया ४ उसी काल में धर्मराज के चारों ओर घोररूप बड़े २ उत्पात उठते भये ५ अर्थात् भयकारी अनेक उत्पात हुये उन उत्पातों को देख युधिष्ठिर अपने सब भाइयों को देखनेलगा उस समय वहां भीमसेन को नहीं देखा ६ इसके पीछे द्रौपदी की रक्षा के लिये अर्जुन को और नकुल सहदेव को आज्ञा देकर स्थित करता भया और आप धौम्यऋषि को साथ लेकर बड़ी शीघ्रता से उस सर्पकी जँभाई की वायु से नष्ट हुये वृक्षों के चिह्नवाले मार्ग में प्राप्त होता भया हे राजेन्द्र! वह राजा युधिष्ठिर वहां जाकर पर्वत की गुफ़ा में बड़े भारी सर्प से लपेटा हुआ अपने भ्राता भीमसेन को देखता भया ७ । ८ इसके अनन्तर शोक दुःख से महापीड़ित होकर भीमसेन से पूछता भया कि, यह सर्प तुझको कैसे प्राप्त हुआ और यह कौन सर्प है १० ऐसे दुःख में पीड़ित हुआ भी भीमसेन अपने भाई के पूछने पर सब वृत्तान्त को क्रमपूर्वक कहनेलगा ११ इसके पीछे भीमसेन के वचनों को सुनकर वह युधिष्ठिर भी सम्यक् प्रकार से प्रकाशमान

हुआ और आश्चर्य में प्राप्त होकर उस अजगर से पूछनेलगा १२ कि हे सर्प! तू देवता दैत्य और गन्धर्व इनमें से कौन है इस मेरे छोटे भाई को तैंने किस निमित्त ग्रहण किया है १३ सर्प बोला कि, मैं नहुषनाम राजा होकर तेरे बड़ोंका भी बड़ाहूं सोमवंश के करनेवालों में मैं नहुषनाम राजा पांचवां पुत्र विख्यात हूं १४ मैंने तप, यज्ञ, विद्या, उत्तम कुल और पराक्रम करके त्रिलोकी के ऐश्वर्य को प्राप्त किया था १५ फिर सम्पूर्ण राजाओं के उन्माद से मेरे भी मद उत्पन्न होता भया मेरी शिबिका अर्थात् पालकी को लेकर हज़ारों मुनिलोग चलते थे १६ दैवयोग से किसी समय में अत्यन्त दोष के कारण लोकोंमें विख्यात अग्निसमान तेजस्वी अगस्त्य मुनिजी मेरे ऊपर कोपित हुये १७ उस महात्मा अगस्त्यजी से दूषित होकर मैं इस गति को प्राप्त होगयाहूं सो विधाता के बल से तू मेरी इस अवस्था को देख १८ हे तात! कोई पुरुष भी बुद्धि, बल, उत्साह, शक्ति और बल इन सब करके दैव अर्थात् भाग्य को दूर नहीं करसक्ता है १९ संसार के सुख दुःखों के उत्पादन करने में दैवही कारण है क्योंकि जो राजाओं का राजा होकर मैं राजलक्षण को छोड़कर सर्पभाव को प्राप्त होगया २० जो कदाचित् ज्ञान और शूर वीरता यही सम्पत्तिके कारण होयँ तो बुद्धिमानों को और शूरवीरों को कभी भी विपत्ति नहीं होनी चाहिये २१ सो बुद्धिमान् जीव और शूरवीरजन यह दोनों दुःखसे जीवते हुये दीखते हैं और भयभीत मूर्खजन सुखी दिखाई

देते हैं इस हेतुसे दैवही कारण है २२ और जो कुछ शुभाशुभ होना न्यून रहजाता है उसको मनुष्यों का भाग्य मुहूर्तमात्रमेंही उत्पन्न करदेता है २३ विमान से गिरतेहुये मुझको देखकर दयायुक्त होकर वह मुनि मुझसे यह वचन कहता भया कि, यह शाप शीघ्रही नष्ट होगा २४ अर्थात् किसी काल में भी जो कोई धर्मज्ञ पुरुष तेरे प्रश्नों को कहदेगा वही तुझको इस शाप से छुटावेगा २५ और मेरी प्रसन्नता से तेरी स्मृति भी नष्ट नहीं होगी तेरी सर्पयोनिमें भी तुझको पूर्वकेही समान बल बनारहेगा २६ बलवान् भी शत्रु तेरे ग्रहण करनेसे तेरे वशीभूत होजायगा प्रतीत आत्मावाले उस मुनि के कहतेही मैं विवश होकर पृथ्वी में अजगरसर्प होकर गिरपड़ा सो हे नृप! जो तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर कहदोगे तो मैं आपके भ्राता को छोड़दूंगा २७।२८ युधिष्ठिर बोले- आप इच्छापूर्वक अपने प्रश्नों को शीघ्रता से कहिये देर मत करो मैंभी अपने ज्ञानके अनुसार तुम्हारे पूछेहुये प्रश्नों का उत्तर दूंगा ३० नहुष बोला- हे युधिष्ठिर! देवता और ब्रह्मर्षिलोग धर्म की प्रशंसा करते हैं इस हेतु से हे अनघ! तू मुझसे विस्तारपूर्वक धर्म का वर्णन कर ३१ युधिष्ठिर बोले- सत्य, तप, शौच, संतोष, लज्जा, क्षमा, आर्जव, ज्ञान, शम, दम और दान यह सनातन धर्म हैं ३२ नहुष बोला-हे राजन्! सत्य क्या है दम किसको कहते हैं तप का क्या लक्षण है और शौच क्या है ३३ युधिष्ठिर बोले कि, प्राणियों में हित करना सत्य है मन को वश में करना

दम है अपने धर्म में रहना तप है और शिवजी के नि-
र्माल्य का त्यागना शौचहै ३४ नहुष बोला-संतोष कौन
सा उत्तम कहा है लज्जा कौनसी श्रेष्ठ है क्षमा कौनसी
योग्य है और आर्जव किसको कहते हैं ३५ युधिष्ठिर
बोले-विषयों के त्याग को संतोष कहते हैं कार्य से नि-
वृत्त होने को लज्जा कहते हैं सुख दुःखादि के सहनेको
क्षमा और चित्तकी समानता आर्जव है ३६ नहुष ने
कहा कि; हे राजन्! ज्ञान क्या है शम क्या है परम
दया कौनसी है और ध्यान क्या है ? युधिष्ठिर बोले-
तत्त्व अर्थका बोध होना ज्ञान है चित्त की शान्ति शम
है सब में एक सुख के भाव को दया कहते हैं विषय से
रहित मन को ध्यान कहते हैं ३७। ३८ नहुष बोला-
दुर्जय शत्रु कौन है जिसका अन्त न हो ऐसी कौनसी
व्याधि है साधु कैसा होता है और असाधु कैसा होता
है ३९ युधिष्ठिर बोले-क्रोध दुर्जय शत्रु है-लोभ अन्तक
व्याधि है सबजीवों में हित रखनेवाला साधु है और सब
जीवों में दया न रखनेवाला असाधु है ४० नहुष बोला-
हे राजन्! मोह कौनसा है-मान कौनसा है-आलस्य क्या
है-और शोक किसको कहते हैं ४१ युधिष्ठिर बोले-धर्म
में मूढ़ होना मोह है-आत्मा का अभिमान करना मान है-
धर्म में अनिश्चयता आलस्य है-और संसारही अ-
ज्ञानरूप कहाता है ४२ नहुष बोला-ऋषियों को स्थिर
रहनेवाला क्या है-धीरज क्या है-स्नान क्या है-और
दान क्या है ४३ युधिष्ठिर बोले-अपने धर्म में स्थिर रहने
को स्थिरता कहते हैं इन्द्रियों का निग्रह धैर्य है मनकी

मलिनता के त्यागको स्नान कहते हैं और अभय द-क्षिणाको दान कहते हैं ४४ नहुष बोला-धर्मराज कौन है-वैतरणी नदी कौन है-कामदुहा धेनु कौन है-नन्दनवन कौनसा है ४५ युधिष्ठिर बोले-क्रोध धर्मराज है तृष्णा वैतरणी नदी है विद्या कामदुहा धेनु है-संतोष नन्दनवन है ४६ नहुष बोला-हे जनेश्वर! पण्डित कौन है-मूर्ख कौन है-संसार का हेतु कौन है-हृदय को संताप करनेवाला कौन है ४७ युधिष्ठिर बोले-धर्म का जाननेवाला पण्डित है नास्तिक मूर्ख है-संसार का हेतु काम अर्थात् इच्छा है अन्यकी संपत्ति को न सहना यही हृदयका संतापहै ४८ नहुष बोला-अहंकार क्या है-दम्भ क्या है-असूया क्या है-पैशुन्य क्या है ४९ युधिष्ठिर बोले-मोहरूपी अज्ञान को अहंकार कहते हैं धर्म को ऊंचीध्वजा से बताने को दम्भ कहते हैं गुणोंके द्वेष को असूया कहते हैं अन्यमें दोष लगानेको पैशुन्य कहते हैं ५० नहुष बोला-हे नृपो-त्तम! यहां कौन शूरवीर नहीं है और कौन पण्डित नहीं है-वक्ता कैसा चाहिये और दाता कैसा होना चाहिये ५१ युधिष्ठिर बोले-रण में हारा हुआ पुरुष शूरवीर नहीं है जिसकी निन्दा होती है वह पण्डित नहीं है-सत्य बोलनेवाला वक्ता कहाता है और सबजीवों के हित में युक्त रहनेवाले को दाता कहते हैं ५२ नहुष बोला-धर्म अर्थ और काम यह सब आपसमें विरोधी हैं सो नित्य विरोध होनेसे उनका संगम कैसे होता है ५३ युधि-ष्ठिर बोले- जनभर्ता और भार्या यह दोनों आपस में वशीभूत रहते हैं तब धर्म अर्थ और काम इन तीनों का

संगम होता है ५४ नहुष बोला- हे भरतर्षभ! किस कर्म करके अक्षय नरक प्राप्त होताहै यह सब प्रश्न तुम यथार्थ कहनेको योग्य हो ५५ युधिष्ठिर बोले-जो आप से कुछभी न मांगता हो ऐसे ब्राह्मण को आप सेही बुलाके भी मेरे पास नहीं है ऐसा वचन कहता है वह अक्षय नरक को प्राप्त होताहै ५६ और जो मूढ़ पुरुष अधर्म में निरत है और ब्राह्मणोंमें मिथ्या बोलनेवाला है और मर्म के भेदन करनेवाले शोक को देता है वह अक्षय नरक में प्राप्त होता है ५७ जो पुरुष किसी की साक्षी अर्थात् गवाही में नियुक्त होकर स्नेह तथा लोभादि से मिथ्या बोल देता है वह अक्षय नरक को प्राप्त होता है ५८ जो पुरुष क्षत्रिय आदिक वर्णों में उत्पन्न होकर ब्राह्मणी से संगम करताहै और तमोगुण में युक्त चित्तवाला है यह दोनों अक्षय नरक में प्राप्त होतेहैं५९ और मार्ग के खेद से हारेहुये और क्षुधा तृषा से दुखित हुये ऐसे अभ्यागत को जो भक्ति से नहीं पूजता है वह अक्षय नरक को जाताहै ६० जो मूढ़ चित्तवाला मनुष्य नित्यही पराये छिद्रों को देखता है और अन्यके अवगुणों से आनन्द मानता है वह अक्षय नरक को प्राप्त होताहै ६१ जो पुरुष वेद की निन्दा और यतीजनों की निन्दा में तत्पर होय वह अक्षय नरक को जाता है ६२ जो जड़ मनुष्य ब्रह्मण्यदेव अप्रकटरूप पुराण पुरुषोत्तम लोकों के पति आदि अन्त से रहित और जगत् के कारणरूप विष्णुरूप परमात्मा अच्युत भगवान् का पूजन नहीं करते हैं वह अत्यन्त घोर नरक में प्राप्त

होतेहैं ६३ । ६४ जो पुरुष धन के होनेपर भी लोभ से दान धर्मादि को नहीं करताहै वह अक्षय नरक को प्राप्त होता है ६५ और जो ब्राह्मण धनाढ्य होकर भी दान प्रतिग्रह की इच्छा करता है वहभी रौरव नरक में पड़ता है और बड़े २ दुःखों को भोगताहै ६६ और जो ब्राह्मणों की निन्दा करता है अथवा छिद्र देखने में तत्पर है हे पुरुषोत्तम ! उसके दर्शन करके मनुष्य को सचैल स्नान करना चाहिये ६७ हे नृपोत्तम ! जो स्त्री कि अन्यपुरुष में रत है और भर्ता से विपरीत रहती है वह अक्षय नरक में प्राप्त होतीहै ६८ और जो स्त्री पति करके शय्यापर बुलाई हुई सौभाग्य के गर्व से भर्ता के समीप नहीं आवती है वह अक्षय नरक को प्राप्त होती है ६९ जो स्त्री जिह्वा और इन्द्रिय के वशीभूत होकर पति को और पुत्रादिकों को छल कर आपही मिष्टान्न भोजन करती है वह अक्षय नरक को प्राप्त होती है७० हे भारत ! जिस कर्म से मनुष्य अक्षय नरक में प्राप्त होताहै वह सम्पूर्ण आख्यान मैंने तुमसे कहा है ७१ नहुष बोला हे अनघ ! मैं तुमको सर्वज्ञ मानताहूं इस लिये मनुष्य जिस २ कर्म से अक्षयस्वर्ग को प्राप्त होता है वह सब भी मेरे आगे वर्णन करो ७२ युधिष्ठिर बोले-जो पुरुष यज्ञ, होम, तप, स्नान, देवपूजन और देवस्नान इन सबमें नित्ययुक्त रहताहै वह अक्षयस्वर्ग को प्राप्त होता है ७३ हे राजेन्द्र ! जिसके घर से आया हुआ भूखा ब्राह्मण भोजन खाये विना नहीं जाता है वह अक्षयस्वर्ग को प्राप्त होता है ७४ हे राजेन्द्र ! जो

पुरुष अन्यजनों के दोषों को त्यागकर गुणोंकोही ग्रहण करता है वह अक्षयस्वर्ग को प्राप्त होता है ७५ जो पुरुष किसी के याचना करने से तो प्रसन्न होता है और दानदेके कोमल वाणी बोलता है वह अक्षयस्वर्ग को प्राप्त होता है ७६ जिस पुरुष को चित्त चलते स्थिर होते जागते और सोवतेहुये भी किसी विचार में तत्पर नहीं है वह मोक्षरूप है ७७ जो पुरुष सबके विजय करने वाले हृषीकेश विष्णु भगवान् की भक्ति में तत्पर है और जिसका मन अन्यके हित में रहता है वह अक्षयस्वर्ग को प्राप्त होता है ७८ जो पतिव्रता स्त्री मन वचन और कर्म से अपने भर्ता की टहल में नियुक्त रहतीहै वह अक्षयस्वर्ग को प्राप्त होती है ७९ हे राजेन्द्र ! रूप यौवन और संपत्तियों से युक्त होकर भी जो पुरुष जितेन्द्रिय और धैर्य में रहता है वह अक्षयस्वर्ग को प्राप्त होता है ८० जो शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन सब की टहल में मनसे युक्त रहता है वह अक्षयस्वर्ग को प्राप्त होताहै ८१ हे पार्थ ! व जिन २ कर्मों से मनुष्य अक्षय स्वर्ग को प्राप्त होता है वह सब धर्म मैंने तुमसे वर्णन किये ८२ नहुष बोला- हे सुव्रत, महाबाहो ! बड़े २ यत्नों से प्राप्तहुये श्राद्ध में और दान में कौनसा काल उत्तम कहा है इस मेरे प्रश्न को विचारपूर्वक कहो ८३ युधिष्ठिर बोले-जहां वेदपाठी जितेन्द्रिय रागद्वेष और पापों से रहित ऐसा वैष्णव ब्राह्मण जिस किसी वस्तु से आच्छादित हुये और जहां तहां बास करनेवाले ऐसे ब्राह्मण जब देखे उसी समय को मैं श्राद्ध और दान के

निमित्त उत्तम काल समझताहूं ८४। ८५ नहुष बोला जाति, व्रत, कुल, स्वाध्याय और श्रुत अर्थात् शास्त्र का सुनना इन सब करके जिस कर्म के द्वारा ब्राह्मणपना होताहै उसको निश्चय करके मुझसे कहो ८६ युधिष्ठिर बोले-हे तात! ब्राह्मण के जाति कुल स्वाध्याय और श्रुत यह कारण नहीं हैं किन्तु ब्राह्मण में ब्राह्मण की वृत्तिही कारण है ८७ दुरात्मा पुरुष के नटों के समान बहुत से पढ़जाने से क्या है किन्तु जिसने उसीको सुना और अध्ययन किया है वही अपनी वृत्ति के अनुसार स्थित है ८८ हे तात! अनेक मुनि भी तिर्यक्योनि में उत्पन्न हुये हैं परन्तु जो अपने धर्मके आचरण में युक्त हुये हैं वह मुनि ब्रह्मलोक में ही प्राप्त हुये हैं ८९ जैसे कि कपालीपात्र में स्थित हुआ जल और चर्मकीय खाल में स्थित हुआ दुग्ध दूषित होजाता है वैसेही व्रत करके हीन हुआ श्रुत अर्थात् शास्त्र का सुनना भी व्यर्थ होजाता है ९० इस हेतु से बड़े यत्न से अपने व्रत नियमादि की रक्षा करनी चाहिये उस नियमवालेको शास्त्र का सुननाभी प्राप्त होजाताहै और व्रत के क्षीण होजाने से पुरुष हत होजाताहै ९१ उत्तम और बड़ेकुल में उत्पन्न होनेसे दुरात्मा पुरुष से क्या अर्थ है क्योंकि सुगन्धिवाले वृक्ष में क्या कृमि नहीं उत्पन्न होजाते हैं ९२ हे राजन्! पठन, पाठन करानेवाले और शास्त्रों के विचारनेवाले और अन्य किसीप्रकार के लोग यह सब व्यसनवाले कहाते हैं परन्तु जो क्रियावान् हैं वही पण्डित हैं ९३ हे महाराज! इस हेतुसे व्रतको ब्राह्मण

का लक्षण जानके दुष्टव्रतवाले ब्राह्मण को निश्चय करके शूद्रसे भी न्यून जानना चाहिये ९४ जो पुरुष अग्निहोत्रकर्म में युक्त है जितेन्द्रिय है संतोषी होकर पवित्र है और तप स्वाध्याय इन सब में शील स्वभाव वाला है उसको देवता ब्राह्मण कहते हैं ९५ जिस किसी वस्तु से आच्छादित हुआ हो और जिस किसीके आश्रय होय और जहां तहां शयनकरनेवाला होय उसको देवता ब्राह्मण कहते हैं ९६ जिसकी नारायण में भक्ति है और जिसमें यह सब श्रेष्ठगुणभी हैं वह पुरुष निस्संदेह इस संसार में दुर्लभ है ९७ सब दुख सुखादिका सहनेवाला धैर्यमें युक्त सब संगों से रहित और सम्पूर्ण जीवों में नित्य हितकरनेवाला ऐसे पुरुष को देवता ब्राह्मण कहतेहैं ९८ और जो पुरुष मनुष्यों के समूहसे सर्प की समान डरता है सन्मान से मरण के समान भयभीत है और स्त्रियों से राक्षस की समान डरता है उसको देवता ब्राह्मण कहतेहैं ९९ सत्य, दम, तप, दान और इन्द्रियोंका निग्रह करना हे राजेन्द्र ! यह सब जिसमें दीखते हैं वह ब्राह्मण कहाता है १०० और शूद्र में भी जो यह कहेहुये नियम व्रत होयँ और ब्राह्मण में न होयँ तो वह शूद्रभी ब्राह्मण जानना और ब्राह्मण के समान है १०१ काम, क्रोध, मिथ्या, द्रोह, लोभ, मोह और मद यह सब जिसमें न होयँ हे राजेन्द्र ! उसको ब्राह्मण जानना १०२ हे तात ! कुछ जातीही कारण नहीं है कल्याण के हेतु रूप कारण गुणही कहे हैं क्योंकि व्रत नियममें प्राप्त हुआ चाण्डालभी उत्तमगति

को प्राप्त होजाता है १०३ वेदव्यासजी कैवर्त अर्थात् धीवरी में उत्पन्नहुये शृङ्गीऋषि मृगी से उत्पन्न हुये और अगस्त्यजी कलश में पैदाहुये परन्तु तप के बल से यह सब स्वर्ग में प्राप्त होते भये १०४ दधीचिऋषि पृथ्वीसे उत्पन्न होकर सिद्ध यक्षों की पवित्रगति को प्राप्त हुये और विश्वामित्र महामुनि भी क्षत्रियों के कुलसें उत्पन्न हुये इस हेतुसे अध्ययन और पूजनादिकही ब्राह्मण के लक्षण नहीं हैं हे राजन्! इससे निरन्तर व्रत धारण करना चाहिये और पठनभी करना योग्यहै हे तात! राक्षसभी पठन पाठन करते हैं इसमें कुछ संदेह न करना क्योंकि अग्निहोत्र और वेद यह राक्षसों के भी घर घर में हैं परन्तु उत्तम व्रत और शौच यह राक्षसों में नहीं दीखते हैं अध्ययन करने को तो शिल्प अर्थात् चतुराई कहते हैं और ब्राह्मण का मुख्य लक्षण व्रत नियम ही वर्णन कियाहै १०५। १०६ नहुष बोला प्रियवचन बोलनेवाला किस पदार्थ को पाताहै और विचारपूर्वक करनेवालेको क्या प्राप्त होता है? बहुत से मित्र करनेवाले को क्या लाभ और तप करनेवाले को क्या प्राप्त होता है ११० युधिष्ठिर बोले प्रिय वचन बोलनेवाला सबका प्रिय होता है विचार करके कार्य का करनेवाला अधिक आनन्द को प्राप्त होता है बहुत मित्रोंवाला सुख को प्राप्त होता है और तप तथा धर्म का करनेवाला उत्तम गति को प्राप्त होता है १११ हे प्रश्नज्ञों में श्रेष्ठ! इन सब तेरे प्रश्नों का उत्तर मैंने दे दिया है अब तू मेरे भ्राता को छोड़ ११२ वैशंपायन

बोले कि; धर्मराज युधिष्ठिर से अपने सब प्रश्नोत्तरों को सुनकर नहुष बड़े आश्चर्यको प्राप्त होताभया प्रसन्न आत्मावाला होकर यह वचन बोला ११३ हे प्रश्नज्ञों में उत्तम युधिष्ठिर! तैंने मेरे सब प्रश्नोंका उत्तर ठीक २ दिया है अब मैं तेरे भ्राता भीमसेन को छोडूंगा ११४ वैशंपायनजी बोले इसके उपरान्त नहुष से छूटेहुये भीमसेनसे राजा युधिष्ठिर मिलते भये और नहुष को भी पूजता हुआ ११५ और वह नहुषभी उस महात्मा ऋषि के शाप से विमुक्त और प्रसन्न मनयुक्त दिव्यरूप को धारण करके राजा युधिष्ठिर से बोलता भया ११६ नहुष बोला कि; "साधुरूप उत्तमजनों से संभाषण करना बड़ा पवित्र है" ऐसी जो यह श्रुति है वह सत्य है तुम सरीखे साधुजनों के संभाषण से मैं सर्पयोनि से छूटगया हूं ११७ निश्चय है कि इस संसार में मनुष्य धर्मों को करके श्रेष्ठ पुत्रों को प्राप्त होता है सो मैंने धर्मों में से कौनसा धर्म किया है जिससे कि तुम सरीखे हमारे कुल में पुत्र प्राप्त हुये हो ११८ और हे धर्मज्ञ! केवल प्रजाही धन्य नहीं है क्योंकि उनमें भी तुम ऐसे धर्ममें तत्पर हुये हो इससे उस धर्म को भी धन्य है जिससे कि तुम्ह सरीखा पुत्र हुआ है ११९ हे नृप! मैंने धर्म में तत्पर होनेवाले बहुत से पुरुष सुने हैं और देखे भी हैं परन्तु तुम्हारे समान कोई देखा है न सुना है १२० युधिष्ठिर बोले हे महाराज! मैं बड़ा धन्यभाग्य हूं कि जिस मेरे गुणों से आप प्रसन्न होगये हो आप सरीखे देवता के समान पुरुष उत्तम भाग्यसेही प्रसन्न होते हैं १२१

और साधुरूप उत्तमजनों को उत्तम जीवों के गुणों के कीर्तन करने से क्या प्रयोजन है क्योंकि जो पुरुष दोषों कोभी गुण करदेते हैं वही साधु और उत्तम जन हैं १२२ और हे नृपोत्तम! मुझेभी कुछ आश्चर्य है और तुम्हारा हृदय उत्तम है इसी हेतुसे मैं तुमसे पूछताहूं कुछ निन्दा-पूर्वक नहीं पूछताहूं १२३ कि सब शास्त्रों के तत्त्वज्ञ और त्रिलोकी के ऐश्वर्य से पूजित ऐसे होकरभी तुमको ऐसा मोह कैसे प्राप्त हुआ जैसा कि अज्ञानपुरुष को होता है १२४ नहुष बोला हे कौन्तेय! श्रुतशील इत्यादिकों से युक्त हुये और तप से स्थित हुये बड़े बुद्धिमान् पुरुषको भी धन की समृद्धि मोह करदेती है १२५ श्रुत अर्थात् शास्त्र का सुनना और उत्तम कुल में जन्मे इन सबके नियमवाला भी कोई राजा नहीं है कि जिसके चित्त में मद अपना निवास नहीं करताहै १२६ राजाओंके यह दारुण मद सहज अर्थात् संगमेंही उत्पन्न होनेवाला दु-र्जय शत्रु है उससेही युक्त हुये राजालोग स्वर्ग से और राज्यसेभी पतितहुये दीखते हैं १२७ राज्यमें स्थितहुये राजालोग जो अपने ही धर्म को आदरपूर्वक करें तो उनको अवश्य मोक्ष वा स्वर्ग की प्राप्ति होय और दूसरी गति नहीं प्राप्त होसक्ती है १२८ राजालोग जिस धर्म को वा अधर्म को एक दिनमें करते हैं उसको दूसरे मनुष्य बहुत दिनोंमें करसक्तेहैं १२९ जैसे अग्निमें निश्चय करके उष्णता है जलमें निर्मलता है और चन्द्रमा में शीतलता है उसी प्रकार ऐश्वर्य में भी अवश्य मद होता है १३० वारुणी मदिरा के पान से पतित मूर्च्छित हुआ भी

पुरुष बोध करलेताहै परन्तु ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त हुआ पुरुष पतित होकर फिर बोध नहीं करसक्ताहै १३१ ऐश्वर्यरूपी अन्धकारसे युक्त हुये नेत्रोंसे मनुष्य निर्मलता-पूर्वक नहीं देख सक्ता है परन्तु जब उन नेत्रों में विनय-रूपी अञ्जनको आँजता है तब नेत्रों की निर्मलता को प्राप्त होताहै १३२ सो मैं ऐश्वर्यरूपी तिमिर करके मदान्ध लोचनों से बोधसे रहित होकर पूर्वमें पतित हो गया था परन्तु अब तेरेही कारण से मैं बोधित होगया हूं १३३ और दोनों लोकों के हितके वर्णन करने और जानने में कौन पण्डित नहीं है परन्तु उस क्रिया के अनुसार विधान करने में मुनिलोग भी पण्डित नहीं हैं १३४ हे पार्थिव! सुन्दर रूप यौवन और सहायता को पाकर पण्डितजन भी अवश्य ऐसे मद से ग्रसित होजाता है जैसे कि राहु से सूर्य ग्रसित होताहै १३५ इस हेतुसे दोनों लोकोंका नाश करनेवाला मद तुमको नहीं करना चाहिये क्योंकि जैसे मुझ श्रीमान् में मद प्राप्त होगया उसको तुमने प्रत्यक्ष देखलिया है १३६ और स्वर्गलोक की स्थिति के निमित्त ऐसे ब्राह्मणों का अपमान कभी न करना चाहिये किन्तु दान मान और पूजन करके उनको देवता के समान सेवन पूजन करना चाहिये १३७ और जिन्होंने अग्निदेवता को सर्वभक्षी करदिया समुद्र को पान नहीं करने के योग्य खारी कर दिया और अजित चन्द्रमा को क्षयीरोगयुक्त करके क्षीण करदिया उनके कोप से कौन नहीं नष्ट होसक्ता है १३८ और जिन्होंके मुखके भोजन करनेसे देवतालोग

सदैव हव्यों को भोजन करते हैं और पितर कव्यों को भोजन करते हैं तो इनसे अधिक कौन होसक्ताहै १३९ और हे भारत! इन ब्राह्मणों को देवता और मनुष्य दोनों ने पूजा है इस हेतु से इनको कौन नहीं पूजेगा १४० और जिन्होंने पूर्वसमय में समुद्र को पान कर लिया और विन्ध्याचल पर्वत को उखाड़कर दूसरे स्थान में स्थापित करदिया है और देवता भी रचेहैं उन ब्राह्मणों से अधिक कौन पूज्य है १४१ हे राजन्! इस हेतु से अत्यन्त क्रोध हुये यह ब्राह्मण वाणीरूप वज्रवाले वाणीरूप विषवाले वर्णन किये हैं और वाणीरूप अग्नि वाले भी हैं परन्तु प्रसन्न किये पर तीर्थरूप होकर सब प्राणियोंके पापों को हरनेवालेहैं १४२ क्रोध हुये ब्राह्मणों ने जलमय समुद्र का भी अपमान करदिया है और स्त्री पुत्र समेत नारायण को भी नष्ट करदिया है और सबों के सुखदायी शिवजी के लिङ्ग को भी देखनेसे बन्द कर दिया इस हेतु से ब्राह्मण के शाप से हत हुआ कौन पुरुष मृत्यु को नहीं प्राप्त होता है १४३ जो पुरुष किसी देवता को आराधन करनेकी इच्छा करे तो उसको यत्नपूर्वक सब उपायों से ब्राह्मणों को प्रसन्न करना चाहिये १४४ हे अनघ! ऐसेही द्वारकापुरी में यादवों के मध्यवर्ती होकर पूर्व देवदेव विष्णु भगवान् ने कहा है कि यह सब जगत् देवताओं के आधीन है और देवता मन्त्रोंके आधीन हैं और मन्त्र ब्राह्मणों के आधीन हैं इस हेतु से ब्राह्मणही देवता हैं १४५। १४६ जो पुरुष मारते हुये तथा शाप देतेहुये अथवा कठोर वचन

कहते हुये ब्राह्मणको जैसे कि मैं प्रणाम करताहूं उस रीति से नहीं प्रणाम करता है वह पापकर्मी होकर ब्रह्म दैवरूप अग्नि से जला हुआ बध दण्ड करने के लायक है और मेरा भक्त नहीं है १४७ जो पुरुष मेरा आराधन करना चाहता है उसको सदैव ब्राह्मणों का वह पूजन करना योग्य है जिस पूजनसे कि मैं प्रसन्न होताहूं १४८ वैशंपायन बोले; वह नहुषराजा धर्मपुत्र युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर स्वर्गको गया और वह धर्मात्मा युधिष्ठिरभी उस को नमस्कार करके अपने स्थान को आताहुआ १४९ फिर वह राजसत्तम राजा युधिष्ठिर अपने स्थानमें जाकर मुनिलोगों के और अपने भाई नकुल सहदेव के आगे यह सब वृत्तान्त कहताभया १५० हे राजन्! जैसे अरण्यवन में अजगर सर्प से ग्रसे हुये महाबल वाले भीमसेन को युधिष्ठिर छुटाता हुआ वह सब आख्यान मैंने तेरे आगे वर्णन किया है १५१ जो कोई इस उत्तम नहुष के आख्यान को सुनेगा वह सब पापों से रहित होकर विष्णुलोक में प्राप्त होगा ॥ १५२ ॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायांयुधिष्ठिरनहुषसंवादोनाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

तीसवां अध्याय ॥

वैशंपायन बोले कि, शरशय्या पर प्राप्त हुये कुरुवंश के वृद्धपितामह भीष्मजी को राजा युधिष्ठिर मस्तकसे प्रणाम कर यह पूछता भया १ युधिष्ठिर बोले, हे नरव्याघ्र, पितामह! आप तड़ाग कूप और बाग़ इनके

बनवानेका जो फल है उसको मेरे आगे वर्णन करो २
भीष्मजी बोले हे परन्तप ! सुन्दर जलवाले तड़ाग धर्म
अर्थ काम और यश इन सबके स्थानरूप कहे हैं ३
देवता, पितर, गन्धर्व, गुह्यक और पशु पक्षी यह सब
जलाशय अर्थात् जल के तड़ागादि स्थान के आश्रय
रहते हैं ४ जिसने जल के स्थान तड़ाग कूपादिक सब
के उपकारार्थ बनवादिये हैं वह अपने सब वंशवालों को
उद्धार करदेता है क्योंकि वहां गौएं जल को पीती हैं
और जो अन्य पशु मनुष्यादिक पीतेहैं वा विश्राम करते
हैं उस सबका जो फल है वह तड़ागादि बनवानेवाले
को मरकर अन्यलोक में अनन्त फलवाला होकर प्राप्त
होताहै ५ । ६ और जिस तड़ाग का जल वर्षाकाल में
ठहरता है तिसके फलको महर्षिलोग अग्निष्टोम यज्ञके
समान वर्णन करतेहैं और जिस तड़ाग में शिशिरऋतु
तक जल रहता है उसके बनवानेवाले को वाजपेयियज्ञ
का फल प्राप्त होता है ७ । ८ और जिस तड़ाग का
जल ग्रीष्मऋतु तक पियाजाता है उसके बनवानेवाले
को राजसूय और अश्वमेध यज्ञके करने के समान फल
मिलता है ९ हे राजन् ! तड़ाग सब जीवों का जीवन-
रूप है इस हेतु से सम्पूर्ण यत्नों से तड़ाग बनवाने चा-
हिये १० और बर्तने के योग्य स्थानपर सुन्दर जलयुक्त
बनवाया हुआ कूप निस्संदेह पुरुष के सम्पूर्ण वंश
को उद्धार करदेता है ११ जिसके बनाये हुये कूप के सु-
स्वादु जल को मनुष्य सदैव पिया करतेहैं वह पुरुष न-
रक में पड़ेहुये भी अपने पुरुखों को उद्धार करदेता है

और हे राजन्! वह आपभी निस्संदेह देवताओं के समान स्वर्ग में आनन्द भोगता है और ईख का रस अमृत के समान दूध दही और सत्तु इन सबके पीनेसे भी जब तक कि जल नहीं पीता है तबतक पिपासा नहीं मिटसक्ती हे भारत! इसलिये जो पुरुष अन्यके भी कूप पर रस्सी और कलश आदि को स्थापित करदेते हैं और जो अपने जल पीनेके समय अन्यको भी नित्य जलपान करातेहैं वह सब कूप के पुण्य के भागी होते हैं १२।१५ जो पुरुष जलका दान देता है वह निस्संदेह प्राणों काही दान देता है हे युधिष्ठिर! यह सब जलत्व दान का आख्यान मैंने तुमसे कहदियाहै १६ इसके विशेष अब वृक्षों के लगाने के भी फलको कहताहूं वृक्ष१ गुच्छे २ बेल ३ और डाली आदिकों से हितकारी पुष्पों के पेड़ ४ बांस ५ और तृणोंकी जाति ६ यह छःप्रकार की वृक्षों की जाति कहलाती हैं सो इन सबके रोपण करने के फल को सुन जो पुरुष पुष्प फलों से युक्त हुये तीस ३० वृक्षों को सब जीवों के भोजन को आरोपण करदेता है वह परम गति को प्राप्त होजाता है और जो छाया और पुष्पों से युक्तवाले ३० वृक्षों को अथवा १८ वृक्षों को लगादेता है वह पुरुष नरक में नहीं प्राप्त होता है और वृक्षों को आरोपण करनेवाला पुरुष देव, दानव, गन्धर्व, किन्नरगण, गुह्यक, साध्य, यक्ष, मनुष्य और पशु पक्षी इन सबको निस्संदेह प्रसन्न करता है १७।२१ और जो पुरुष पुष्पों की सुगन्ध से और फलों की सुगन्धसे युक्त हुये वृक्षों का आरोपण करताहै

हे राजन्! वह पुरुष भी वाञ्छित मनोरथों को प्राप्त होता है और समृद्धिवाले देश में उत्तम गृहयुक्त होता है २२ एक पीपल को एक नींबको एक बड़ को रोपण करके वा दश इमली के वृक्षों को अथवा तीन कैथा तीन बेलपत्र तीन आंवलेके अथवा पांच आम्रवृक्षों को रोपण करके मनुष्य नरक को नहीं देखता है २३ इस हेतुसे कल्याणकी इच्छावाले पुरुषों को सुन्दर बहुतसे वृक्ष आ-रोपण करने चाहिये और उनकी रक्षा भी पुत्रों के समान करनी चाहिये वह वृक्ष धर्म से पुत्ररूप ही कहे हैं २४ और धर्म से विमुख होनेवाले केवल अपनी ही वृत्तिमें स्थित होनेवाले ऐसे पुत्रों से क्या प्रयोजन है अर्थात् निरर्थक हैं और वृक्षरूप पुत्र जो आरोपण किये हैं वह तो सदैव अन्यों केही उपकारकी वृत्तिमें खड़े रहते हैं २५ और जहां पुष्प, फल, बक्कल, काष्ठ और मूल इन सबों से युक्त हुये वृक्ष हैं वह वृक्ष मुनियों के समान पूजनेके योग्य हैं २६ और जो पुरुष तड़ाग और वृक्ष इन को आरोपण करते हैं और यज्ञों का पूजन करते हैं वह सब स्वर्ग में प्राप्त होकर देवताओं के संग आनन्दपूर्वक विहार करते हैं २७ युधिष्ठिर बोले, हे भगवन्! मैं उ-त्तम सत्यवाक्य के सुनने की इच्छा करता हूं सो प्रथम बहुला गौ को जो वचन कहे हैं उनको वर्णन करो २८ भीष्मजी बोले, हे सौम्य! सत्य और आर्जव इन दोनों गुणों से युक्त हुये उस धर्म को मैं कहता हूं जिस में कि कामरूपवाले सिंह और गौ का उत्तम संवाद है २९ रमणीक सुन्दर धन धान्यसे युक्त अनेक प्रकारके मनुष्यों

से भरा हुआ और यज्ञ के उत्सव से विभूषित ऐसे माथुरसंज्ञक देशमें यमुनानदी के तीर के आश्रय अर्ध-चन्द्रमा के समान आकारवाली एक नगरी थी जो इन्द्र-धनुष के आकार की ध्वजावाली गोपियों से शोभित अ-नेक ब्राह्मणों से समाकीर्ण बहुत से रत्नों के विक्रयरूपी व्यवहार से युक्त सुन्दर प्रमाणवाली रमणीक स्वाति-नक्षत्र में रची हुई क़िले अट्टाली वीथी और खाई इन सबों से दुर्जय ३०। ३३ केलों के स्तम्भों से मण्डित देवताओं के दिव्य मंन्दिरों से और राजहंसों के समान श्वेत वर्णवाले ग्रहों से दीप्तिमान् अर्थात् प्रकाशमान हुई ३४ केतकी, चम्पा, ताड़वृक्ष, चिरोंजी के वृक्ष, आम, कैथ और अमलतास इन सब वृक्षों से सघन हुई चमेली कुन्द आदि जाति के पुष्पों से व्याप्त कमल कोरण्ड के वृक्ष सुन्दर श्वेत वर्णवाली चमेली और तमालवृक्षों से शोभित कनेर कर्णिकार पुष्पवृक्ष पाटला अशोक चम्पक पुन्नाग केशर इत्यादि पुष्पों के बगीचों से आनन्दकारी सम्पूर्ण धन धान्य गोधनादि से पूर्ण और वेद के अध्ययन से पवित्र मण्डल और उत्तम वेदियोंवाली चौपट के बाज़ार से और तिरछे चौपटों से भी शोभित होकर ऐसी उत्तम पुरी होती हुई जैसी कि रावण की लङ्कापुरी शोभित थी ३५। ३९ उस पुरी में ऋषिवृत्ति में प्रवृत्त धर्म में युक्त देवता अतिथियों का पूजक प्रजापति के समान वहां का चन्द्रसेननाम राजा होता भया उस उत्तम राजा से वह नगरी रक्षित थी ४०। ४१ नित्योत्सवों से मुदित बंशी के वाद्य से नादित

दर्शनीय सुन्दर गीतज्ञपुरुषों से व्याप्त सुन्दररूप और भेषवाले नर नारियों से भरी हुई ऐसी वह चन्द्रवतीनाम पुरी है वह कभी तुमने देखी या सुनी होगी ४२। ४३ हे युधिष्ठिर! उस पुरीमें जो प्रथम वृत्तान्तहोता भया उस को सुनो कि, उस सुन्दरपुरी में किसी बड़े मुख्य ब्राह्मण की एक बहुलानाम गौ बड़ी हृष्ट पुष्टता से पुत्रवती और कल्याणी होकर सब गौओं के मण्डल में मुख्य होती भई वह हंस के समान श्वेतवर्ण घट के समान अयन और दीर्घनासिका से युक्त सुन्दराङ्गी सूक्ष्म रोमकोमल त्वचा विस्तीर्णजङ्घा और दिव्य कठोर ऊंचेस्तनों से शोभित सम्पूर्ण लक्षणोंसे पूर्ण सुन्दर अङ्गोंमें नीलेकण्ठ-वाली घण्टाओंसे मधुरस्वरोंको करती हुई सम्पूर्ण गौओं के अग्रवर्त्ती निर्भय होकर विचरती भई और वह अकेले ही अपने सुखपूर्वक बहुतकाल से फिरती हुई किसी अन्य वनमें प्राप्त होती भई ४४। ४७ वहां इच्छापूर्वक अनवच्छिन्न तृणों को चरती थी और वहांही यमुनाजी के तटपर अनेक कन्दराओं व निर्भरोंसे शोभित रोहित नाम पर्वत था उसके उत्तरभाग की ओर सुन्दर तृणों से युक्त बड़े २ मृग सिंहादि से व्याप्त बहुत से श्वापद जीवों से सेवित बेल के वृक्षों से गह्वर अनेक शृगालों से भराहुआ एक बड़ा भयंकर वन था उसमें कामरूपी नाम रुधिरमांस का भक्षी बड़े दन्त दाढ़ों से भयकारी पर्वताकार मेघके समान शब्द करनेवाला बड़ी गुहा के समान मुखवाला एक सिंह बसता था उसी अरण्य में धर्मात्मा सोमलनाम एक गोप भी वहां के सुन्दर तृणों को

चराता हुआ गौओं के समूहों की रक्षा किया करता था अर्थात् उस भयंकर वन में अपनी गौओं को नहीं जाने देता था परन्तु वह बहुला गौ तृणों की इच्छा से अपने समूह से जुदी होके चरती हुई उस सिंहके आगे स्थित होती भई तब सिंह ठहर २ ऐसा बोलता हुआ उसके पीछे दौड़ा ४८ । ५६ और यह वचन बोला हे गौ! तू आप से आप ही मेरा भक्षण होकर मेरे पास प्राप्त हुई है सो भय त्यागकर ठहरजा अब तेरे डरनेसे क्या होगा ५७ भीष्मजी बोले तब वह गौ उस भयानक रोमाञ्च खड़े करनेवाले सिंह के वचन को सुनकर ऐसी कांपती थी जैसे कि वायु से केला कांपता है ५८ वह महास्वरूप वाली बहुला गौ चन्द्रकान्ति के समान अपने पुत्र के देखने की इच्छा से भ्रान्तिमान स्नेह से अत्यन्त दुःखित होकर शोक से विह्वल ५९ । ६० दीन हुई पुत्रके दर्शन से निराशा होकर करुणापूर्वक रोदन करती भई तब उस दुःखित और करुणापूर्वक रुदन करती हुई गौ को देखकर वह सिंह बोला कि, हे बहुला ! अब तू क्या रोती है तू इच्छापूर्वक मेरा भक्षण होके दैव करके प्राप्त हुई है ६१ । ६२ अब तू चाहे रोवे अथवा न रोवे परन्तु तेरा जीवना नहीं होसक्ता क्योंकि सब संसार अपने कियेकोही भोगता है इसीसे तू आपही प्राप्त होगई है ६३ तेरी मृत्यु अभी विहित है सो वृथा क्यों शोच करती है ऐसा कहकर सिंह फिर पूछने लगा कि तू किस हेतु से रोती है क्योंकि तेरे रोने से मुझे आश्चर्य हुआ है तू अपने सब वृत्तान्त को मुझ से कह सिंह के इस

वचन को सुनकर बहुला बोली ६४। ६५ हे कामरूपी, नाथ! मैं तुझको नमस्कार करती हूं मेरे कहने को आप क्षमा करने के योग्यहैं जो तुमको प्राप्त हुआहै उसकी कोई भी रक्षा नहींहै ६६ मैं अपने जीवने के लिये नहीं शोच करती हूं क्योंकि जन्म लेनेवालेकी अवश्य मृत्यु है और मरेहुये का अवश्य जन्म है इस हेतुसे मैं बच नहीं सक्ती हे सिंह! मैं इस प्रयोजन के लिये नहीं शोच करती हूं क्योंकि वशीभूत होकर सब देवताओं को भी काल अवश्य मारता है ६७। ६८ इस हेतु से हे सिंह! मैं स्नेह के वशीभूत होकर रोई हूं ६९ जो मेरे हृदय में संताप है उसको तू अच्छीरीति से सुनने को योग्य है हे सिंह! मैं पहलीही बार प्रसूता हुई हूं अर्थात् ब्याई हूं सो पहली बार का उत्पन्न हुआ वह मेरा इच्छितपुत्र अभी अज्ञान है और दूधही पीता है अभी तृण को सूंघता भी नहीं है ७०। ७१ सो वह गौओंके स्थानमें बँधाहुआ क्षुधा से पीड़ित होकर मेरी बाट देखता है सो मैं यह शोच करती हूं कि मेरा पुत्र कैसे जीवेगा ७२ उस पुत्रके स्नेह के वशीभूत होकर मैं उसको दूध पिलानेकी इच्छा करती हूं उस बछड़े को दूध पिलाकर मस्तक को चाटके दूसरी सखियों के सुपुर्द करके फिर उलटी तेरे पास आजाऊंगी तब तू मुझे इच्छापूर्वक भोजन करियो ७३। ७४ हे सिंह! मैं सत्य २ ही तेरे स्थान को अवश्य आऊंगी बहुला के ऐसे वचनों को सुनकर सिंहने कहा ७५ तुझको पुत्र से क्या प्रयोजन है तुझको क्या मरने का बोध नहीं है मुझको देखकर सब प्राणी त्रास मानते हैं और मर

जाते हैं परन्तु तू मुझको भी प्राप्त होकर करुणायुक्त हो-
कर पुत्र २ पुकारती है ७६ मेरे समीप में आये हुये
प्राणी की रक्षा करने को मन्त्र भी समर्थ नहीं है और
तप, दान, माता, पिता और पुत्रादिक यह सब भी रक्षा
को समर्थ नहीं हैं ७७ और तू गोपी जनों से युक्त वृ-
षभों करके निनादित सुन्दर बालबच्छों से भूषित ऐसे
गोकुल में जाकर फिर लौटकर कैसे आवेगी ७८ वह
गोकुल सम्पूर्ण मर्त्यलोक का भूषण होकर निस्संदेह स्वर्ग
के समानवाला नित्यानन्दों से युक्त होकर देवताओं से
भी पूजित है ७९।८० जो पवित्रों का भी पवित्र मङ्गलों
का भी मङ्गल तीर्थों का भी तीर्थ रमणीक स्थानों में श्रेष्ठ
सर्व गुण सम्पन्न ईश्वर का परमस्थान होकर इस पृथ्वी
पै प्राप्त होनेवाला उत्तम स्वर्गही होरहा है ८१।८२
और गोपियों के दधिमथन के वा बालबच्छों के शब्दों
से और गौओं के हुंकारशब्दों से जहां लक्ष्मी विशेष
होरही है ८३ जिसमें कि माता पिता के स्नेह से बछड़े
बछियां करुणा से हुंकारशब्दों को करते हैं और उन
बछड़े बछियोंके माता पिता भी पुत्रों की इच्छा करके
शब्दोंको करते हैं ८४ और बाहुयुद्ध में श्रम करनेवाले
शूरबीर और नृत्य गीत के ज्ञाता मनोहर बाजों समेत
जिसकी गोपलोग रक्षा करते हैं ८५ जहां तहां स्थित
चारों ओर को प्रकाशित हुये बछड़े आदिकों से वह
गौओं का स्थान ऐसा शोभित है जैसे कि चलायमान
कमलों करके सरोवर शोभित होता है ८६ ऐसे रम-
णीक स्थान में जाके और अपने माता पिता भाई पुत्र

सखियां इनको देखकर फिर कैसे उलटी लौटकर आवेगी ८७ हे भद्रे! मेरे पञ्चतत्त्व तेरे रुधिर को पियें मैं इन वचनमात्रों से अपने शरीर के पञ्चतत्त्वों को आशा से रहित नहीं करूंगा ८८ बहुला बोली हे सिंह! मैं प्रथमही प्रसूता हुई हूं इससे मेरे वचनों को सुन मैं शपथ खाती हूं कि सखीजन और पालन करनेवाले गोप गोपी आदि को देखके और विशेषकर अपने माता पितादिकों से वार्त्तालाप करके आजाऊंगी जो सच्चा मानता है तो मुझको छोड़ दे ८९। ९० ब्रह्महत्या में और माता पिता के बध करने में जो पाप है मैं उस पाप में लिप्त होजाऊं जो तेरे पास न आऊं ९१ जो दो स्त्रियों वाला पुरुष एक स्त्री को शत्रुता से त्याग देता है उस पाप से लिप्त होजाऊं जो तेरे समीप न आऊं ९२ जीवहिंसा करनेवाले लुब्धक म्लेच्छजन और विषदेनेवाले इन सबके पाप में लिप्त होजाऊं जो तेरे निकट न आऊं ९३ जो पुरुष तृषा से युक्तहुये गौओं के समूह को विघ्न कर देताहै उस पाप में लिप्त होजाऊं जो तेरे समीप न आऊं ९४ जो गौओं को अपमान करते हैं गाली देते हैं और ताड़ना करते हैं उस पाप को भोगूं जो तेरे निकट न आऊं ९५ जो पुरुष कन्या को एक पुरुष के अर्थ देकर फिर दूसरे के देने की इच्छा करते हैं उस पाप की भागिनी होजाऊं जो फिर न आऊं ९६ जो पुरुष कथा बांचतेहुये सुननेके समय विघ्न करता है उस पाप को भोगूं जो लौटकर न आऊं ९७ जो पुरुष प्रीति से वा द्वेष से ब्राह्मणों की निन्दा करते हैं उस पाप को

पाऊं जो फिर न आऊं ९८ जिसके घर में विद्वान् ब्राह्मण आया हुआ आशा से रहित होकर चलाजाता है उस पाप से लिप्त होजाऊं जो फिर न आऊं ९९ जो पुरुष देवता ब्राह्मण और वेद इन सबकी निन्दा करता है उस पाप फलको पाऊं जो लौटकर न आऊं १०० जो चुगली करनेवाले वा पराये द्रव्य के हरनेवालों के पाप हैं उनको भोगूं जो लौटकर फिर न आऊं १०१ जो पुरुष विद्या गुरु और माता पिता आदि वृद्धों की सेवा टहल नहीं करता है उसके पाप की भागी होजाऊं जो लौटकर न आऊं १०२ जो कोई दुष्ट पुरुष अकेला मिष्टान्न भोजन करता है उसके पाप को पाऊं जो फिर न आऊं १०३ जो गवाही में नियुक्त कियाहुआ पुरुष मिथ्या बोलता है उस के पाप से लिप्त होजाऊं जो लौटकर न आऊं १०४ जो स्त्री अपने तरुण भर्त्ता का अपमान करती है उसके पाप से लिप्त होजाऊं जो फिर न आऊं १०५ जो तीर्थ की निन्दा में और ब्राह्मण की निन्दा में पाप है उस पाप से युक्त होजाऊं जो फिर न आऊं १०६ जो पुरुष अपने स्वामी के प्रयोजन को त्यागकर युद्ध से भाग जाता है उसके पाप को युक्त होजाऊं जो फिर न आऊं १०७ जो पापीपुरुष विश्वास देकर किसी की थाती को हरलेता है उस पाप से युक्त होजाऊं जो न आऊं १०८ जो पुरुष वासुदेव और शिवजी महाराज को त्यागकर अन्य देवता की उपासना करता है उसके पापसे युक्त होजाऊं जो न आऊं १०९ जो पुरुष परस्पर में शपथ खाकर फिर बदलजाते हैं

उस पाप से युक्त रहूं जो न आऊं ११० जो पुरुष तोलने में कम तोलकर मिथ्या बोलता और दूसरे से पूछा हुआ भी मिथ्या भाषण करता है उसके पाप को युक्त होजाऊं जो लौटकर न आऊं १११ भीष्मजी बोले ऐसे २ घोर पापवाली शपथों को खानेवाली उस गौके निश्चय को जानकर फिर सिंह ने यह वचन कहा–हे बहुले! तेरी इन शपथों से मुझको परम निश्चय होगया है परन्तु कदाचित् यह मत जानलीजो कि मैंने उस मूर्ख को ठग लिया है ११२।११३ क्योंकि बहुधा कोई २ लोग कहते हैं कि प्राण के नाश होने में शपथ खाने का पाप नहीं होता है सो तू उन लोगों के वचनों पर श्रद्धा मत करलीजो ११४ क्योंकि इस संसार में बहुत से नास्तिक मूर्ख हैं वह अपने को पण्डित मानते हैं वह तेरी बुद्धि को ऐसे भ्रमावेंगे जैसे कि चाककी मृत्तिका को कुम्हार घुमाता है ११५ अज्ञानचित्तवाले क्रोधी कुत्सित और शास्त्रों को भी दिखानेवाले ऐसे सब मनुष्य सहेतुक दृष्टान्त देकर असत्य प्रयोजनों को भी सत्य करके दिखाते हैं और वही बड़े चतुर अपनी विचित्रता से सब भाग में भी नीचा ऊंचा बताने के समान असत्य वचनों को कहेंगे क्योंकि यह संसार विशेष करके पराये उपकार को नहीं मानता है सब अपने ही प्रयोजन को कहते हैं और करते हैं कोई किसी का इस संसार में प्रिय नहीं है ११६।११८ दूध के न रहने से बच्चा भी अपनी माता को त्याग देता है मैं इस संसार में किसी को ऐसा नहीं जानता हूं कि जो उपकार

न करनेवाले के कार्य को करे ११९ अन्य लोगों के कार्य के निमित्त दूसरी ही बुद्धि आजाती है ऋषि देवता और मनुष्य यह सब भी कार्यकी सिद्धि के अर्थ शपथ खाजाते हैं १२० जो अकेलाही शपथ खाता है उसको हम मिथ्या मानते हैं परन्तु जो पुरुष देवता अग्नि और गुरु के समीप सत्य २ शपथ करता है वह कदा-चित् अन्यथा करे तो उसके आधे पुण्य को धर्मराज घटादेता है और तेरी बुद्धि ऐसी मत हो मैंने यह सब बातें इस हेतु से कही हैं कि मत कभी तू जानले कि मैंने शपथों से इस मूर्खको ठगलिया अब तू अपनी इच्छापूर्वक सब कामों को कर १२१।१२३ बहुला बोली हे महासिंह! जैसा तुम कहते हो सो सब सत्यही है परन्तु तुमको ठगने की किसको सामर्थ्य है क्योंकि जो अन्य को ठगता है वह अपनी आत्माही को ठगता है १२४ जैसे भूमिके समान दान नहीं दानके समान खज़ाना नहीं सत्य के समान कोई धर्म नहीं वैसेही मिथ्या के समान कोई पाप नहीं है १२५ जिससे कि निन्दा हो शपथ मिथ्या होय और जिस कर्म से नरक प्राप्त होजाय उस कर्म का आचरण कभी नहीं करना चाहिये १२६ सिंह बोला हे पुत्रमें स्नेह करनेवाली, बहुले! तू अवश्य चली जा अपने पुत्रको देख दूध पिला मस्तक को चूम और माता, पिता, भाई, सखी, बांधवादि को भी देख कर सत्य को आगे करके शीघ्रही आइयो १२७।१२८ भीष्मजी बोले सत्य की बोलनेवाली वह बहुला गौ इस प्रकार निश्चय करके सिंह से आज्ञा ले अपने पुत्र

के देखने को चलती भई १२९ आंशुओं से भरे नेत्र दीनरूप काँपती महादुःख से कुररी के समान श्वास लेतीहुई शोकसमुद्र में मग्न कीच में लिहसी निर्जन वन में हस्तिनी के समान अपने शरीर की रक्षा में असमर्थ बारम्बार विलाप करती हुई वह बहुला गौ बड़े प्रसन्न मन से गोकुल में प्राप्त होके रांभते हुये अपने बछड़े के सन्मुख बड़ी शीघ्रता से प्राप्त होती भई १३०।१३२ अर्थात् आंशुओं से व्याकुल नेत्रवाली वह गौ सब गौओं के मध्य में बंधे हुये अपने बछड़े के समीप जाकर स्थित होतीभई १३३ तब रांभता हुआ उसका वह बछड़ा भी अपनी माता के समीप में आवता भया और समीप में जाकर शङ्का करके अपनी माता से पूछनेलगा १३४ हे माता! तू अत्यन्त शोच करतीहुई उदासरूप दीखती है सो यह क्या है मैं तुझे बड़े दुःख में पड़ा हुआ देखताहूं १३५ और तेरी दृष्टि भी उद्विग्न और भयभीत दिखाई पड़ती है १३६ बहुला बोली हे पुत्र! अब तू मेरे स्तनों का दूध पी और जो तू मेरे दुःख के कारण को पूछता है तो मैं केवल तेरेही स्नेह से यहां आईहूं तू इच्छापूर्वक अपनी तृप्ति करले १३७ क्योंकि यह मेरा अन्तकाही दर्शन है अब इसके अनन्तर मेरा दर्शन होना बड़ा दुर्लभ है सो इच्छापूर्वक स्तनों को पान करले प्रातःकाल न जानिये तू किसके पीछे प्राप्त होगा १३८ मुझको फिर जाना है मैं शपथ खाकर आई हूं कामरूपी सिंह को अपना जीवन देना कह आई हूं १३९ भीष्मजी बोले बहुला के वचन को

सुनकर वह बछड़ा अपनी माता से यह वचन बोला कि; हे माता! जहां तू जाया चाहती है वहां मैं भी जाऊंगा १४० क्योंकि तेरे संग मेरा भी मरना प्रशंसनीय है हे माता! तेरे विना भी मैं अकेला होकर मरने के ही योग्य हूंगा १४१ जो तुझ माता समेत मुझको वन में वह सिंह मारडालेगा तो माता की भक्ति करनेवाले जनों की गति को पाऊंगा १४२ इस हेतु से मैं तेरे संग निस्संदेह अवश्य चलूंगा अथवा हे माता! तू यहांही स्थित बनी रहे वह सब तेरी शपथें मुझको प्राप्त होजायँ १४३ माता से वियोग होनेपर मेरे जीवन से क्या प्रयोजन और मुझ अनाथ का इस वनमें कौन नाथ होवेगा १४४ स्तन पीनेवाले बालकों को माता के समान कोई बन्धु नहीं है और दुःख उत्पन्न होनेमें माता के समान कोई रक्षक नहीं है १४५ माता के समान कोई स्नेहवाला नहीं है और उसके विना कुछ सुख भी नहीं है इस लोक परलोक दोनों लोकों में माता के समान कोई देवता भी नहीं है १४६ और सब जीव अपने सैकड़ों वृद्धों को भी त्यागकर अपनी माता ही करके जीवते हैं और माता से विहीन होकर किसी जीव का भी जीवन श्रेष्ठ नहीं है १४७ ब्रह्माजी ने यह परमधर्म रचा है कि जो प्राणी माता के पीछे अपने प्राणों को देते हैं वह परमगति को प्राप्त होते हैं १४८ माता दश महीनेतक पुत्र को उदर में स्थित करके फिर अनेक प्रकार के शूलरूपी व्यथा और वेदनायुक्त कठिन दुःखों से मूर्च्छित होकर पुत्र को जनती है १४९ फिर

पुत्र में स्नेह करनेवाली वह माता अमृत के समान स्तनों के दुग्ध से पालन करती है और अत्यन्त स्नेह से विष्ठा मूत्र आदि की कीच से पुत्र को बचाती है १५० पुत्र में स्नेहवाली माता अपने पुत्रों को प्राणों से भी प्रिय मानती है ऐसी महाउपकारिणी माता को हज़ारों वर्षोंतक भी कोई दूर करने को समर्थ नहीं है १५१ बहुला बोली हे पुत्र! मेरीही मृत्यु विहित है तू मेरे संग जानेको योग्य नहीं है अन्यकी मृत्यु से दूसरे किसी पुरुष की भी मृत्यु नहीं होती है १५२ हे पुत्र! अब यह मेरा सबसे पिछला संदेशा है अर्थात् कहना है कि मेरे वाक्यकेही अनुसार रहना जैसा मैं कहूं उसी प्रकार करना १५३ जलमें वा स्थल में विचरते हुये तुझको प्रमाद करना कभी योग्य नहींहै क्योंकि प्रमाद से सब जीव अवश्य नष्ट होजाते हैं १५४ और विषम अर्थात् दुर्गम स्थानपर स्थित होकर कभी तृण का लोभ न करना क्योंकि लोभ इसलोक और परलोक में ही सबका नाश करनेवाला है १५५ लोभ से मोहित होकर जीव समुद्र वन और दुर्गमस्थान इन सबमें प्रवेश कर जाते हैं लोभसेही विद्वान् मनुष्य भी अकर्तव्य कार्यका आचरण करदेता है १५६ लोभ-प्रमाद-और विश्रंश—इन तीनों करके मनुष्य बंधजाता है इस हेतु से लोभ और प्रमादसे कहीं विश्वास न करना चाहिये १५७ और हे पुत्र! सर्प स्वापदसंज्ञक वन के जीव म्लेच्छ और चौरादिकों का संकट इन सबसे सदैव अपने शरीर की रक्षा करनी चाहिये १५८ एक स्थान में

भी बसतेहुये तिर्यक् सर्पादिक योनिवालों का कभी विश्वास न करना चाहिये १५९ और सींगवाले दांत वाले और नखोंवाले इन सबजीवों को भी कभी विश्वास न करना चाहिये और स्त्रियों का तथा म्लेच्छों का भी विश्वास न करना चाहिये १६० जिस मनुष्य का निश्चय नहीं होय उसकाभी विश्वास न करना चाहिये और जिसका निश्चयभी होय उसकाभी अत्यन्त विश्वास न करना चाहिये क्योंकि विश्वास से उत्पन्न हुआ भय मूलकोही नाश करदेता है १६१ अपनी देहकाभी विश्वास न करना चाहिये क्योंकि सम्पूर्ण चित्त के चलायमान होने से सोवता हुआ मनुष्य प्रमाद से गुप्त हुये बुद्धि के सत्य २ प्रयोजन को भी बक देताहै १६२ सुगन्ध से जाननेके लिये सदैवही सूंघना योग्य है गौ सुगन्धसेही पहँचानती है राजा उत्तमदृष्टि से पहँचानते हैं पण्डित शास्त्र के द्वारा पहँचानते हैं और सब योगीजन ज्ञानसेही पहँचानलेते हैं १६३ ब्राह्मण वेद रूपी नेत्रों से जानता है और सर्पादिकों को चक्षुहीसे ज्ञान होताहै अकेलेको घोर वनमें नहीं ठहरना चाहिये और धर्म का सदैव चिन्तवन करनाचाहिये १६४ तुझको कभी उद्वेग न करना चाहिये मरना अवश्य है जैसे कि कोई पथिक अर्थात् मार्ग चलनेवाला पुरुष छाया के आश्रय को पाकर ठहर जाता है और विश्राम लेकर फिर चलाजाता है वैसेही सब प्राणियोंकाभी संगम है जहां सब जगतही अत्यन्त है वहां अकेलेका कौन शोच है १६५। १६६ हे वत्स! तुझे अपने शोक

को त्यागकर मेरे वचनों की पालना करता हुआ विद्या में और अवस्था में वृद्ध होनेवाले मनुष्यों की सेवा करनी चाहिये १६७ हे पुत्र! प्रयोजन के विना तुझको किसी प्रकारसे भी कहीं गमन नहीं करना चाहिये और प्रयोजनरहित किसीसे कोई बात भी न कहना चाहिये १६८ भीष्मजी बोले कि इस प्रकार की बातें कह अपने पुत्र को सूंघ उसके मस्तक को चाट बड़े शोक से युक्त बहुत उष्णश्वास लेतीहुई वह गौ पुत्र से हीनहुये स्थान को देखती अन्धे के समान होजाती भई १६९। १७० बड़ी कीच में फँसी हुई हस्तिनी के समान बड़े क्लेश को पाती हुई वह बहुला गौ यह वचन बोली कि पुत्र से रहित जन को जगत् शून्य होकर जीवनेसे और घर से क्या प्रयोजन है संसार पुत्र करकेही जीता है यह सनातनी श्रुति है ऐसे विलाप करके स्नेह में अनुरक्त होकर पुत्र से यह वचन कहती भई कि, पुत्र के समान स्वामी नहीं पुत्रके समान सुख नहीं और पुत्रके समान धैर्य भी नहींहै १७१। १७३ ऐसे २ विलाप करके भी वह बहुला पुत्र के स्नेहसे फिर यह वचन बोली कि संसार यह बड़ा मिथ्या कहता है कि चन्दनही अवश्य शीतल है क्योंकि पुत्र के शरीर का मिलाप चन्दनसे भी अधिक शीतल है ऐसे पुत्र के गुणों को कहकर और उसको बारम्बार देखके फिर अपनी माता सखियों और गोपलोगों को भी शीघ्रता से पूछती भई १७४। १७५ बहुला बोली—कि; हे माता सखी और गोपगणलोगो! समूह से पृथक् होकर वन में बिचरते हुये मुझको एक

बड़ा सिंह मिलता भया उससे बहुतसी शपथ खाकर मैं यहां आई हूं अब अपने बछड़ेको देखकर मैं फिर वहीं जाऊंगी १७६ सो मैं तुझ माता को और गौओं के कुल को तथा अपने पुत्र के देखने को आई हूं मैं सत्य २ वहांही फिर जाऊंगी १७७ हे माता! मैंने मूर्खता से जो कुछ किया है उसको तू क्षमा करनेके योग्य है और हे माता! यह मेरा पुत्र तेरा दौहित्र है इसके विशेष मैं क्या कहूं १७८ हे विपुले, चम्पके, दामे, सुरभिमालिनि, हे वृषधारे, हे श्रिये, आनन्दे, महानन्दे, घटाश्रवे! १७९ मैंने अज्ञान से अथवा ज्ञानसे भी जो कुछ कहा हो उसको हे महाभागिनियो! तुम सब क्षमा करनेके योग्य हो १८० संसार के सर्वगुणों से सम्पन्न हुई आप सब मातालोग मेरे बालक पुत्र की रक्षा करो १८१ इस अनाथ दुखिया छोटे अङ्गवाले और मातासे रहित होनेवाले मेरे पुत्र को मेरी बहिन पालें १८२ यह पुत्र अबसे मेरी बहिनों का है और अभी अत्यन्त बालक है इस निमित्त सबकोभी पोषण करके अपनेही निज पुत्र के समान पालना चाहिये १८३ दुर्गमस्थान में चरतेहुये को और पराये समूह में जातेहुये को अथवा अकार्यमें वर्तते हुये इस बालक को सब सखीजन वर्जित करती रहें १८४ जिन स्त्रियों का अन्यके पुत्र में अपने पुत्र के समान चित्त होताहै वह स्त्रियां धन्य हैं कृतार्थ हैं और लोक की माताओं के समान हैं १८५ जो सुन्दर स्त्रियां पराये अनाथपुत्रों को पालती हैं वह देवताओंके लोकमें आनन्द करती हैं इसहेतु से

इस मेरे अनाथपुत्र को अपनेही पुत्र के समान पालन करना चाहिये हे महाभागाओ! अब क्षमा करो मैं वन को जातीहूं १८६। १८७ हे सखियो! मेरी मृत्यु को तुम गौरवता से मत समझना क्योंकि सब जीवों के स्थिति और मरण यह दोनों आगेही प्राप्त रहते हैं १८८ इस प्रकारके बहुलाके वचनोंको सुनकर माता और सब सखी आदिक विह्वल होकर परमविषादको प्राप्तहोती भई और बड़े खेद से यह वचन बोलीं १८९ अहो बड़ाही आश्चर्य है कि जो यह बहुला सत्यवाक्य से उस महाभयंकर व्याघ्र के वचन में उद्यत होरही है १९० सत्य शपथों से और वाक्यों से ठगकर उस ऐसे व्याघ्र को कैसे प्राप्त होती जो अनेक यत्नों से नाश करनेके योग्य है १९१ हे बहुले! तुझको कभी न जाना चाहिये यह तेरा कैसा धर्म है जो तू सत्य के लोभ से अपने पुत्रको त्यागकर गमन करती है १९२ जहां मिथ्या बोलने से प्राणियों के प्राणों की रक्षा होती है वहां मिथ्या सत्यहै और सत्य मिथ्या है १९३ क्योंकि पूर्व के ऋषिलोगों ने यह गाथा गाई है कि प्राणों के नाश होने में शपथ खाने का पाप नहीं है १९४ यद्यपि प्राणियों का अत्यन्त हित सत्य है और सब असत्य है परन्तु स्त्रियोंके विवाहों में और गौओं के बन्धन छुटने में अथवा ब्राह्मण की विपत्ति दूर करने में शपथ खाने का पाप नहीं है और सर्वस्व द्रव्य के हरने में हास्य में वेश्या में प्राणों के संदेह में गौओं के हित में और विवाद में शपथ का पाप नहीं गिनाजाता हैं १९५। १९६ बहुला बोली मैं

अन्यों के प्राणों की रक्षा के निमित्त तो मिथ्या कह भी देती परन्तु अपने निमित्त तो कभी किञ्चित् भी मिथ्या कहने को समर्थ नहीं हूं १६७। १६८ जीव अकेलाही जन्म लेता है और अकेलाही मरकर चलाजाता है एक ही सुकृत और दुष्कृत को भी भोगता है १६९ सब मुनिजन लोग कहते हैं कि असत्य से अधिक कोई पाप नहीं है सत्य से परे कोई पुण्य नहीं है इसी हेतु से मैं सत्य बोलती हूं २०० सत्यही में सब लोक प्रतिष्ठितहैं सत्यमेंही धर्म प्रतिष्ठित है और सत्यही के वचन से समुद्र भी अपनी मर्यादा में स्थित है २०१ देखो राजा बलि भी अपने राज्य के हरने के लिये आवतेहुये विष्णु भगवान् को जान करके भी अपनी सत्यप्रतिज्ञा से उन के निमित्त वाञ्छित वस्तु को देता भया २०२ अबतक भी वह राजा बलि छल करके बँधाहुआ भी अपने सत्यही में प्रतिष्ठित है और सत्यही से उत्तम पाताल को प्राप्त होताभया २०३ और सैकड़ों शिखरों से युक्त विन्ध्याचल पर्वत बढ़ताहुआ भी सत्य से नहीं बढ़ता है २०४ स्वर्ग नरक और मोक्ष यह सबभी सत्यवाणी सेही प्रतिष्ठित होरहे हैं और जिन्होंने उन सब को असत्य वाणी से नष्ट करदिया है उन सबका सर्वस्व लोप होगया है २०५ जो पुरुष अन्य प्रकार वाले आत्मा को अन्यथा करता है उस आत्मा के हरनेवाले को कौनसा पाप नहीं होता है २०६ इस हेतु से मैं अपने आत्मा को आत्माही से नाश नहीं करूंगी क्योंकि आत्मा के लोप करने से घोर नरक में प्राप्त

होता है २०७ अगाध और निर्मल शुद्ध सत्यरूप तीर्थ रूपी ह्रद में स्नान करके मैं परमगतिको प्राप्त हूंगी २०८ हज़ार अश्वमेध यज्ञ और सत्य को जो तुला में तोला तो सत्यही अधिक रहा २०९ सत्य उत्तम तप है परम श्रुत है क्लेशादि से रहित है अपनेही आधीन है जगत् का साधारण भूषण है साधुजनों का कसौटीरूप है श्रेष्ठ पुरुषों के कुल का धन है सम्पूर्ण आश्रमों में उत्तम है और हे सखियो ! जिसको धारण करके म्लेच्छ भी स्वर्ग को प्राप्त हो जाताहै ऐसे सत्य को मैं कैसे त्याग सक्ती हूं २१० एक सखी बोली हे बहुले ! तू सब देवता और दैत्योंसेही नमस्कार करनेके योग्य है क्योंकि जो तू परम सत्य करके अपने दुस्त्यज प्राणों को त्यागती है २११ हे कल्याणिनि ! हम क्या कहें जो तू धर्म के बोझों को धारण करती है और इस त्याग से तुझको त्रिलोकी में कोई बात दुर्लभ नहीं है २१२ और इस त्याग करके पुत्रसे तेरे वियोग को हम नहीं देखती हैं क्योंकि कल्याण में चित्तवाले जीवों को कहीं भी आ-पत्ति नहीं है २१३ भीष्मजी बोले सखियों करके इस प्रकार कही हुई धर्म में निश्चय मनवाली विरह में उद्विग्न और पुत्रके शोक से युक्त होनेवाली वह बहुला गौ सम्पूर्ण गोपीजनों को देख कर और गोकुल की परि-क्रमाकर स्थित होकर पूछती हुई देवता, वृक्ष, पर्वत, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, दशदिक्पाल, नक्षत्र और ग्रह इन सबको बारम्बार प्रणामपूर्वक यह विज्ञापन करती हुई कि तुम सब अपने २ प्रभाव

करके मेरे अनाथ बालक की रक्षा करना २१४। २१७ करुणासमेत हित चित्तवालों को अन्यजन भी अप-नाही होता है इस हेतुसे तुम सब इस मेरे अनाथ बालक की पालना करोगी २१८ और जो वन के आश्रयवाले सिद्धजन हैं अथवा देवता हैं वह सब वन में बिचरते हुये मेरे बालक की रक्षा करो २१९ और चम्पक-अशोक और पुन्नाग यह सब सफल वृक्ष भी मेरे बड़े विह्वल संदेश को सुनो २२० कि इस अ-केले दीन विषम वन में चरते हुये मेरे पुत्र की अपने पुत्र के समान रक्षा करो २२१ इस माता पितासे हीन दीन मनवाले भूमिमें बिचरते दुखित होनेवाले महावन में विचरतेहुये और माता पिता के शोक से युक्त मेरे अनाथ क्षुधा तृषा से युक्त अकेले और सब जगत् को शून्यरूप देखनेवाले बालक का पोषण तुम सब को करना चाहिये २२२। २२४ भीष्मजी बोले कि; पुत्र के शोक के वश में प्राप्त हुई वह बहुला गौ इस रीतिसे सबोंसे अपना संदेशा कहके शोकरूपी अग्नि में संतप्त हुई पुत्रदर्शन की आशा से रहित पतिसे वियोगवाली चकवी और वृक्ष से गिरीहुई लता के समान यष्टि से रहित अन्धे के समान पद २ पर गिरती पड़ती हुई जहां कि वह मांस का खानेवाला घूरता हुआ तीक्ष्ण-दंष्ट्र और नखवाला कामरूपी सिंह था वहां प्राप्त होती भई २२५। २२७ और वहां उस सिंह को देखकर यह वचन बोली २२८ हे महाभाग! सत्यधर्म में व्यवस्थित होकर मैं यहां आई हूं सो अब तुम मेरे मांस से इच्छा-

पूर्वक अपनी तृप्ति करो २२९ और मेरे रुधिर मांसादिकों से अपने पञ्चतत्त्वों को भी तृप्त करो २३० बहुला के इस वचनको सुनकर वह सिंह बोला हे कल्याणिनि! तेरा आवना उत्तम है हे सत्यवादिनि, बहुले! तुझको कभी भी अशुभ नहीं है २३१ हे बहुले! जो तैंने आने को कहा था सो सत्य किया परन्तु मुझे उस समय आश्चर्य हुआ था कि यह कैसे फिर आवेगी २३२ मैंने तेरी सत्य की परीक्षाकेही लिये प्रथम तुझको भेज दिया था नहीं तो मेरे आगे से विना मेरे भक्षण किये तू जीवती हुई कैसे जाती २३३ सो मैंने गौओं का सत्य अपूर्व देखा अर्थात् प्रथम मैंने ऐसा सत्य नहीं देखा था इसलिये तेरी इस सत्यता से मैंने तुझे छोड़दिया२३४ क्योंकि सत्य में सब लोक प्रतिष्ठित हैं सत्यमेंही स्वर्ग भी प्रतिष्ठित है सत्य में भी ज्ञान प्रतिष्ठित है और सत्य मेंही सब प्रतिष्ठित हैं २३५ सत्य से देवता, पितर, ऋषि और सिद्ध यह सबभी प्रतिष्ठित हैं और सत्यही में सब कुछ प्रतिष्ठित है २३६ गौ धन्य है पृथ्वी धन्य है और हे सुव्रते! तू भी परम धन्यहै और हे शुभे! जिसके राज्य में तू बसती है वह राजा भी धन्य है २३७ और जहां तुझ सरीखी सत्य बोलनेवाली बसती हैं वह देश भी धन्य है हे माता! तृण वृक्ष और जल इन सबसे युक्त होनेवाले वह देश भी धन्य हैं कि जहां दर्शनोंहीसे पाप नष्ट करके पवित्र करनेवाली बहुला गौ बिचरती है और वह धन्यहैं कृतार्थहैं और उन्हींका सुकृतभी कियाहुआ है अथवा जन्मभी सार्थक है कि जो गौओं के दूध को

पीते हैं २३८।२३९ भीष्मजी बोले-इसके अनन्तर वह व्याघ्र इस प्रकारके वचनों को कहकर चित्त को निश्चय में युक्तकर अपने विचार से फिरभी यह वचन बोलता भया २४० अर्थात् सिंह ने कहा कि; यह सत्य हमको आज दैव ने ही दिखायाहै अन्यथा व्याघ्र से छूटकर फिर कभी नहीं आती है यही हमको उपदेश हुआ है २४१ गौओं के सत्य को देखकर मैंभी अब जीनेकी इच्छा नहीं करताहूं मैं अबसे लेकर जबतक जीऊंगा तबतक वही कर्म करूंगा जिससे कि सब पापों से छूट जाऊं २४२ मैंने हज़ारों जीव भक्षण कियेहैं और मारे हैं इन दारुण कर्मों को करके मैं कौन से लोकों को जाऊंगा २४३ इस हेतु से मैं पवित्र तीर्थों पर जाऊंगा और इस अपने पातकी शरीर का शोधन करूंगा पर्वत पर चढ़कर गिरूंगा अथवा अग्नि में प्रवेश करूंगा २४४ सब प्रकार से अपने इस दुष्ट शरीर को मैं ऐसे सुखाऊंगा जैसे कि ग्रीष्मऋतु में सूर्य सब जलाशयों को सुखादेता है २४५ हे बहुले ! पापोंकी शुद्धि के लिये जो मुझको कर्तव्य है उसको तू बड़े संक्षेपमात्रसे कह क्योंकि विस्तारपूर्वक कहनेका समय नहीं है २४६ बहुला बोली-सतयुग में तप की प्रशंसा होती थी त्रेता में ज्ञान की उत्तमता थी द्वापर में यज्ञको ही उत्तम कहते थे और कलियुग में केवल एक दानही उत्तम है २४७ क्योंकि सब दानों में यही एक दान महाउत्तम है कि जो सब प्राणियों को अभयदान करना है अर्थात् किसी को भी मन काया वाणी और कर्मसे भय नहीं होने देवे २४८

जो चर अचर प्राणियों को अभयदान देता है वह सब पापों से मुक्त होकर परब्रह्म में प्राप्त होता है २४९ अहिंसा के समान ज्ञान नहीं है अहिंसा के समान सुख नहीं अहिंसा के समान धर्म नहीं अहिंसा के समान तप नहीं और अहिंसा के समान कोई भी धर्म हुआ है न आगे होगा अहिंसा के समान ब्रह्मज्ञान दम आदिक भी नहीं हैं जैसे कि हाथी के पैर में सब जीवों के पैर अन्तर्गत होजाते हैं हे सिंह ! उसी प्रकार सब धर्म भी अहिंसाही से विधान किये जाते हैं यह संताप की नाश करनेवाली अहिंसा योगरूपी वृक्ष की शाखा है और पुण्यरूपी पुष्पों का ख़ज़ाना है और मोक्षरूपी फल की मूल है २५० । २५३ दुख और लज्जारूपी सूर्य से संतप्तहुये मनुष्य छायारूप योग अर्थात् ज्ञानरूप वृक्ष के आश्रय होकर उत्तम फलरूपी मोक्ष को प्राप्त होते हैं और कभी दुःखों से नहीं तप्त होते हैं २५४ हे सिंह ! यह सम्पूर्ण वृत्तान्त मैंने तुझ से संक्षेपतापूर्वक कह दिया है इसको तू भी जानता है केवल मेरी परीक्षा ही करता है २५५ और हे व्याघ्र ! तुमको भी मैं यह जानतीहूं कि यह शरीर किसी शाप सेही प्राप्त हुआ होगा २५६ सिंह बोला—हे बहुले ! मुझको पूर्वमें देवताओं ने शाप देदिया था तब मेरा शरीर सिंह का रचा था उस समयतक तो मुझे स्मरण रहा परन्तु फिर प्राणियों के घोर बध करने से मुझे सब विस्मरण होगया था २५७ अब तेरे संस्पर्श और उपदेश से मुझको फिर स्मरण होगया है हे शोभने ! अब मैं तेरी

कृपा से उस शाप से छूट गयाहूं २५८ हे बहुले! मैं बहुत प्रसन्न होगया हूं अब तू अपने पुत्र से मिलकर आनन्दकर और तू भी अपने इस सत्य से परमानन्द को प्राप्त होगी २५९ भीष्मजी बोले-इसके अनन्तर ईश्वर में मनको लीनकरके वह सिंह अपने शरीर को त्याग कर स्वर्ग में प्राप्त होताभया २६० अर्थात् वह सिंह सब पापों से विमुक्तात्मा योग ऐश्वर्ययुक्त उत्तम विमान में स्थित अप्सराओं के गणों से सेवित होकर स्वर्ग में प्राप्त होताभया २६१ उस सिंह को विमान में बैठा हुआ देखकर वह बहुला गौ बड़े आश्चर्य को प्राप्त होतीभई और बड़े आनन्द में मग्न हो शरीर से हृष्ट पुष्ट होकर फिर गोकुल में प्राप्त होतीभई २६२ और वहां आकर अपनी सब सखी सहेली आदिसे सिंह के सब वृत्तान्त को कहती भई और अपनी माता और पुत्र सेभी वर्णन करती भई २६३ इसके अनन्तर पुत्र समेत बड़ी प्रसन्नतापूर्वक गोकुलके बैल, बछड़े, गोपी, ग्वाल और अन्यजनों से भी युक्त होकर निर्भय होके सम्पूर्ण वन में बिचरती भई और गोप, गोपी, बछड़े और गोपालादिक यह सब उस गौ को देखकर बड़े प्रसन्न होतेभये २६४। २६५ उस गौ के प्रभावसे अन्य सब गौवें भी इच्छापूर्वक चेष्टा करती हुई वन में विचरनेलगीं फिर थोड़ेही काल में अपने सत्य के प्रताप से वह बहुला गौ भी सेनाभृत्यों समेत अपने राजा को और गोप गोपी सखी आदिकोंसे युक्त गौओं के समूह और जल स्थलबासी जीवजन्तु वन के वृक्ष बेलि

वनस्पतियों कोभी साथ लेकर स्वर्ग में प्राप्त होती भई २६६। २६८ अर्थात् सबसखियों समेत सुन्दर विमान में बैठी हुई स्वर्ग में प्राप्त हुई वहां प्राप्त होकर उन सब समेत फिर स्वर्ग से भी ऊपर सत्त्वगुणवालों के लोक में प्राप्त होगई और वहां सब भोगों समेत देवताओंके साथ महाप्रलय पर्यन्त क्रीड़ा करतीभई इस रीति के सत्य वचनके इस माहात्म्य को मैंने तुझसे वर्णनकिया इस आख्यान को जो कोई नित्य सुनेगा वा पढ़ेगा वह स्वर्ग में प्राप्त होगा बड़े २ ऋषियों का भी कथन है कि जो इस बहुला गौ और सिंहके वृत्तान्त को नित्य२ पढ़े वा सुनेगा वह अवश्य परमगति को पावेगा और पुत्रसे रहित स्त्री वा पुरुष दोनों पढ़ेंगे और सुनेंगे वह पापों से रहित होकर पुत्रों की प्राप्ति करेंगे जो पुरुष सब अष्टमी तिथियों में प्रातःकाल उठके इस आख्यान को पढ़ता है वह निस्संदेह परम उत्तम लोकों को प्राप्त होताहै और गौओं के स्थान में बैठ कर पढ़नेवाले पुरुष को उत्तमसिद्धि प्राप्त होतीहै और धन की वृद्धि भी होती है २६९। २७५ और क्षेत्र में पढ़नेसे उस क्षेत्र में धान्यादिकों की वृद्धि होतीहै और जो इस संवाद को घर में पढ़ता है उसके पुत्रों की वृद्धिहोती है २७६ और दुर्गम स्थानोंमें पढ़नेसे मनुष्य दुर्गम स्थानों को पार कर देता है और आयु अरोग्य ऐश्वर्य और ज्ञान यह सब भी बढ़ते हैं २७७ हे युधिष्ठिर ! अब मैं जगत् की उत्पत्ति स्थिति नाश की साधन करनेवाली विभूतियों करके अनेक प्रकार के रूपों के धारण करनेवाले सना-

तन निरन्तर दृष्टिवाले संसारके स्वामी परमात्मा ईश्वर को संसारके भय को दूर करनेवाली सिद्धिके अर्थ भजन करताहूं ॥ २७८ ॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायांवहुलाव्याघ्रसंवादोनाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

इकतीसवां अध्याय ॥

वैशम्पायन बोले-हे जनमेजय ! इसके पीछे सम्पूर्ण शास्त्रज्ञों में श्रेष्ठ देवताओं के समान उत्तम व्रतवाले सब शास्त्रों के तत्त्वज्ञ बुद्धि में विशारद शरशय्यापर प्राप्तहुये वेद वेदाङ्ग के ज्ञाता ध्यानयोग में परायण ऐसे भीष्म-पितामह को राजा युधिष्ठिर साष्टांग प्रणाम करके यह पूछताभया १ । २ कि हे पितामह; महाप्राज्ञ ! सब प्राणियों के हित में रत रहनेवाले आप कृपा करके ब्राह्मण की रक्षा का जो फल है उसको मेरे आगे वर्णन करो ३ भीष्मजी बोले-हे नृपशार्दूल ! प्रथम विद्वान् ब्राह्मण की रक्षा के फल को सुन यहां भी मैं उस प्राचीन इतिहास को कहताहूं जिसमें कि सुव्रता कन्या का और महात्मा धर्मराज का संवाद है ४ । ५ एक सर्वाङ्गसुन्दरी उत्तम वर्ण श्रेष्ठ शील सुन्दर वेषवाली अपनी सुन्दरता से शोभित सुव्रता नाम कन्या होती भई उसका पिता सब शास्त्रों का ज्ञाता होकर बड़ा विद्वान् होता भया वह सदैव सुन्दर इतिहासादि और अनेक विद्याओं के पढ़ाने में निपुण होता भया ६ । ७ और हे राजेन्द्र ! उस ब्राह्मण की भार्या भी परम उत्तम पतिव्रता और साध्वी

होती भई दैवयोग से वह स्त्री मृत्युबश हुई ८ तब वह ब्राह्मण दुःख से गृहस्थाश्रम की इच्छा को दूर कर बड़े व्रत में निश्चय करके तपोवन में जाता भया ९ वहां जाकर शाकमूल फलों के आहार करनेवाले ऋषियों से सेवित निर्मल पवित्र सरोवरों से और वृक्षों के समूहों से सेवित ऐसे वन में वह ब्राह्मण मुनियों के संग ध्यान-योग में परायण होजाता भया और हे राजन्! उस सुव्रता कन्या की रक्षा करता हुआ उस वन में निवास करता था १०।११ उस बुद्धिमान् ब्राह्मणने उस बालक कन्या को पालन करके बढ़ाया था फिर अपनी माता से हीन होकर भी वह कन्या विधाता के बल से बढ़ती हुई १२ और उसका पिता कृत्रिम पुतली आदि लीला क्रीड़ा के सुन्दर पात्रों से और अनेक प्रकार के वचनों से उसका लालन करता भया १३ अप्सरा के समान उपमावाली अपनी पुत्रीको वह धर्मात्मा ब्राह्मण पालता भया और उसी साध्वी कन्या को अपनी संतान मानता भया १४ उस सुव्रता कन्या को बालक जानकर वह उसपर बड़ा प्रेम करताथा और माता से हीन जान चिन्तवन करताहुआ वह ब्राह्मण उस कन्या को हाथ से ग्रहण करताभया १५ संसार के धर्मों का जानने वालाभी वह महाप्राज्ञ ब्राह्मण विरक्त होकर भी अपनी कन्या के मोहसे संन्यास को नहीं धारण करताभया १६ सबधर्मों से संयुक्त होकर वह उसका पिता माता से रहित अपनी उस तपस्विनी कन्या की इस प्रकार से रक्षा करता हुआ स्वर्गलोक में प्राप्त होताभया १७ इस के

पीछे वह दीना गरीबिनी अपने माता पिता दोनों से भी हीन होकर बड़े दुःख से विलाप करती भई और महाव्याकुल होकर शोकसमुद्र में डूबजाती भई १८ फिर चैतन्य होकर यह वचन बोली कि; अहो सब वस्तुओं की इच्छाओंसे रहित मेरा दयालु पिता अब आशा से रहित दुःखों से जीती हुई मुझ बालक को त्याग कर चलागया १९ वह मेरा पिता सबजीवों में आत्मभाव रखनेवाला था और मेरे अत्यन्त हित में रहता था सो अब मुझको इस प्रकार त्यागकर स्वर्ग-लोक को चलागया २० परम दुःख से पीड़ित और पिता के शोक से विह्वल होकर मैं अब इस शरीर को धारण नहीं रक्खूंगी क्योंकि अब मेरा व्यर्थ जीवना दुख का मूल है २१ और ब्रह्मज्ञभी मेरा पिता परमार्थ से बहिर्मुख होगया क्योंकि मुझको मातासे हीन जान-कर बड़ी चिन्तापूर्वक मेरी ही पालना करता रहा २२ इसके विपरीत मैं और स्थावर वृक्षादिक उसके समान ही थे तौभी वह करुणा करके केवल मुझही में स्नेह करताभया २३ जिसने मुझे बालकपनसेही बढ़ाकर मेरी सब प्रकार से रक्षाकरी उस पिता से वियोग होकर मैं किसी प्रकार से नहीं जीऊंगी २४ नदी में गिरूं वा जलती हुई अग्नि में प्रवेश करूं अथवा पिता से हीन हुई मैं निराश्रय होकर पर्वतसे गिरूंगी २५ भीष्मजी बोले-इस प्रकार शोक से व्याकुल हुई वह निराश्रय बा-लक कन्या विलाप करतीभई तब मुनियों समेत स्त्रियों से बोध कराई हुई अपने समान अवस्थावाली अन्य

कन्याओं में रोवती हुई महापीड्यमान उस कन्या को देखकर सबप्राणियों में हित करनेवाले करुणा में युक्त हुये धर्मराज वृद्धब्राह्मण का रूप धारण करके उस कन्या से यह वचन बोले-हे विशालाक्षि, हे अति विह्वले! अब तू रोनेसे तृप्त होचुकी तेरा पिता अब फिर नहीं प्राप्त होवेगा इस हेतु से तू शोच को त्यागदे २८।२९ क्योंकि मनुष्यों का यौवन, रूप, द्रव्य का संचय, नीरोगता और इष्टमित्रों का सहबास यह सब अनित्य हैं इस कारण से तू शोच करने के योग्य नहीं है ३० हे शोभने! तैंने पूर्वजन्म में ऐसाही कर्म किया था इसीसे इस वन में सब मुनिजनों के आगे तुझको तेरे पिता से वियोग हुआ है ३१ हे शुभे! वृद्धरूप महाकर्मी और अतिकरुणावान् ऐसा तेरा पिता अपने मन में ऐसे विचार करता था कि इस पुत्री के विवाह को करके जामाता को देख सबकर्मों को त्याग लोहे-पत्थर और सुवर्ण में समानभाव हो परमपद को प्राप्त होऊंगा ३२। ३३ परन्तु फिर काल की प्रबलता से करुणामय महातपस्वी वह तेरा पिता हे बाले! तेरीही चिन्ता करता हुआ स्वर्ग में प्राप्त होताभया ३४ वह तेरा पिता अपने कर्म के अनुसार विधाता के बल से प्रेराहुआ तुझको त्याग के कहीं चलागया है सो हे बाले! तू विधाता की प्रबलता को देख ३५ यह करलिया यह करना है यह विना किया है ऐसे २ विचारों को करतेहुये पुरुषों को कर्म अपने आधीन करलेता है ३६ हे सुव्रते! इस हेतुसे तू दुःख को त्यागकर जिस कर्म से तेरे माता पिताओं का

वियोग होगया है उस कर्म को तू सुनने को योग्य है ३७ पूर्वजन्म में तू सुन्दरीनाम परम सुन्दर बेश्या होकर नृत्य गीतादि में निपुणतापूर्वक बेणु वीणादि बाद्यों में कुशल होतीभई ३८ तू अपने स्वरूप में स्वर्ग से पतित हुई अप्सरा के समानरूप लावण्य में श्रेष्ठ व्यवहार करनेवाली स्त्रियों में वस्त्र आभूषणों से युक्त रूपसम्पन्न सुन्दर वेष और आभूषणों से शोभित थी ऐसी तुझको देख के गुणों से सम्पन्न भी यह ब्राह्मण तुझपर शीघ्र मोहित होगया ३९। ४० तब तैंने अपने ऊपर मोहित हुये काम से पीड़ितहुये उस ब्राह्मण को जानके और धनाढ्यता पूर्वक रूप से सम्पन्न विचार के उसको अपनी सखी जनों से वश में करके अपने घर में बुलाया और चार वर्षतक उसके साथ रमण करतीभई ४१। ४२ उस ब्राह्मण की सब सम्पत्ति और धर्मादिक गुण यह सब तेरेही निमित्त होतेभये फिर पाप में अनुरक्त विष-यात्मक उस मूढ़ ब्राह्मण को तेरे घर में किसी दूसरे कामी पुरुष ने मारडाला तब वह ब्राह्मण तरुण बारह वर्ष की अपनी भार्या को त्यागकर शूद्र के संग से महा-निन्दित होकर घोरनरक में प्राप्त होताभया इसके अन-न्तर उसका वृद्ध पिता और पुत्र से वियोग होनेवाली उसकी माता और पतिव्रता भार्या यह सब दुःखसे युक्त होकर तुझ दुष्टमतिवाली से ऐसे वचन कहते भये अर्थात् तेरे वचनों से तेरे ठगनेको जानकर बड़े क्रोध से बोले ४३। ४७ प्रथम माता बोली हे पापिनि! तैंने औषधियों से मेरे पुत्र को वशीभूत करके हे दुष्ट आच-

रण करनेवाली ! तैंने ठगकर उससे हमारा वियोग क-
रवा दिया इस मेरे पुत्र के वियोग करवाने से हे चण्डी !
तूभी दूसरे जन्म में अपनी माता से हीन होगी ४८।४९
पिता बोला-यह बेश्या दूसरे जन्म में बाल्यावस्थामेंही
पिता माता दोनों से हीन महादुःखित और अतिमो-
हित होके पिता के शोक से अतिसंतप्त होवेगी ५०
फिर उसकी भार्या बोली यह चण्डी दूसरे जन्म में कन्या
होकर विवाह हुयेविना अतिमोहित और अनाथ होकर
शोक से संतप्त होवेगी ५१ यह पूर्ववृत्तान्त कहकर फिर
ब्राह्मण बोला हे अकार्य में प्रवृत्त होनेवाली, कन्या !
तुझको उस ब्राह्मण की माता पिता और पतिव्रता भार्या
इन सबों ने बड़े क्रोधसे इस प्रकार का शाप दिया
है ५२ हे वरवर्णिनि ! इस हेतुसे तू प्रथम किये हुये
कर्म से इस प्रकार के दुःखसे संतप्त होनेवाली कन्या
हुई है ५३ सुव्रता बोली-हे भगवन् ! तुमने पूर्वजन्म के
होनेवाले सब वृत्तान्त वर्णन किये हैं इस हेतु से मैं
आप से पूछतीहूं कि ऐसे घोरपापों की करनेवाली मैं
ब्रह्मवादी उत्तम ब्राह्मण के घर में कैसे उत्पन्न होती
भई ५४।५५ दश हत्याओं के समान एक कुम्हार
होता है दश कुम्हारों के समान एक कलार और दश
कलारों के समान एक बेश्या और दश बेश्याओं के स-
मान एक राजा होता है ५६ ऐसे धर्मज्ञ और तीक्ष्ण
व्रतवाले ब्राह्मण कहतेहैं इसलिये इस द्विजोत्तम के घर
में मेरा जन्म कैसे होता भया ५७ ब्राह्मणरूप धर्मराज
बोले-हे सुन्दर हास्यवाली ! नित्य २ पापों के आचरण

करते हुयेभी तू जिस कर्म से ब्राह्मण के शुभकुल में उत्पन्न होती भई उसके कारण को मैं कहताहूं उसको सुन ५८ एक समय ज्ञान में सम्पन्न सत्यवक्ता निन्दा से रहित सब प्राणियोंमें समभाव रखनेवाला ज्ञान से पापों को दूर कियेहुये और जगत् में व्याप्त होनेवाले ब्रह्मको चिन्तवन करता ब्रह्ममेंही स्थितहुये जगत् को ब्रह्मात्मक और ब्रह्ममय देखताहुआ ५९।६० इस प्रकार ज्ञान- युक्त ब्रह्म में स्थित प्रिय अप्रिय में अनुद्विग्न स्थिरबुद्धि जड़तासे रहित बाह्येन्द्रियों के संग से रहित सदा ब्रह्म में तत्पर सुखदुःखादि से रहित सब प्राणियों के हित में रहनेवाला भय अभिमान से वर्जित सब दोषों से हीन ऐसा वह ब्राह्मण प्राण और अपानवायु को यथार्थ विधि से समानकर नेत्रों को निश्चलभाग में स्थितकर सबलोकों के महेश्वर और निष्कल्मष ऐसे ब्रह्म को ध्यान करता हुआ उन्मत्त के समान वेष को धारणकर उन्मत्तही होकर इस पृथ्वी पर एक ग्राम में एकरात्रि बास करता इस क्रमसे बिचरता हुआ ६१।६५ फिर जहां तू पूर्वजन्म में प्राप्त हुई थी उसी रमणीक नगरी में दैवयोग से वह भी प्राप्त होताभया हे सुव्रते ! वह महाभाग द्विज किसी प्रकार से तेरे घर पर प्राप्त होकर तेरे द्वार के आगे चौतरे परही निर्भय होकर बासकरता भया प्राचीन वस्त्रों का धारण करनेवाला महाशरीरयुक्त कृश और मलिनरूपमेंभी निर्धूम अग्नि के समान होता भया तदनन्तर रात्रि होनेके समय उस पुरी के रक्षक मनुष्य कवच को पहरेहुये खड्गबाण और धनुष इन

सब को धारण कियेहुये बहुतसे शूरवीर लोग भेरी के समान भयंकर शब्दों को करते इच्छापूर्वक बिचरते और पाप में निरतहुये वह राजा के पुरुष पापों से रहित उस ब्राह्मण को देखके यह चोर है ऐसे कहकर उस सोते हुये को जगाते भये और उससे बोले कि, ऐसी अद्भुत आकृतिवाला तू कौन है ६६। ७१ तू कहां से आया किसका कौन है हमको आश्चर्य होता है यह सुनकर उस ब्राह्मण ने यथार्थविधि से अपना सारा वृत्तान्त कहा ७२ तबभी वह रक्षकलोग उसका विश्वास नहीं करते भये और उसके वृत्तान्त को असत्यही जानकर उसको अपनी पापबुद्धियों से रस्सी से बाँधते भये ७३ इसके पीछे वह पूर्वकर्म का जानने वाला ब्राह्मण न प्रसन्न हुआ और दुखी हुआ परन्तु सत्य २ ही वचन कहता भया उस समय उस ब्राह्मण के सत्य २ वचनों को सुनकर दैवयोगसे तू उस महात्मा ब्राह्मण के माहात्म्य को जानकर अपने भृत्यों समेत शीघ्रही घर से निकल उन राजपुरुषों से ठहरो २ ऐसे वचन कहती हुई अपने घर से दीपक को हाथ में लेकर उस महात्मा को देख इस प्रकार कहनेलगी ७४। ७६ कि यह धर्मात्मा ब्राह्मण है इसको छोड़ देनाचाहिये यह पापबुद्धिवाला कोई चोर नहीं है इसने कदाचित् चोरी करी होगी वह मैंने करी होगी तुम इसको बन्धन से छोड़ कर चलेजाओ इस रीति से उस ब्राह्मण को छुटा करअपने साथही अपने घरमें लिवालाई ७७। ७८ और उसका बड़ा आदर करके उसको शय्या सोनेको दी

और धूप, दीप, नैवेद्यादि से ब्राह्मण का सत्कारपूर्वक आराधन करके बड़े न्याय से उसको नमस्कार कर यह वचन कहतीभई कि हे ब्रह्मन् ! जो भोजनाच्छादन में तुम्हारी इच्छा होय तो निस्संदेह होकर ग्रहण कीजिये आप कृश हो मलिनवस्त्रवाले हो हे ब्रह्मन् ! आप आनन्दपूर्वक कुछ दिन यहां निवासकरो और अपने शरीरको स्वस्थ करके प्रकृति में स्थित होकर फिर सुख पूर्वक गमन करजाना ७९ । ८२ यह सुनकर वह निर्मल चित्तवाला ब्राह्मण सब वस्तुओं की इच्छा से रहित होकर यह वचन बोला कि मैं क्षुधा तृषा से युक्त नहीं हूं केवल इच्छापूर्वक यहां आगया हूं हे सुन्दरि ! इसके विशेष मुझे किसीबातकीभी इच्छा नहीं है हे प्रिय बोलनेवाली ! तू मेरे कृत्य में सर्वथा व्याकुलता से रहितहो ८३।८४ और तू भर्ता समेत होकर अपनी शय्यापर आनन्दपूर्वक शयनकर हे करुणासे दया में लालसा करनेवाली ! मेरी किसी बात में भी रुचि नहीं है हे सुस्मिते ! तैंने भक्तियुक्त होकर जो मेरी रक्षाकरी है यह क्या थोड़ीबात है ८५ हे सुन्दरि ! पराये आत्मा के पालन में तेरे समान कौन है यह सत्य २ कहताहूं कि गुणवान् साधुजन केवल परायेही उपकार के निमित्त ऐसे होते हैं जैसे कि सबके आनन्दके लिये चन्दन के वृक्ष होते हैं ८६ जैसे कि अपने शरीर मन से काम कियाजाता है उसी प्रकार सब तिर्यक्योनि पर्यन्त प्राणियों की भी रक्षा में मन रखनाचाहिये हे शोभने ! ऐसा विचारकर आत्मा के हित की इच्छा करनेवाले जन को अन्यलोगों

कीभी रक्षा करनी चाहिये ८७ जो पुरुष अपने सब द्रव्य को अन्यकेही प्रयोजन में ख़र्च करता है वह दया से युक्त पुरुष इस संसार में धन्य कहाता है और वह सब जनों के आश्रयमें भी रहनेवाला होकर उत्तम मार्ग में फलवान् वृक्ष के समान उपमावाला कहाताहै ८८ जो पुरुष अपने पूर्वजन्म के कियेहुये कर्मफल से धन धान्य और गौ आदिक समृद्धिवाले घर को प्राप्त होजाता है और बड़े धनों से आढ्य होकरभी जो पुरुष अभ्यागतों से रहित है वह निन्दित हुआ जन इस संसार में वृथा कैसे जीता है ८९ जो पुरुष पराये उपकार में रत रहता है वह कृश पुरुषभी ऐसे धन्य और सुन्दर बुद्धिवाला है हे शुभे! जैसे कृश हुआ वृक्षभी अपने शरीर के काष्ठ को अन्य मनुष्य के इन्धन के निमित्त देता है ९० धर्म में युक्त चित्त करनेवाले पुरुषों के गृहों में प्रतिदिन धनों की वृद्धि होती है और ऐसे मनुष्य की संपत्ति भोगनेसे भी कम नहीं होतीहै किन्तु जब उसका फल नष्ट हो-जाताहै तब उसकी संपत्ति भी नष्ट होजातीहै ९१ जिन पुरुषों की तृष्णा अत्यन्तही बढ़ी रहतीहै और मनसे हीन होतेहैं वह धनके भोगने में अपनी इच्छा नहीं क-रतेहैं ऐसे लोगों के सबधनों को दूसरे चतुरजन ऐसे हरलेते हैं जैसे कि तीरपर प्राप्त होनेवाले मत्स्यों को काकादिजीव हरलेतेहैं ९२ जो लोग अपनेधर्मों में अन्यधर्मों का संग्रह करते हैं वह सब मनुष्य धर्मराजके स्थान में प्राप्तहोते हैं और बड़े आश्चर्य की बात है कि ऐसा होनेपरभी लोग अपने धर्म से विरुद्ध और विमुख

रहते हैं इससे विशेष दुर्बुद्धियों को क्या दुष्कर है ९३ जो मूढ़बुद्धिवाला पुरुष धन शरीरस्वजन अपनाजीवन-प्रिय-प्रियमित्र और शरीर की संपत्ति इन सबको बहुत कालतक स्थिर देखता है उसके समान कोई दुर्मति और मूर्ख नहीं है ९४ यह सब चराचर जगत् अनित्य है जो उत्पन्न होताहै वह नष्ट होताहै ऐसा चित्तसे जानले इस के विशेष में बहुत क्या कहूं जो धर्म के अर्थ दान देतेहैं वही पण्डित हैं ९५ हे सुन्दरि ! यह धर्म फलकी इच्छा-वाले को सदैव वाञ्छित फलोंको देता है और जो पुरुष निष्काम होकर धर्म करते हैं वह संसाररूपी समुद्र का शोषण करलेतेहैं ९६ हे महासुन्दरि ! यह मैं तुझसे कहताहूं कि जो आत्मा का हितकरनेवाला विरुद्धभी कर्म होय तो भी उसीको कर हे प्रिये ! इच्छा से रहित-हुये संयम न करनेवाले भी मनुष्य करुणा के वश में प्राप्त होजातेहैं ९७ हे शुभे ! यह शरीर स्वभावसेही मलीन है और सदैव सैकड़ों दुःखों का भोगनेवालाहै हे वरानने ! शरीर के संस्कार में जो तत्पर रहता है वह मूढ़बुद्धि पुरुष बड़ेभारी क्लेश को प्राप्त होताहै ९८ और पुण्य में प्रवृत्तचित्तवाले शरीरधारी महात्मालोगों को भी दुःख होते हैं तौभी दुर्मति वाला पुरुष शरीर के बन्धन के त्यागनेकी इच्छा नहीं करताहै ९९ यह शरीर इस जीव का पात्ररूप भाजन है और अपार भयरूप मृत्यु से व्याकुल है इस प्रकार के शरीर को इच्छा से रहित देखता हुआ पुरुष अत्यन्त सुख के स्थान को प्राप्त होजाता है १०० कितने प्रमाण तक यह शरीर

धारण करनाचाहिये जो इसका कुछ प्रमाण भी होजाय तो उसीके धारण से पूर्ण होजाय इस हेतु से इस शरीर को आत्मा के बोध का साधन ध्यान में करके तत्त्वार्थ के बोध का आचरण करे १०१ तत्त्व में प्रवृत्त चित्तवाले महात्मा की विपरीतबुद्धि नाश को प्राप्त होजाती है इस से वह महात्मा शुद्धि के साधनरूप इस शरीर को जान के असत्य सत्य का विचारकरता हुआ चिन्तवन करेगा १०२ और विपर्ययरूप ज्ञान ऐसे दूर होता है जैसे कि यथार्थज्ञान से मृगतृष्णा रूपी जल का ज्ञान दूर होजाता है क्योंकि सूर्य के आगे अन्धकार कैसे ठहर सक्ता है हे सुलोचने ! उसी प्रकार मेरी भी दुर्बलता को तू विचार से चिन्तवनकर १०३ और तत्त्व में विशेष करके बुद्धि को युक्त करनेवाला पुरुष जब विपर्यय ज्ञान करता है तब योग से मन को शान्ति में धारण करके वह पुरुष निश्चय परमसिद्धि को प्राप्त होताहै १०४ तत्त्वस्थान के मार्ग से नहीं बर्तनेवाले चित्त के द्वारा कहीं प्रमाण कहीं अप्रमाण और कहीं विकल्परूप संदेह होता है अर्थात् कहीं बोध होता है कहीं नहीं होता और कहीं पूर्वअनुभवका एक साधन होजाता है १०५ और जब कभी पञ्चेन्द्रियों की वृत्ति से मन को दूर कर अपने स्वरूप में प्रवेश करके निश्चय स्थिति को करता है तबभी आत्मनिष्ठ अर्थात् आत्मा का बोध होताहै फिर विचारपूर्वक सबकालमें धारण करनी चाहिये १०६ हे शोभने ! विरक्तरूप विषयों से रहित चित्त और योग का जाननेवाला पुरुष परम अभ्यास के बल से चित्त

को अपने स्वरूप में स्थित करता हुआ परमात्मा में धारण करता है १०७ जब आत्मा में रोका हुआ चित्त अपने स्वरूप की स्थिति को प्राप्त होताहै तब मोक्ष को प्राप्त होताहै और बाह्येन्द्रियों की वृत्तियों की गौरवता को नष्टकरने से वह पुरुष योग का जाननेवाला होता है १०८ धर्मरूप ब्राह्मण बोला-कि हे सुव्रते ! तैंने उस परमार्थ के ज्ञाता ब्राह्मण के इस प्रकार के वचनों को सुनकर और विचार करके उससे यह वचन कहा कि बड़ा आश्चर्य है कि तुम मुझ सरीखे अज्ञान को भी करुणा का पात्र बनाये लेतेहो १०९ सब प्राणियों में बुद्धि के प्रविष्ट करनेवाले आप सरीखे पुरुष भृत्यजन के दुस्सह कर्म को चिन्तवनकर अपने प्रवीणचित्त के द्वारा परमार्थ की साधन करनेवाली सिद्धि को निश्चय कहदेते हैं ११० सो मुझ सरीखी दुष्कर्मिणी महामलिन दुष्टों के आश्रय में रहनेवाली शोचसे रहित पराये चित्तों की हरनेवाली इस संसाररूपी समुद्र को कैसे तरेगी १११ आप सरीखे परोपकारी जन मुझ सरीखे भृत्यजन पर प्रसन्न होते हैं क्योंकि आपसे महात्मालोग सबजनों के हित में उद्यतही रहते हैं इस प्रकार उस कहनेवाली के वचनों को सुनकर वह करुणा में आर्द्रचित्त महात्मा तपोनिधि उससे फिर यह वचन कहतामया ११२ हे सुन्दरि ! भक्तियुक्त चित्त के द्वारा मैं तेरे वाञ्छित को कहता हूं उसको सुन जो पूर्व में मैंने तुझसे संक्षेप से पुरुषार्थ का साधन कहाहै वहभी बड़े अनुग्रहही से कहा है ११३ चित्त की वृत्तियों में गुरु का प्रमाणकर जो कुछ

आगम होय उसीमें प्रवृत्तियों को नियुक्तकरनेवाले और मानदम्भादि से रहित ऐसे मनुष्य संसारसमुद्र से तर जाते हैं ११४ हिंसा से रहित क्षमा में परायण सुख दुःखों में समान बुद्धिवाले कोमलस्वभावयुक्त और विषयों में इच्छारहित ऐसे पुरुष संसारसमुद्र से तरजाते हैं ११५ स्थिरस्वभाववाले सुन्दर पवित्रव्रतवाले गुरु के प्रिय नित्य विरक्त रहनेवाले पुरुषों की सेवाकरने और लोक की वार्त्ता से विरक्तमनवाले ऐसे पुरुष संसारसमुद्र से तर जातेहैं ११६ दिनरात चित्त के रोकनेवाले अपने पुत्र स्त्री आदिकों में बुद्धि के न लगानेवाले और अहंकार से चित्त की वृत्ति के रोकनेवाले ऐसे पुरुष संसार समुद्र को तरजातेहैं ११७ उत्पत्तिवालों के विनाश होते हैं दुःख होतेहैं यह शरीर अस्थिर है इसीसे फिर जन्म होते हैं इस प्रकार से जो चिन्तवन करतेहैं वह संसार-समुद्र को तरते हैं ११८ जो पुरुष अपने गर्भ में रहने की पीड़ा को जन्म के संकल्प को यौवन को और बढ़ने के प्रकार को वर्णन करते हैं वह संसारसमुद्र को तरते हैं ११९ जो पुरुष स्वस्थ होकर आत्मा में रत रहते हैं व्याकुलता से रहित होते हैं परमब्रह्म में मनको लीन रखते हैं और बहुत कालतक आत्मा का निरीक्षण करतेहैं वह संसार समुद्ररूपी आश्रम को तरतेहैं १२० त्रिलोक कर्मसाक्षी विश्वेश्वर विष्णु भगवान् के अर्थ नमस्कार है इस प्रकार से कहतेहुये जो पुरुष त्रिविक्रम-रूप ईश्वर में अनुरक्त रहते हैं वह संसारसमुद्र को तरते हैं १२१ जो मनुष्य एकाग्रचित्त से विष्णु को भजतेहैं

और उन्हीं विष्णु के कर्म में परायण रहतेहैं और राग द्वेष आदि गुणों के विस्तारों को नाश करदेते हैं ऐसे मनुष्य संसारसमुद्र को तरजातेहैं १२२ और लोभ से निवृत्त मत्सरता से हीन नष्ट तृष्णा विषयों में इच्छासे रहित और क्रम से धर्म के निमित्त चित्त की वृत्तियों को रोकतेहैं ऐसे मनुष्य संसारसमुद्र को तरजातेहैं १२३ जो पुरुष अनन्यभाव से मन को ईश्वर में नियुक्त कर कमलनाभ कमलपत्राक्ष सर्वोत्तम विष्णु के स्वरूप का स्मरण करता है वह उसी सनातन ईश्वर में प्राप्त होता है १२४ धर्मरूप ब्राह्मण बोला वह धर्मात्मा ब्राह्मण तुझ पर अनुग्रह करके इस रीति के धर्म का वर्णन करके अपने चित्त में यह विचार करनेलगा कि अब वह बात करनी चाहिये जिस कर्म से कि यह दुःखरूपी संसार से तरजाय १२५ ऐसा विचार तेरेही स्थानपर निवास करके तेरेही अनुग्रह की इच्छा करतेहुये उसको प्रातःकाल होगया तब वह बुद्धिमान् पण्डित वहां से उठकर चलागया १२६ हे सूक्ष्मांगी इसके पीछे तू संसार की सब इच्छाओं को और भोगादिकों को भी त्यागकर सदैव धर्म में अनुरक्त होतीभई १२७ सब कामनाओं को त्याग लोहा पत्थर सुवर्ण इन तीनों को समान समझकर अपने आत्मा की निन्दा करतीहुई अपने पापों के छेदन में तत्पर होतीभई १२८ और सुव्रते ! ब्राह्मण गौ और देवता इन सबके द्रव्यको और सम्पूर्णवस्तुओं से युक्तहुये घरको त्यागकर कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत करने में तत्पर होतीभई इसके पीछे तू काल के वश होगई

हे वरवर्णिनि! इस हेतुसे उस बड़े कर्मसे और उस महात्मा के उपदेश के प्रभाव से स्त्रीजातिमें भी तुझको सम्पूर्ण अर्थों का साधन करनेवाला ज्ञान होगया था १२६।१३१ हे सुव्रते! उस महात्मा के वचन और प्रभाव से तू ब्राह्मणोंके कुलमें उत्पन्न होगई है और ब्रह्मकी भी कहने वाली है १३२ सब ऋषियों की शान्ति का फल पूर्व जन्म में तुझ असत्य बोलनेवाली को उस ब्राह्मण के अनुग्रह से प्राप्त होगया और कुछ काल के विपर्यय में उसीकी कृपा से कर्मों के बन्धनसे विमुक्त होकर परब्रह्म को प्राप्त होगी १३३। १३४ भीष्मजी बोले—अत्यन्त दुःखित वह महाभागिनी ब्राह्मण की पुत्री सुव्रता सब दुःखों से छूटकर उस धर्मरूप ब्राह्मण से बोली १३५ अर्थात् सुव्रता ने कहा हे भगवन्! आप सर्वधर्मज्ञ होकर मेरे हित में रत हैं और अत्यन्त तेजस्वी होकर अन्यजन्म के जानने मेंभी विशारद हैं १३६ हे ब्रह्मन्! निर्मल हृदयवाले वेदज्ञ ब्राह्मण ऐसा वर्णन करते हैं कि ज्ञानीलोग भूत, भविष्य, वर्त्तमान, दूरस्थ, समीपस्थ और स्थूल, सूक्ष्म इन सबको देखलेते हैं १३७ हे महात्मन्! आप मुझपर कृपा करो और हे महामते! आप कौन हैं? यह सब आप मुझसे कहिये १३८ ब्राह्मण बोला-मैं धर्मराज हूं यहां तेरे ऊपर अनुग्रह करनेकी इच्छा से प्राप्त हुआहूं तेरा कल्याण है अब जो तेरे मनमें होय सो वर मांग १३९ सुव्रता बोली-हे भगवन्! उत्तम बुद्धिवाले मेरे माता पिता बांधव और सब सुहृद्जन यह सब जितने तुम्हारे पुरमें प्राप्त हुये हैं

वह सब तब तक स्वर्ग में प्राप्त होजायँ जब तक कि महाप्रलयका समय न आवे १४० । १४१ भीष्मजी बोले-हे कौन्तेय ! सब प्राणियों के हित में प्रयुक्त रहने-वाले वह धर्मराज यथार्थविधि से पूजित होके और उस कन्या को अभीष्ट वर देके उसी स्थानमें अन्तर्धान हो-जातेभये १४२ और वह महाभागवाली सुव्रता भी सब इच्छाओं से और शोक से रहित होके उसी तपोवन में तपको करती भई १४३ अर्थात् ब्रह्मर्षियों की सेवा टहल करती अपने कर्मों में रमण करती शाक मूल और कन्दों का आहार करके विषयोंमें इच्छा को त्यागती भई १४४ फिर तप व्रत और देवपूजनादि में प्रयुक्त होकर थोड़ेही काल में उत्तम ज्ञान को प्राप्त हो ब्रह्म-ज्ञानी मुनियों के उपदेश और उस ब्रह्मवादी ब्राह्मण के अनुग्रह से अथवा अनेक प्रकार के दानों करके कर्म-बन्धनों से छुटकर उस विष्णुपद को प्राप्त होती भई जिसको कि मुमुक्षुजन इच्छा किया करते हैं १४५।१४७ हे राजेन्द्र ! इस हेतुसे तू भी सात्त्विकी बुद्धि को धारण करके ब्रह्मण्यदेव विष्णु भगवान् का यथार्थविधि से पूजन कर १४८ और जगत् के धामरूप विष्णु भगवान् में परमभक्ति को करके सब धर्मों के ज्ञाता सत्यधर्म में परायण क्रोध लोभादि से रहित और अन्यपुरुषों में हित करनेवाले ऐसे ब्राह्मणों को अपनी शक्ति के अनु-सार दान मान पूजन और सत्कारादिकों से सेवन कर १४९ । १५० जिस पर ब्राह्मण प्रसन्न होजाते हैं उस पर विष्णु भी प्रसन्न होजाते हैं इस हेतु से ब्राह्मण की

सेवा करनेवाला पुरुष परमब्रह्म को प्राप्त होता है १५१ क्योंकि पापाचरणकरनेवाली पराये द्रव्यकी हरनेवाली अपवित्र वेश्या भी ब्राह्मण का आराधन करके कर्म-बन्धनों से छुटकर मुक्त होजाती भई १५२ पराये हित में रत धर्म कर्म में प्रीतिमान् और शुभगुणों के धारण करनेवाले ऐसे मनुष्यों की इसी प्रकार से मुक्ति होती है ऐसा निर्मलमनवाले ब्रह्मज्ञानी वर्णन करते हैं इस निमित्त हे नृपवर! तू भी आलस्य को त्यागकर अन्य पुरुषों की रक्षा में तत्पर हो १५३ और उसी त्रिभुवन के ईश गुरु केशव केशी दैत्य के शत्रु कमलनेत्र योग ज्ञान से गम्य जन्म मरणादि दुःखोंके दूर करनेवाले तेजवान् पृथ्वी के पालक राजाओंके गुणों से युक्त निर्गुण और सबके कल्याण करने में उद्युक्त ऐसे ईश्वर को मैंभी नमस्कार करता हूं ॥ १५४ ॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायांसुव्रतोपाख्यानन्नाम
एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

बत्तीसवां अध्याय ॥

वैशंपायन बोले-देवव्रत नियमी महाप्राज्ञ ध्यान योग में परायण सबप्राणियों के आश्रय जितेन्द्रिय निष्पाप अति गम्भीर महापराक्रमी इन्द्रादिक सब देवताओंसे पूजित सत्यसिन्धु क्रोध के जीतनेवाले सत्त्वगुण में स्थित भक्तवत्सल जनों के रक्षक और जगन्नाथ ऐसे नारायण देव में मन वाणी और कर्म करके परमभक्ति करनेवाले गुणों के स्थान शान्तरूप भीष्म पितामह को राजा

युधिष्ठिर साष्टाङ्ग प्रणाम करके फिर यह पूछता भया ।४
कि हे पितामह! कोई पुरुष तो धर्म को उत्तम कहते हैं
कोई श्रुत को प्रधान कहते कोई ज्ञान को उत्तम कहते
कोई वैराग्य को श्रेष्ठ कहते कोई अग्निष्टोमादि यज्ञों को
और कोई २ शास्त्र के तत्त्वज्ञ विद्वान्लोग आत्मज्ञान
को सबसे उत्तम वर्णन करते हैं ५ । ६ धर्म, अर्थ, काम
और मोक्ष इन चारों का जो एक मुख्य उपाय है वही
अनेक भेदों से अनेक प्रकार का कहाजाताहै ७ हे
भारत! यह सब शास्त्र स्मरण करने चाहिये इस प्रकार
निश्चय करनेवाले संसार की कर्तव्य अकर्तव्य विधि में
मनुष्य पापकर्मों करके मोहित होजाते हैं सो इन सब
कर्मों में जो महात्माओं के करनेके योग्य सबसे प्रधान
कर्म है उस सब प्रयोजनों के सिद्ध करनेवाले कर्म को
आप मेरे अर्थ कहनेको योग्य हैं हे पितामह! जो आप
मुझे गुणों के ग्रहण करने के योग्य जानते होयँ तो हे
धर्मशास्त्रज्ञ! मेरे ऊपर अनुग्रह करो ८ । ११ भीष्मजी
बोले हे विशांपते! अत्यन्त गूढ़रूप संसार से मोक्ष क-
रनेवाले इस धर्म को करना योग्य है इस धर्म को सुनके
और जानके तुझको अच्छे प्रकार से संतोष करना चा-
हिये १२ इस स्थानपर भी मैं एक उस प्राचीन इतिहास
को कहताहूं जिसमें कि पुण्डरीक ब्राह्मण का और महर्षि
नारद का संवादहै १३ पूर्वसमय वेद में निपुण बड़ा
बुद्धिमान् एक पुण्डरीकनाम ब्राह्मण प्रथम आश्रम में
स्थित होकर गुरुसेवा में परायण होता भया १४ वह
बड़ा जितेन्द्रिय क्रोध का जीतनेवाला संध्योपासनादि में

युक्त वेद वेदाङ्गवाले तत्त्वों का ज्ञाता सर्वशास्त्रज्ञ बड़े यत्न से प्रातःकाल संध्याकाल दोनों समय में अग्निहोत्र करता हुआ विष्णु भगवान् को अच्छे प्रकार से ध्यानपूर्वक आराधन करताभया १५। १६ वह साक्षात् ब्रह्मा के पुत्रकेही समान अपने स्वाध्यायादि कर्मों में प्रवृत्त होता भया और जल इन्धन और पुष्पादिकों के द्वारा गुरुओं कीभी सेवा करतारहा १७ इन सब बातों के विशेष अपने माता पिता की सेवा करता हुआ भिक्षा के आहार को कियाकरता था और विमत्सर होके ब्रह्मविद्या को पढ़ताहुआ प्राणायाम में तत्पर होताभया हे परन्तप! उस समान आत्मावाले संसार से रहित होने वाले महात्मा की बुद्धि संसारसागर से पार होनेकी होती भई १८। १९ और माता, पिता, भाई, बन्धु, पितामह, पितृव्य, मातुल, मित्र और सम्बन्धीजन धनधान्य समृद्धि इत्यादि सब वस्तुओंसे भरे हुये अपने गृह और सुन्दर धान्यवाली खेती इन सबको तृणों के समान त्यागकर शाक मूलादि का आहार करनेवाला और पृथ्वीपर विचरता हुआ वह महात्मा यौवनरूप आयु और द्रव्यसंचय इन सबको अनित्य चिन्तवन करता हुआ त्रिलोकी के पदार्थों को लोहपाषाण के समान मानताभया २०। २३ पुराणों में कहे हुये तीर्थों का जाना काल के अनुसार मनमें निश्चित करके २४ गङ्गा, यमुना, गोमती, गण्डकी, पापघ्नी सरयू, सरस्वती, प्रयाग में त्रिवेणी, नर्मदा, शोणनाम महानद, गया, विन्ध्याचल के तीर्थ, हिमालय के तीर्थ, आश्रमों में होनेवाले तीर्थ,

नैमिषक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, गोवर्द्धन आदिक तीर्थ और बड़े सद्यः प्रभाववाले अन्य तीर्थ इन सब तीर्थों में समाहित अर्थात् सावधान होके उत्तमकाल और विधि के अनुसार वह पुण्डरीकनाम ब्राह्मण विचरताभया इसी प्रकार विचरता हुआ वह महाभाग पुरुषार्थ में लगाहुआ किसी समय शालग्राम तीर्थ पर प्राप्त होता भया २५। २६ वह तीर्थ तत्त्वज्ञ ऋषियों से सेवित मुनियों का रमणीक स्थान शान्तरूप श्वापद जीवों से आकीर्ण सदैव चित्त का प्रसन्न करनेवाला पुराणों में विख्यात था उस तीर्थ पर बहुत से श्रीवैष्णव और अन्य २ पवित्र दर्शनवाले इच्छापूर्वक बिचरतेहुये जनभी निवास करतेथे ऐसे महापवित्र शालग्राम तीर्थपर यह बड़ा बुद्धिमान् पुण्डरीक ब्राह्मण भी सब तीर्थों का सेवन करता हुआ देवह्रदतीर्थ और सरस्वती तीर्थ में स्नान करता भया ३०। ३१ वहां से चलकर जातिस्मरनामकुण्ड चक्रकुण्ड रमणीक वामननामतीर्थ मिश्रकुण्ड और नदियों के समीपवर्ती अन्य सब तीर्थों पर भी वह बिचरा इसके पीछे शालग्रामतीर्थ और अन्य सब तीर्थों के स्नान के प्रभाव से उसका मन बहुत प्रसन्न होगया फिर तीर्थों से विशुद्धआत्मा होकर वह ब्राह्मण ध्यानयोग में परायण होगया ३२। ३६ और विष्णुसहस्रनाम के विधान से परमभक्ति में युक्त हो जगत्पति भगवान् का आराधन करके अपनी परम सिद्धि की इच्छा करने लगा ३७ और अकेलाही जितेन्द्रिय सुख दुःखादि से रहित शाकमूलादि का आहार करता हुआ संतोष और

समता में युक्त होके वहां निवास करता भया ३८ फिर यम नियम आसनों के बन्धन उग्र प्राणायाम सदैव इन्द्रियों का आकर्षण धारणा ध्यान और समाधि इन सब के द्वारा निरालस्य सदैव योगाभ्यास को करता हुआ अच्छे प्रकार से पापों से रहित हो जाताभया ३९।४० और वेदोक्त पुराणोक्त और तन्त्रोक्त विधियों से वा आधाराधेयभाव से सिद्धि को प्राप्त होताभया ४१ फिर रागद्वेष से रहित साक्षात् मूर्तिमान् धर्म के समान वह पुरुषार्थसाधक पुण्डरीक अन्तःकरण से तद्गत हो अन्तरात्मा से देवदेवेश भगवान् का आराधनकर परम प्रसाद की इच्छा करता हुआ विष्णु में अपने मन को लीन करताभया ४२। ४३ हे राजेन्द्र! इस रीतिसे उस पुण्डरीक को शालग्राम तीर्थपर बसतेहुये बहुत काल व्यतीत होगया ४४ फिर किसी समय में उस स्थान पर परमार्थ के ज्ञाता सूर्य के समान तेजस्वी नारदमुनिजी आवतेभये ४५ विष्णुभक्ति में युक्तचित्त वैष्णव भक्तों के हितमें रत ऐसे नारदजी उस तपोनिधि पुण्डरीक ब्राह्मण से पूछने की इच्छा करतेभये ४६ तब वह पुण्डरीक तेजसे युक्त महाभाग महाप्राज्ञ और सम्पूर्ण वेदस्वरूप ऐसे प्राप्त होनेवाले नारद मुनि को देखकर नम्रतापूर्वक अञ्जली बांध प्रसन्न मनसे अर्घ पाद्य देकर प्रणाम करता भया ४७।४८ और अत्यन्त अद्भुत आकारयुक्त यशस्वी प्रसन्नरूप वीणा को हाथ में लिये जटाओं से भूषित सुन्दर मुखारविन्दवाले नारदजी को देखकर आश्चर्य करके विचार करने लगा कि यह दिव्यरूप धर्मराज

अग्नि इन्द्र और वरुण इनमें से कौन है इस संदेह के निवृत्त होनेके लिये उन परम कान्तिवाले नारदजी से पूछताभया ४९ । ५० कि हे परम कान्तिवाले और यहां कृपा करनेवाले ! आप कौन हैं आपका दर्शन हम सरीखे पुण्यरहित पुरुषों को अत्यन्त दुर्लभ है ५१ हे अनघ ! आप सूर्य हैं वा कोई अन्य हैं ऐसा चिन्तवन करके जो मैंने पूछा है उसको यथार्थ से आप कहने को योग्य हैं ५२ नारदजी बोले-मैं नारद हूं आश्चर्यसे तेरे दर्शनके निमित्त यहां आयाहूं क्योंकि तुझ सरीखे जन बहुधा भगवान् के भक्त होतेहैं हे द्विजोत्तम ! भगवान् का भक्त जो चाण्डाल भी हो वह इच्छापूर्वक पूजा हुआ सम्भाषण करनेसेही पवित्र करदेताहै ५३ । ५४ देवताओं के भी देवता भगवान् शार्ङ्ग धनुष और शङ्ख चक्र गदा इनके धारणकरनेवाले त्रिलोकी के चक्षु वासुदेव भगवान् का मैं भक्तहूं ५५ उन भक्तियुक्त आत्मा वाले नारदजी के इस वचन को सुनकर वह पुण्डरीक ब्राह्मण उनके दर्शन से आश्चर्ययुक्त होकर यह वचन बोला ५६ कि हे नारदजी ! मैं सब देहधारियों में धन्य हूं देवताओं से भी पूजित होकर मेरे सब पितर कृतार्थ होगये अब मेरा जन्म भी सफल है ५७ हे देवऋषि जी ! आप मुझ अपने भक्तपर विशेष करके अनुग्रह करो और हे ब्रह्मन् ! आज्ञा दीजिये कि मैं अपने कर्मों करके भ्रमता हुआ होकर क्या करूं ५८ आप मुझे परम उपदेश करनेको योग्य हैं आप सब प्राणियों के और विशेष करके विष्णुभक्तों के गतिरूप हो ५९ नारदजी

बोले-हे द्विज ! इस संसार में प्राणियों के अनेक शास्त्र हैं अनेक कर्म हैं और स्वधा-स्वाहा इत्यादिक इस जगत् के कर्म भी विलक्षण हैं और सुख दुःखादिक सब जीवों के अन्यथा नहीं होते हैं यह जगत् केवल विज्ञानही-मात्र है क्षणिक अर्थात् क्षणमात्रही रहनेवाला है और आत्मा से रहित है ऐसे वाक्यार्थ की अपेक्षा करके कोई तो प्रतिज्ञा करतेहैं कोई निश्चय करतेहैं कोई २ जन ऐसा भी कहते हैं कि यह जगत् सर्वात्मक है सब में आत्मा है और आत्माही में लीन होजाताहै और हे बुद्धिमतांवर ! जीवों के आलोकन करनेवालों में जो श्रेष्ठ पुरुष हैं उन्हीं पुरुषों से आत्मा सर्वगत कहाजाता है और बहुत स्थानों में व्याप्त होनेवालाही नित्य कहा है और जिस प्रकार से अब जगत् की वृत्ति है इसी प्रकार अन्यकालोंमेंभी जानना बहुतेरेलोगों का आग्रह है कि यह जगत् का प्रवाह सदैवसे है और सदैवही रहने वाला है ६०। ६५ और कितनेही ऐसा कहते हैं कि जितने शरीर हैं वह सब आत्माही से सिद्ध हैं बड़े से बड़े हाथी और छोटे से छोटे चींटीपर्यन्त सब देहों में आत्मा समान हैं ६६ कितनेही पुरुष अपने मनमें ऐसा निश्चय करतेहैं कि जो प्रत्यक्ष विषय है वही सर्वत्र वर्तमान है और स्वर्गादिक कहां हैं ६७ कोई कोई इस ईश्वरयुक्त जगत् को निरीश्वर अर्थात् ईश्वर से रहित कहते हैं इस प्रकार परमार्थ से विमुख होनेवाले पुरुषों की बुद्धि अत्यन्त भिन्न २ अर्थात् जुदी २ हैं ६८ इसी प्रकार जिस जिस ने जैसा जैसा सुना है और जैसी उसकी मति

है वैसेही परस्पर अपने गुणों में अनेक प्रकार के उपायों को कहते हैं ६९ और तर्क करनेवाला वेदभी भिन्न है न कोई ऐसा मुनि है जिसका कि मत नहीं छेदन होताहै धर्म का तत्त्व अतिगूढ़ विधान किया है इस हेतु से जिस २ मार्ग होकर महान्लोग गये हैं वही उत्तम पन्था है ७० हे ब्रह्मन्! तू सावधान होकर जो मैं कहताहूं उसको सुन यह गुप्त परमार्थ है और घोर संसार से छुटानेवाला है ७१ जैसी कि वर्तमान प्रयोजन में बुद्धि स्थिर रहती है वैसी नहीं होनेवाले व्यतीत होनेवाले और अतिदूर होनेवाले इन सब में नहीं होती किन्तु ग्रहण भी नहीं करतीहै ७२ सो जो कदाचित् उस बुद्धि का अनुमान नहीं होवे तो दूषित प्रमाणों करके मोहित हुये मनुष्यों से प्रमाण करके देवतादिक कैसे प्राप्त होवें ७३ और जो पूर्व कर्म बड़ोंसे चलाआता है वही आगम कहाताहै और जो परमार्थ का दिखानेवाला है वही प्रमाण जानना ७४ फिर इसी अभ्यास के बल से रागद्वेष के मल का दूर करनेवाला ज्ञान उत्पन्न होता है हे द्विजोत्तम! यही आगम कहावता है ७५ और एक सदैवानन्द निर्गुण परम अविनाशी व्यक्त और अव्यक्तरूप से अवस्थित चञ्चलता से रहित अभिन्नरूप होकर भिन्नरूप से स्थित होके सब जगह प्राप्त होकर विष्णु कहा जाता है ७६ । ७७ वही योगीजनों से ध्यान करने के योग्य है परमार्थरहित लोगों से नहीं जाननेके योग्य है और दुःखबोधक जनों से भेदरूप करके जानाजाता है ७८ हे तात! जैसा कि पूर्वमें ब्रह्माजीने मुझसे कहाहै

उसीको मैं कहताहूं हे सुव्रत ! तू मन लगाकर सुन ७९ एक समय ब्रह्मलोकनिवासी पद्मयोनि ब्रह्माजी को मैंने जाकर प्रणाम किया और बड़ी नम्रता से उनसे पूछा कि हे देव ! कौनसा उत्तम ज्ञान है और कौनसा श्रेष्ठ योग है ? हे पितामह ! यह सम्पूर्णतत्त्व आप मुझसे वर्णन कीजिये ८० । ८१ ब्रह्माजी बोले-हे तात! तू उत्तम ज्ञान और योग को सावधान होकर सुन यह ज्ञान स्वल्पही है परन्तु बड़े अर्थों समेत सुख की उपासना के क्रम से युक्त है ८२ जो माया से परे पञ्चविंशत्यात्मक पुरुष कहाता है वही सब प्राणियों का आत्मा है और नर कहाताहै ८३ नर से उत्पन्नहुये प्राणी नारा कहाते हैं वह प्राणी जिसके स्थान होयँ उसको नारायण कहते हैं सारासंसार उत्पत्तिकाल में नारायण से उत्पन्न होता है फिर प्रलयकाल में उसी नारायण में लय होजाता है ८४ । ८५ नारायण परब्रह्म है परमतत्त्व है परम अप्रकटरूप है और परमपुरुष है ८६ वही सब प्राणियों का सब से बड़ा पति है और जो २ इस जगत् के बाहर भीतर देखा वा सुना जाता है वही सब जगहमें नारायण ही व्यक्त कहाजाता है इस प्रकारका जानकर उस देवदेवको बारम्बार ॐकार शब्दसे कहना चाहिये ८७। ८८ (ॐनमो नारायणाय) इस मन्त्रसे उसको ध्यान करता हुआ जो केवल उसीमें मनको प्रवेश करता है उसको दान तीर्थ जप और तप इन सबके करनेसे क्या प्रयोजन है ८९ जो पुरुष एकाग्रचित्त से प्रतिदिन नारायण को ध्यावता है हे तात ! वही परमज्ञान और योग

कहाता है ९० परस्पर विरुद्ध अर्थवाले बहुत से शास्त्रों करकेभी वही एक ऐसे प्रतिपादन कियाजाताहै जैसे कि बहुत से पुरुष अपने २ मार्गों में चलतेहुये एकही पुर में प्रवेशकरजातेहैं ९१ वही एक देव सर्वगत है सूक्ष्म है अप्रकटरूप है सनातन है सबकी आदि है अपने आदि अन्तसे रहित है स्वयंभूत है सबका उत्पन्न करने वाला है ९२ विष्णु है विभु है अचिन्त्यात्मा है नित्य है सदसदात्मक है वासुदेव जगन्नाथ पुरातन अविनाशी और कवि है ऐसे प्रकारका होकर सब चराचर त्रिलोकी में स्थित होकर व्याप्त होरहा है इस हेतु से वह सर्वेश्वर भगवान् विष्णु कहाताहै ९३ । ९४ युग के अन्त में सब प्राणियों का आश्रय और बासस्थान होता है और उसीमें सब स्थित होजातेहैं इस हेतुसे वह वासुदेव कहाता है ९५ उसीको कोई पुरुष कहते हैं कोई अविनाशी ईश्वर कहतेहैं कोई विज्ञानमात्र कहतेहैं और कोई परब्रह्म कहतेहैं ९६ कोई आदि अन्त से रहित काल कहतेहैं कोई सनातनजीव कहतेहैं और कोई अविच्छिन्न अविनाशी परमात्मा कहते हैं ९७ कोई क्षेत्रज्ञ कहते हैं कोई अपने अङ्ग का विषय कहते हैं कोई अंगुष्ठमात्र कहते हैं और कोई उसको कमल के दल के समान वर्णन करते हैं ९८ मुनियों ने सब शास्त्रों में इन सबके सिवाय अन्यभी पृथक् २ बहुतसे संज्ञापूर्वक भेद कहे हैं परन्तु वह सबके सब विष्णुलोक के मोह को करानेवाले हैं ९९ जो एकही शास्त्र होय तो संशयरहित ज्ञान होजाय परन्तु शास्त्रों के अनेकप्रकारपन होने

से तुझको ज्ञान होना दुर्लभ है १०० सब शास्त्रों को बारम्बार देख कर विचार करने से यही एक मुख्य बात उत्पन्न होती है कि सदैव नारायण का ध्यान करना चाहिये १०१ सब शास्त्रों का यही प्रयोजन है कि सदा नारायण का ही ध्यान करना योग्य है जो पुरुष उस नारायण का ध्यान करता है वह सायुज्यमुक्ति को प्राप्त होता है १०२ इस हेतुसे तू सम्पूर्ण शास्त्रों के गह्वर विस्तारों को त्यागकर एकाग्रचित्त से परिपूर्ण विभुरूप नारायण का ध्यान कर १०३ जो पुरुष निरालस्य होकर दो घड़ीभी श्रीनारायण का ध्यान करता है वह भी सद्गति को प्राप्त होजाता है और जो उस नारायण में परायण ही रहते हैं उनका तो क्याही कहना है १०४ ऐसा जानकर जो अविनाशी प्रभुदेव का निरन्तर ध्यान करता है वह शीघ्रही निस्संदेह उस ईश्वर की सायुज्य मुक्ति को प्राप्त होता है १०५ इस रीति से ब्रह्माजी से कहेहुये सुदुर्लभ ज्ञान को सुनकर हे विप्रेन्द्र! मैं नारायण में परायण होजाताभया १०६ जो पुरुष (ॐ नमो नारायणाय) इस शाश्वत ब्रह्ममन्त्र को अन्तकाल में जपते हैं वह उस विष्णुके परमपद को पाते हैं १०७ इसीकारण से तत्त्व के चिन्तवन करनेवाले पुरुषों ने केवल एक नारायणही में चित्त को लगाकर उस अविनाशी परमात्मा काही नित्य ध्यान किया है और इसी का करना योग्य है १०८ नारायण जगत् में व्यापक है सनातन परमार्थ है संसार के उत्पत्ति, पालन, लय आदि के करनेसे पर है १०९ हे ब्रह्मन्! श्रवण कीर्तन और

निरीक्षण इन सबको करते हुये नारायण का ध्यान करनाचाहिये ११० इच्छारहित संतोषयुक्त जितेन्द्रिय ममता अहंकार से रहित रागद्वेष से वर्जित और ध्यान योग में परायण ऐसे ज्ञानी पुरुष इस जगत्पति भगवान् को देखते हैं और जैसी इस जगत् की अवस्था है उसी प्रकार सब कालों में वहभी रहते हैं १११ भूत भविष्यत् और वर्तमान दूरस्थ समीपस्थ सूक्ष्म स्थूल इन सब वस्तुओं को योगीजन परमार्थ से देखते हैं ११२।११३ और नारायण में परायण होनेवाले पुरुष उसी नारायण में प्राप्त होजानेवाले मन से ईश्वर को साक्षात्कार से देखते हैं परन्तु मन्दबुद्धिवाले दुरात्मा पुरुषों को वही ईश्वर अन्यथा विदित होता है ११४ कुतर्कों से नष्ट ज्ञानवाले और भ्रान्त इन्द्रियों से बर्तनेवाले ऐसे पुरुष ईश्वर को साक्षात् नहीं देखते हैं हे विप्रेन्द्र! इस हेतुसे तू नारायण में तत्पर हो ११५ नारायण से अन्य महाउदार और प्रार्थनावालों को देनेवाला दूसरा कौन है हे महामते! उस त्रिलोकीश ईश्वर को माता पिता जान बहुत से मन्त्रों करके और व्रतादिकों करके क्या प्रयोजन है? केवल (ॐनमो नारायणाय) यही एक मन्त्र सम्पूर्ण अर्थों का साधन करनेवाला है और हे द्विजश्रेष्ठ! पुराने वस्त्रों का धारण करना जटा दण्ड धारण करना अथवा मुण्डन करवाना इन सबसे भूषित हुये पुरुष धर्म के हेतु नहीं हैं क्योंकि जो दुराचारी क्रूर और पाप में रत हैं ऐसे पुरुष भी नारायण में तत्पर होके परमधाम को प्राप्त होते हैं और पापों के दूर करनेवाले

विष्णु के भक्त पापों से कभी लिप्त नहीं होते हैं और सम्पूर्ण लोकों के पापों को ऐसे दूर करदेते हैं जैसे कि उदयहुये सूर्य संसारके अँधेरे को दूर करतेहैं और जिस पुरुष की हज़ारों जन्मोंमेंभी जब ऐसी बुद्धि होती है कि मैं देवताओं केभी देवता वासुदेव भगवान् का दास हूं वह पुरुषभी निस्संदेह विष्णु की सायुज्यमुक्ति को प्राप्त होजाताहै और जो पुरुष उस विष्णु भगवान्मेंही प्राणों को युक्त करतेहैं और इन्द्रियोंको भी जीतते हैं उनका तो कहनाही क्या है ११६। १२३ भीष्मजी बोले-पराये उपकार में निरत और त्रिलोकीके अद्वैत भूषण देवऋषि नारद इस रीतिसे उस ब्राह्मण से सब वृत्तान्त कहकर उसी स्थान में अन्तर्धान होजातेभये १२४ और वह धर्मात्मा पुण्डरीक ब्राह्मण भी नारायण में तत्पर होकर बारम्बार (ॐ नमो) इस स्तुतिके सिवाय ऐसा कहता भया १२५ कि हे महायोगिन्! शंख-चक्र-गदादिके धारण करनेवाले तुम प्रसन्न हो इस प्रकार गोविन्द जनार्दन भगवान् में निश्चय करके वह तपोनिधि ब्राह्मण सब सिद्धियों के देनेवाले रमणीक शालग्राम तीर्थपर तप शौच ब्रह्मचर्यादि से समाहित हो सम्पूर्ण काल के जन्म जन्म के संस्कारों से उस भगवान् में भक्तिकर सब लोकों के अद्वैत साक्षीरूप देवता के अनुग्रह से परम सिद्धि को प्राप्त होताभया और पापों से रहित वह वैष्णव ब्राह्मण शंख चक्र और गदा इन सबको हाथों में धारण करनेवाले पीताम्बरधारी अच्युत भगवान् श्यामवर्णयुक्त और कमलनेत्र ऐसे विष्णु भगवान् को

सदैव अपने हृदय में स्थित हुयेही देखता भया और
उस ब्राह्मण के समीप में जीवघाती सिंहादिक मृग और
अन्य सब जीव यह सब अपने २ स्वाभाविक विरोधों
को त्यागकर इकट्ठे होगये और इन्द्रियों की प्रसन्न वृत्ति-
वाले होकर सदैव इच्छापूर्वक विचरते भये १२६।१३१
दिशा प्रसन्न हुईं आकाश निर्मल होकर सुन्दर ग्रह
तारागणों से युक्त होताभया सुन्दर स्पर्शवाला वायु च-
लता भया और पुष्प फलों से युक्त सब वृक्ष होते
भये १३२ और उस बुद्धिमान् ब्राह्मण पर जब भक्तोंके
सुखदायी भगवान् प्रसन्न होतेभये तब सम्पूर्ण पदार्थ
भी उसके अनुकूल होते भये १३३।१३४ इसके अन-
न्तर किसी समय उस बुद्धिमान् पुण्डरीक ब्राह्मण के
आगे कमलनेत्रवाले विष्णुभगवान् प्रकट होतेभये १३५
शंख चक्र गदाधारी पीताम्बरसमेत उज्ज्वल मालाओं
से युक्त कमलसदृश विशालनेत्र चन्द्रमा के समानमुख
वाले मुकुट कुण्डल और हार इन सबोंसे भूषित कङ्कण
को धारण किये कटिसूत्र पहरे श्रीवत्सयुक्त हृदयवाले
लक्ष्मीनिवास कौस्तुभमणि से सुशोभित वनमालाओं
से युक्त अङ्गवाले कङ्कण कुण्डलादिसे और मोतियों से
अलंकृत स्फूर्तिमान् यज्ञोपवीत से भूषित बड़े प्रकाश-
मान ताराओं के समान कान्तिवाले और महारत्नों से
भरे अञ्जन के पर्वत की समान कान्तिवाले ऐसे विष्णु
भगवान् गरुड़ पर सवार होकर जैसे कि सुमेरु पर्वत के
शृङ्गपर बिजली की कान्ति से युक्त कालरूप मेघ आ-
रूढ़ होताहै उसी प्रकार महाप्रकाशमान होकर शोभित

होतेभये और प्रकाशित छत्रसमेत मोतियों से शोभित होकर वह भगवान् बिजलीके समान कान्तिवाले दीखते भये १३६। १४० इस रूप से विराजमान वह देवदेव भगवान् इन्द्रादिक देवता सिद्ध गन्धर्व और श्रेष्ठ मुनिजन इन सबके द्वारा चँवर व्यजनादिसेभी सेवित होते भये १४१ इनके सिवाय अग्नियों के समूह उत्तमभक्त अप्सरा और पवित्र ऋषि इन सबसे भी सेवित होते भये १४२ ऐसे रूपोंवाले भगवान् को वह पुण्डरीक ब्राह्मण देखके हाथ जोड़ पृथ्वीपर गिरजाता भया १४३ उन हृषीकेश भगवान् को नेत्रोंसे पीके वाणी से कहके नासिका से सूंघके और बाहुओंसे मानों आलिङ्गन करतेहुये के समान वह पुण्डरीक बड़ा आनन्दयुक्त होता भया १४४। १४५ और परम प्रीतिपूर्वक आनन्द में मग्न पृथ्वीपर पड़ा हुआ अञ्जलीबद्ध बड़ी नम्रता से जनार्दन भगवान् को प्रसन्न करता भया १४६ और यह वचन बोला हे सम्पूर्ण लोकों के चक्षुरूप निरञ्जन नित्य निर्गुण और गुणात्मक ऐसे विष्णुरूप भगवान् को नमस्कार है १४७ हे विष्णुजी! आपको जगतों का आधार वर्णन करते हैं निराधार भी कहते हैं इन्द्रियों के विषय से वा स्पर्श से रहित कहतेहैं और प्रकाशरूप परम अविनाशी भी वर्णन करते हैं १४८ वासुदेव के अर्थ नमस्कार और जगत् की उत्पत्ति स्थिति लय इन तीनोंके कर्ता सबके मूलरूपके निमित्त नमस्कार है १४९ तुम ॐकाररूप हो जगत् के धाम वषट्कार नाम सर्वलोकेश हो और अनीश्वर भी हो १५० हे गोविन्द!

हे गरुड़ध्वज ! तुम पीड़ित पुरुषों की पीड़ा हरनेवाले हो और भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये अनेकरूपों को धारण करनेवाले हो १५१ इस सब संसार को तुम हीं में लय हुआ कहते हैं आप इस जगत् से भिन्न हो और जगत् तुमसे भिन्नहै १५२ हे नाभि से कमलनाल के उत्पन्न करनेवाले ! जलशायीरूप सम्पूर्ण वेद वेदान्त के विज्ञानरूप और आत्मा के ऐश्वर्यरूप ऐसे तुम्हारे अर्थ नमस्कार है हे शरणात्मक, लोकेश ! आपही हमारे शरण्य अर्थात् रक्षक हो हृदय में शंख चक्र गदादि को धारणकर निवास करनेवाले ऐसे आपके अर्थ नमस्कार है १५३ । १५४ हे भूधर ! सम्पूर्ण भूतों के आदिभूत आपके अर्थ नमस्कार हैं अनेकरूपों के धारण करने वाले विष्णु अर्थात् प्राप्त होनेवाले और उत्पन्न होने वाले ऐसे आपके अर्थ नमस्कार है १५५ हे स्वामिन् ! आप वाणी के पति हो उस वाणी के प्रत्यक्ष गोचररूप आपकी महिमा कैसे कहसके हैं क्योंकि आप जात्यादि भेदों से रहित हो १५६ ऐसेभी होकर हे पुरुषोत्तम ! आप ब्रह्माआदिक अनेकरूप भेदों करके अनेक से दिखाई देते हो १५७ भीष्मजी बोले कि, वह ब्राह्मण इस प्रकार के अनेक मनोहरशब्दों से मधुसूदन भगवान् की स्तुति करताभया फिर बहुतकाल से प्रार्थित दर्शनवाले भगवान् का आलोकन करता भया १५८ इसके पीछे पद्मनाभ भगवान् भी उस महाभाग पुण्डरीक ब्राह्मण से अपनी गम्भीरवाणी से बोलते भये अर्थात् श्रीभगवान्ने कहा कि, हे पुण्डरीक

ब्राह्मण ! हे महामते ! हे पुत्र ! मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूं तेरा कल्याण होय जो तेरे मन में अभीष्ट होय उस वरदान को मांग मैं तुझको दूंगा १५९ । १६० देवदेव भगवान् के इन वचनों को सुनकर बड़ा बुद्धिमान् पुण्ड-रीक यह बोला १६१ हे भगवन् ! कहां तो अत्यन्त दुर्बुद्धिवाला मैं और कहां आत्मा के हित में रत होने वाले आप हैं हे विभो ! जिसमें मेरा कल्याण होय वह आपही कहनेको योग्य हैं १६२ उस अञ्जली बांधे हुये बड़ी नम्रतापूर्वक खड़ेहुये महाभाग पुण्डरीक ब्राह्मण के वचनों को सुनकर भगवान् फिर यह वचन बोले १६३ हे सुव्रत ! तू मेरेही संग आजा तेरा कल्याण हो तू मेरे रूपका धारण करनेवाला और नित्य आत्मावाला हो-कर मेराही पार्षद हो १६४ भीष्मजी बोले-भक्तों पै दया करनेवाले श्रीधर गोविन्दजी के ऐसे कहनेपर देवताओं ने दुन्दुभी नक्कारे बजाये और पुष्पों की बर्षा हुई १६५ और इन्द्रादिक देवता सिद्ध और गन्धर्व यह सब साधु साधु ऐसा वचन बोलते भये और विशेष करके यक्ष किन्नरादिक तो बहुतही साधुसाधु वचन बोलतेभये १६६ इसके पीछे देवताओं के देवता जगत्पति देवताओं से भी नमस्करणीय ऐसे विष्णु भगवान् उस ब्राह्मण को साथ लेकर गरुड़ पर सवार होकर गमन करतेभये १६७ हे राजेन्द्र ! इस हेतुसे तू भी विष्णु की भक्ति में तत्पर हो उसीमें चित्तकर उसीमें प्राप्त होकर विष्णु के भक्तों के हित में रत हो १६८ फिर विष्णु का यथायोग्य पूजनकर उसी पुरुषोत्तम भगवान् को स्मरण कर और

पापों की नाश करनेवाली उसकी कथाओं कोभी श्रवण कर १६९ हे राजेन्द्र, युधिष्ठिर! तू वही कर्मकर जिससे कि सम्पूर्ण ईश्वरों केभी ईश्वर विष्णु भगवान् प्रसन्न हो-जावें १७० नारायण से विमुख होनेवाले पुरुष सैकड़ों अश्वमेध और वाजपेय यज्ञों करके भी श्रेष्ठ गतिको नहीं प्राप्त होते हैं १७१ और अजर अमर एकरूप ध्यान करने के योग्य आदि अन्त से रहित त्रिगुणात्मक स्थूल सूक्ष्म अनुपमेय उपमेय से रहित योगियों से ध्यानगम्य त्रिभुवन के गुरु और ईशरूप होकर हे विष्णो! मैं आप की शरण हूं १७२ भीष्मजी बोले-हे वत्स! मुझे अब प्रातःकालही देह छोड़नी है क्योंकि मेरे प्राण स्वर्ग में जानेकी शीघ्रता कररहे हैं १७३ हे पुत्र! जो मैंने शान्तिपर्व में विस्तार पूर्वक धर्म कहाहै उसकोभी मैं यत्नसे कहता हूं उसे तू सुन १७४ हे परन्तप, धर्मरूप! उस समुद्र के मथन से निकासा हुआ साररूप ऐसा धर्म है जैसा कि दही से निकालाहुआ नवनीत मक्खन होता है उस सं-सार धर्मको मैं तुझसे कहताहूं १७५ किसी भयंकर बन में कोई पुरुष किसी मारनेवाले हाथी के भय से भागता हुआ और दूसरे महाबन में पहुँचा १७६ वहां जाकर सिंहोंके समूहोंको देखा वहांसे भी अधिक भयभीत होता हुआ दूसरी दिशा को भागा १७७ तहां हाथ में खड्ग लिये हुये एक भयानकरूप कन्या को देखा वह कन्या भागती हुई बिचररहीथी वह इससे ठहरो ठहरो ऐसा वचन कहतीहुई १७८ उसको देखकर वहां से भी अ-लग हो फिर अन्य किसी दिशा को भागा वहां अग्नि

से जलते हुये बन को देखा १७९ वहां ठहरकर चिन्ता करनेलगा कि बड़ा आश्चर्य है कि जहां जाता हूं वहां ही कष्ट दिखाई देताहै कहीं हाथी कहीं सिंह और उधर को कन्या इधर को अग्नि बनको जलारही है १८० फिर भयभीत होकर वह एक कूप में गिरता भया वहां कुए में गिरकर एकबड़े विषधर सर्पको देखा हे राजेन्द्र! वहां किसी बेल को पकड़ बेलसे नीचे को मुखकर तोंबेके समान उस बेलपरही लटकता भया वहां भी उस बेलकी जड़ को काटतीहुई एक मूसी दिखाई पड़ी १८१। १८३ उसके सिवाय उस कुए में काटनेवाले मच्छर आदिक उपद्रव भी थे परन्तु उसदशामें भी उसके मुख में एक भौंरा पुष्पों के रस को देता था १८४ फिर रस पीने की इच्छा करताहुआ वह पुरुष उसके लायेहुये पुष्परस को पान करताभया हे वत्स! जैसेकि वह पुरुष घोरसंकटों में पड़ा है १८५ उसी प्रकार सम्पूर्ण शरीरधारी जीवमात्रभी घोर संकट में वर्तमान रहते हैं अब जो बड़ा पराक्रमी हाथी देखा वह तो वर्ष है और घोर सिंहों को जो देखा वही अनेक प्रकार के संसारी व्यवहार जानों और हाथ में खड्गलिये बड़ी बलवती जो कन्या देखी उसको जरा अर्थात् वृद्धावस्था जानों १८६। १८७ जो बन में अग्नि लगी देखी सो शोक है यह शोक लोभ मोह और भय का करनेवाला है कुआ मनुष्यलोक है और वह महासर्प कालरूप है उस कूप में आयु बेल है दिनोंका व्यतीत होना मूषिकी है और क्रोधादिकरूप काटनेवाले मच्छररूप दारुण उपद्रव हैं और सम्पूर्ण

प्राणियों में स्थित होनेवाले काम को मधु का देनेवाला भौंरा जानों अबभी जो मधुका स्वादु है वही काम काभी स्वादु है १८८। १६० हे वत्स! श्रवण करनेके गुणों से युक्त होनेवाला तू धर्म में तत्पर हो और संसार में स्थितहुये अपने आत्मा को मोक्ष के निमित्त बड़े यत्न और क्रम से आरूढ़कर १६१ इस प्रकार संसाररूपी कूप में एक धर्मही परमगति है धर्म से परे कुछ नहीं है और धर्मही सुख का करनेवाला कहा है १६२ वैशंपायनजी बोले-हे जनमेजय! इस प्रकार से सम्पूर्ण धर्मों को कह-कर राजा युधिष्ठिर को मोक्ष का निर्मल मार्ग दिखाके विष्णु भगवान् के चरणों में अपने मन को स्थापित कर १६३ मकरराशि के निर्मल सूर्यहोनेके समय माघ-मास के शुक्लपक्ष की एकादशी को प्रातःकाल के समय भीष्मपितामह विष्णुलोक को प्राप्त होतेभये १६४ उन के परमधाम जातेही देवताओं के दुन्दुभी नक्कारे आदि बाजों का शब्द हुआ आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी इन्द्रादिक देवता सिद्ध और वसुगण यह सब प्र-सन्न हुये १६५ इस प्रकार धर्म-अर्थ और मोक्ष से सं-युक्त महाफल के देनेवाले इस परम उत्तम पवित्र करने वाले इतिहास को सुनकर मनुष्य इसलोक और परलोक दोनों में आनन्दों को भोगता है १६६ इन महा पुण्य-कारी पुण्यों के बढ़ानेवाले बत्तीस इतिहासों से यह इति-हाससमुच्चय नाम ग्रन्थ समाप्त हुआ॥ १६७॥

इति श्रीइतिहाससमुच्चयभाषायांनारदपुण्डरीकसंवादे द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥